यादगार पल

सत्पुरुष महाराज मंगतराम जी के
जीवनकाल के संस्मरण

संगत समतावाद (रजि.)

यादगार पल

सत्पुरुष महाराज मंगतराम जी के
जीवनकाल के संस्मरण

संगत समतावाद (रजि.)
समता योग आश्रम
जगाधरी – 135003
हरियाणा

प्रकाशक
संगत समतावाद
समता योग आश्रम
छछरौली रोड, जगाधरी – 135003

© संगत समतावाद

प्रथम संस्करण सन् 2011 1500
द्वितीय संस्करण सन् 2022 250

प्राप्ति स्थान
संगत समतावाद
समता योग आश्रम
छछरौली रोड, जगाधरी – 135003

प्रस्तावना

इससे पूर्व एक पुस्तक 'संस्मरण' नाम से प्रकाशित हो चुकी है, जिसमें उन शिष्यों के संस्मरण प्रकाशित हुए थे जिन्होंने सत्गुरुदेव महात्मा मंगतराम जी से दीक्षा प्राप्त की थी और कुछ समय उनके साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। परन्तु कई शिष्यों से समय पर सम्पर्क न होने के कारण उनके संस्मरण प्रकाशित होने से रह गए थे।

शेष शिष्यों से श्री शिव नाथ जी ने सम्पर्क करके उनके द्वारा बताए गए विभिन्न संस्मरण नोट किए हैं। इनको समय-समय पर 'समता सन्देश' मासिक पत्रिका में विभिन्न लेखों के रूप में प्रकाशित किया जाता रहा है। इस वर्तमान पुस्तक में उन सभी लेखों को शामिल किया गया है। साथ ही पिछली पुस्तक में जो कमी तथा गलतियाँ रह गई थी उनका भी संशोधन कर दिया गया है।

सत्पुरुषों के जीवन की घटनाओं को पढ़ने से व्यक्ति के अन्दर ईश्वर विश्वास की दृढ़ता उत्पन्न होती है, जिसके आधार पर मनुष्य का जीवन ईश्वर परायण बनता है। एक बार गुरुदेव ने अपने जीवन की घटना एक प्रेमी को सुनाई थी। घटना इस प्रकार थी :

महीना सावन का शुरू था। एक रात आप घर से निकल पड़े। काली अमावस्या की रात थी। बादलों के कारण अन्धकार की परत और भी गहरी हो गयी थी। समय का ठीक पता न चला। ''कल्लर से चलते-चलते काफी दूर निकल गए। जो रास्ता 'चोहाँ भगताँ' की तरफ़ जाता था उस तरफ़ तेज़-तेज़ कदम उठाए। काली अंधेरी रात की वजह से पाँव फिसल गया। गहरी खाई में गिरने का पता लग रहा था - सीधे खड़े-खड़े नीचे जा रहे थे। बस इतना ही मालूम हुआ कि किसी लम्बे-लम्बे कोमल हाथ वाले ने गोद में ले लिया है। फिर होश न रही।''

जब सूरज निकला और दिन चढ़ गया तो आपने अपने को एक नदी

के किनारे पाया। कुछ देर के बाद पाँव फिसलने, गिरने और गोद में लेने की सारी बात याद आ गई। नज़र उठा कर ऊपर देखा तो बड़ी ऊँची चोटी दिखाई दी। ''वाह मेरे मालिक! तू बड़ा ही बेपरवाह है, किस तरह हाथों से पकड़ कर यहाँ रख दिया है।''

ये शब्द आपके मुख से निकले। बड़ी देर तक नदी के किनारे बैठे रहे। दोपहर के बाद वहाँ से एक आदमी गुज़रा। उससे 'चोहाँ भगताँ' की ओर जाने वाला रास्ता पूछा। उसने इशारा करते हुए कहा, 'इस ओर ऊपर जाओ। वहाँ से सीधा रास्ता निकल जाता है।' फिर उठकर कपड़े उतारे, स्नान किया। शरीर पर कोई चोट न लगी थी, कहीं रगड़ तक का निशान न था। स्नान करके फिर वहाँ ही एक ओट में बैठ गए। 'चोहाँ भगता' जाने का विचार छोड़ दिया। शाम को वहाँ से उठे और कल्लर लौट आए।

उपरोक्त घटना पढ़कर तुरंत मन में एक विचार दौड़ जाता है कि जिस भगत को प्रभु की याद में अपने शरीर की सुध नहीं रहती उसकी किस प्रकार अन्तर्यामी प्रभु रक्षा करते हैं। मन में यह विश्वास पक्का हो जाता है कि प्रभु अपने भक्त के अंग-संग सदैव रहते हैं।

इस प्रकार गुरुदेव के शिष्यों ने जो भी संस्मरण सुनाए हैं या लिख कर दिए हैं उनको पढ़ने से प्रभु-भक्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलेगी तथा अपने जीवन में कमियों को दूर करने के लिए मार्गदर्शन प्राप्त होगा। जिन लोगों ने गुरुदेव के दर्शन नहीं किए हैं उनके मन में इस पुस्तक को पढ़कर गुरुदेव के प्रति श्रद्धा, प्रेम और गुरु भक्ति जाग्रत होगी।

प्रकाशक

श्री सत्गुरुदेव मंगतराम जी महाराज

जन्म : नवम्बर 24, सन् 1903 ईस्वी

जन्म स्थान : गंगोठियां ब्राह्मणां, तहसील कहुटा
ज़िला रावलपिण्डी (पाकिस्तान)

महासमाधि : फरवरी 4, सन् 1954 ईस्वी (अमृतसर)

विषय सूची

1. श्री देवराज गुप्ता, सोलापुर 1

(1) अहंकार गुरु ही तोड़ता है 1

2. श्री नंद लाल बिन्द्रा, हल्द्वानी 8

(1) गुरु द्वारा शिष्य की रक्षा 8

(2) गुरुदेव द्वारा रोग निवारण 9

(3) गुरु का स्वप्न में दर्शन सच्चा स्वप्न 10

(4) शिमला में वार्तालाप 11

(5) नाद (शब्द का अनुभव) 13

(6) बड़ों के प्रति विनम्रता 14

(7) कर्मफल ज़रूरी भोगना पड़ता है 15

3. श्री करम चन्द टंडन, चंडीगढ़ 18

(1) गुरु स्वयं शिष्य को चुनता है 18

(2) विकारों से मुक्ति 21

(3) गुरु अन्तर्यामी 22

(4) कुछ अन्य बातें 23

4. श्री नरेन्द्र जिन्दल, अम्बाला 25

(1) राम के दर्शन अंदर करो 25

5. श्री गंडू राम, जगाधरी 37

(1) सत्गुरु से भेंट 37

6. श्री नथ्था राम, जगाधरी 42

(1) जब गुरुदेव मिले 42

7. श्री संत शरण अग्रवाल, बरेली 48

(1) गुरु दीक्षा 48

8. श्री मदन लाल कोहली, आगरा 54

(1) नियम का पालन 54

(2) अन्त समय गुरु दर्शन 54

(3) मन की बात जान लेना 55

(4) आज्ञा उल्लंघन की मनाही 55

9. श्री सुन्दर दास, आगरा 56

(1) संत अन्तर्यामी होते हैं 56

(2) गुरु कृपा 57

10. श्री हरि कृष्ण कपूर, देहरादून 58

(1) गुरु मिलन 58

11. श्री नरसिंह दास लौ, देहरादून 63

(1) सत्पुरुष से मिलाप 63

12. श्री संतराम गोसाईं, काहनूवान 68

(1) अन्तर्यामी सत्पुरुष 68

(2) सिनेमा देखने की मनाही 69

(3) गुरु कृपा की प्राप्ति 71

13. श्री अमोलक राम बख्शी, पंजलासा 75

(1) शारीरिक स्वच्छता का अभ्यास से सम्बन्ध नहीं 75

(2) प्रभु की भगत पर कृपा 76

(3) तन्दूर की अग्नि भी न जला सकी 77

(4) फ़कीरों के दरबार में कोई भेदभाव नहीं 79

14. श्री परस राम हरयाल, दिल्ली 81

(1) सत्गुरु दर्शन 81

15. श्री रामलाल, जहाँगीरपुर 85

(1) यज्ञ के लिए लकड़ी 85

16. श्री सालिगराम एडवोकेट, कहुटा (पाकिस्तान) 88

(1) संसार सत्य या असत्य 88

17. श्री ओंकार नाथ, आगरा 92

(1) ग्रामवासियों पर कृपा 92

18. श्री रतनचन्द्र महाजन, दौराँगला 97

(1) यज्ञ का उद्देश्य 97

(2) रस्म-रिवाज़ में सादगी 98

(3) गुरु का जीवन शिष्यों के लिए 99

19. श्री भीम सैन ओबराय, बरेली 102

(1) अभ्यास में समय की पाबंदी 102

(2) सादगी का आदर्श 103

20. श्री हकीम राजाराम दत्त, दिल्ली 106

(1) प्रभु परायणता 106

(2) काली कम्बली प्यारी क्यों? 108

21. श्री हरबंस लाल चावला, दिल्ली 113

(1) सत्पुरुष श्राप नहीं देते 113

22. श्री बिशम्बरदास लूथरा, बीकानेर 116

(1) योग विद्या आसानी से नहीं मिलती 116

23. श्री रतन चन्द अग्रवाल, अम्बाला 119

(1) हिन्दू समाज का कल्याण समता की शिक्षा से 119

24. श्री कृष्ण लाल शर्मा, दिल्ली 121

(1) आन्तरिक स्थिति गुप्त रखनी चाहिए 121

(2) प्रेमियों से अपेक्षा 124

(3) संगत ही मालिक है 125

25. श्री ओम कपूर, देहरादून 126

(1) शिष्यों का कल्याण करनी से 126

26. श्री राम लाल नारंग, देहरादून 130

(1) तपोभूमि का चयन 130

27. श्री हेमराज गेरा, देहरादून 133

(1) अन्त समय 'राम' का जाप 133

28. डॉ. मदन मोहन देहरादून 135

(1) सरलता की मिसाल 135

29. श्री वज़ीर चन्द लूथरा, श्रीगंगानगर 138

(1) सच्ची श्रद्धा की असली भेंट 138

30. श्री जोगिन्दर पाल ग्रोवर, गोराया (पंजाब) 140

(1) गुरु कृपा से विकार से मुक्ति 140

31. श्री किशोरी लाल महंगी, जम्मू 142

(1) सिमरण के लिए दिशा की पाबन्दी नहीं 142

32. श्री रामजी फोतेदार, दिल्ली 143

(1) निर्मल खुराक से धर्म मार्ग में प्रगति 143

33. महन्त रतन दास, अहमदाबाद 145

(1) गुरुदेव के प्रथम शिष्य 145

34. बाबू अमोलक राम मेहता, काला गुजराँ (पाकिस्तान)..148

(1) सत्पुरुष सर्वदृष्टा 148

(2) सही इन्सान बनो 150

(3) मूर्ति पूजा और पुनर्जन्म 151

(4) फ़कीरों की निगाह में सब एक समान 153

35. भगत बनारसी दास जी, कोहाला (पाकिस्तान) 156

(1) गुरु चरणों का मिलाप 156

(2) श्रीनगर में एक ब्रह्मचारी से भेंट 159

(3) थट्टा में गुरुदेव से वार्तालाप 161

(4) बुत परस्ती (मूर्ति पूजा) का निर्णय 163

(5) टैक्सला म्यूज़ियम का भ्रमण 164

(6) गुरु वशिष्ठ का राम को उपदेश 165

(7) अंग्रेज भगत का सेवा भाव 168

(8) फ़कीरों से प्रभु भक्ति माँगी जाती है 169

(9) गुरु आज्ञा पालन 170

(10) समता दृष्टि 170

(11) मृग-तृष्णा 171

(12) हरिजनों के साथ प्रेम की नीति 173

(13) सनातन धर्म 175

(14) सत्पुरुषों की निर्लेपता 177

(15) भेष बनाने की मनाही 179

(16) सच्चा साधु कभी नहीं सोता 181

(17) संसारी मोह त्यागने का संदेश 181
(18) हर प्रकार की सेवा के लिए प्रेरणा 185
(19) शिष्यों के लिए गुरुदेव की रात्रि में पैदल यात्रा 187
(20) हक की चीज़ ही ग्रहण करनी चाहिए 189
(21) गुरु की दी हुई वस्तु का महत्व 190
(22) गुरु सेवा का अनमोल फल 190
(23) तंग कपड़े पहनने की मनाही 191
(24) मुहम्मद साहब का आदर्श जीवन 192
(25) गुरु नानक के स्वप्न में दर्शन 193
(26) अभ्यास के लिए धरती कुदरती आसन 195
(27) जनता सन्तों से भी स्वार्थ पूर्ति चाहती है.....196
(28) महाराजा कश्मीर से भेंट 196
(29) शुद्ध आहार लाज़मी है 199

36. डी. एस. आर. साहनी, देहरादून 202

(1) गुरुदेव द्वारा मनीआर्डर 202

37. के. एन. शर्मा, दिल्ली 204

(1) गुरुदेव का आख़िरी जन्म 204

1

श्री देवराज गुप्ता, सोलापुर

(1) अहंकार गुरु ही तोड़ता है

बचपन से ही मन में प्रभु भक्ति का भाव था। छोटी उम्र में ही घर में ही नीचे से ऊपर पानी भरकर ले जाना पड़ता था। पानी लाते ले जाते गाता रहता था – 'सजना तेरे बिना जी नहीं लगना।' गाते-गाते आँखों में आँसू भर जाते थे। एक बार मैंने श्री महाराज जी से पूछा भी था कि भक्ति क्या होती है। उन्होंने उत्तर दिया था कि किसी चीज़ को अपने से श्रेष्ठ या बड़ा समझकर बार-बार स्मरण करते रहना ही भक्ति है।

एक बार की बात है, श्री श्री महाराज जी दिल्ली में पधारे हुए थे। मैं प्रेमी राजा राम दत्त के साथ श्री महाराज जी के पास पहुँचा। प्रणाम करके बैठने के पश्चात् गुरुदेव ने मुझसे पूछा, ''प्रेमी कैसे आए हो?'' मैंने कहा, महाराज जी! मेरी इच्छा पूरी होनी चाहिए इसलिए आपके पास आया हूँ। मुझे जिस चीज़ की तलाश है वह मुझको मिलनी चाहिए।' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! तूने बड़ी मेहनत की है, बड़ी भक्ति की है, इसलिए तेरा काम बिल्कुल नहीं बनेगा। कुदरत तुझको बड़ी चीज़ देना चाहती है।'' मैंने कहा, 'लेकिन मैं तो वही चीज़ चाहूँगा। मैं तो उसको कभी नहीं छोड़ूँगा।' श्री महाराज जी कहने लगे, ''प्रेमी! फिर तबाही ही तबाही है। वह चीज़ कभी नहीं मिलेगी, कुदरत बड़ी चीज़ देना चाहती है।''

बात यह थी कि मेरा कहीं प्रेम था, वह फेल हो गया। मन में ऐसी घोर वेदना थी कि धूप में पड़े रहने पर भी शरीर का होश नहीं रहता था। आज गुरुदेव के पास बैठकर जलते हुए मन में ठंडक और शांति महसूस हुई। उस दिन उन्होंने कहा था, ''फ़कीरों का प्रधान निश्चय है कि दुनिया की कोई भी चीज़ इन्सान को स्थायी आनन्द नहीं दे सकती। इसके उलट यहाँ का हर सामान रंज़ और ग़म को देने वाला है। अगर मनुष्य इस इन्द्रिय भोगों से मुख

मोड़ ले तो सच्ची खुशी के दरवाज़े उसके लिए खुले हैं। यह एक ज़बरदस्त हक़ीक़त है।'' वास्तव में गुरुदेव के इन वचनों की भावना ने ही मुझको उनकी ओर खींचा।

एक दिन मैंने श्री श्री महाराज जी से कहा, महाराज जी! मुझे नाम दे दीजिए।' गुरुदेव ने कहा, ''अभी अन्दर वासना बहुत है। पहले शादी कर'' प्रारब्धवश शादी भी हो गयी। शादी के पश्चात् जगाधरी में फिर श्री श्री महाराज जी से मिलने गया। मेरा उनके साथ बहुत ही सहज रूप में वार्तालाप हुआ करता था। मैंने उनसे कहा, महाराज जी! हकीम के पास नब्ज़ दिखाने आए हैं। यदि दवा हो तो दीजिए, नहीं तो जाते हैं।' गुरुदेव बोले, ''प्रेमी! ऐसे होनहार युवक को इन्कार नहीं कर सकते। कल सुबह 6 बजे आ जाना।'' दीक्षा के समय 2-3 और प्रेमी भी थे। उनमें से एक प्रेमी से पूछा, ''क्या सिनेमा देखते हो?'' उसने कहा, 'हाँ।' गुरुदेव बोले, ''सिनेमा को आज यहीं छोड़ दो।'' दूसरे प्रेमी से पूछा, ''क्या सिगरेट पीते हो?'' उसने कहा, 'हाँ, पीता हूँ।' गुरुदेव ने उससे कहा, ''सिगरेट आज से यहीं छोड़ दो।'' प्रेमियों ने गुरुदेव की बात तुरन्त मान ली। परन्तु मैं मन में सोचने लगा कि मैं तो सिगरेट छोड़ने का वायदा नहीं करूंगा। यदि कहा तो उठकर चला जाऊँगा। अन्तर्यामी गुरुदेव ने मुझसे पूछा ही नहीं। दीक्षा के पश्चात् मेरा हाथ पकड़कर अपने घुटने पर रखकर बोले, ''प्रेमी! थोड़ा-थोड़ा नाम जप लिया करना।'' उनके पकड़ने से मुझको ऐसी करंट सी लगी कि मेरा जन्म-जन्मांतर का अहंकार ख़त्म हो गया। एक बार प्रेमियों ने सिगरेट के बारे में मेरी शिकायत श्री महाराज जी से कर दी। इस पर मैंने श्री श्री महाराज जी को लिख दिया कि मेरा इरादा सिगरेट छोड़ने का नहीं है। परन्तु बाद में प्रभु कृपा से स्वयं ही सिगरेट छूट गई। एक दिन श्री श्री महाराज जी ने कहा था, ''प्रेमी! रोटी खाना भूल जाना लेकिन नाम जपना मत भूलना। यह चीज़ तेरे काम आएगी।''

जब श्री महाराज जी से मैंने नाम ले लिया तो पूछा, 'अब आपकी क्या ज़रूरत रही?' उन्होंने कहा, ''प्रेमी! चलने पर बड़ी-बड़ी खाइयाँ आती हैं,

गुरु बचाता है उनसे।'' फिर मैंने पूछा, महाराज जी! जब आप चले जाओगे तो हमारा मार्गदर्शन कौन करेगा?' उन्होंने फ़रमाया, ''प्रेमी! अन्दर से ख़ुद सब समझ आ जाएगी।'' इसके बाद पूछा, महाराज जी! कब तक पीछा करोगे।' उन्होंने कहा, ''सच्चा गुरु कई जन्म तक शिष्य का साथ देता है।'' फिर कहा कि शेर के मुँह से शिकार निकल सकता है, लेकिन संत के हाथ में आया हुआ शिष्य नहीं निकल सकता। एक दिन श्री महाराज जी से पूछा, महाराज जी! भविष्य की कितनी चिन्ता होनी चाहिए?' उन्होंने कहा, ''फ़कीरों को तो एक क्षण का भी नहीं सोचना चाहिए। गृहस्थी के पास यदि शाम को खाने के वास्ते है तो आगे की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।''

एक बार की बात है, मैं श्री महाराज जी के सामने बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। अचानक श्री महाराज जी मुझसे पूछ बैठे, ''प्रेमी! क्या सोच रहे हो?'' मैं संकोचवश बताना नहीं चाहता था, इसलिए कह दिया, महाराज जी! कुछ नहीं सोच रहा।' गुरुदेव तो अंतर्यामी थे, तुरन्त बोल पड़े, ''प्रेमी! बताएं तुम क्या सोच रहे हो। तुम मन ही मन में सोच रहे हो कि गुरु ने कोई चमत्कार नहीं दिखाया। प्रेमी! क्या चमत्कार देखना चाहते हो? कहो तो कुटिया के बाहर नदी चला दें, परन्तु वह तुमने देखी हुई है। कहो तो शेर खड़ा कर दें, परन्तु वह भी तुमने देखा हुआ है। प्रेमी! तुमने कभी सोचा है – तुमको भूख सताती है, इनको भूख नहीं सताती, तुमको प्यास सताती है, इनको प्यास नहीं सताती; तुमको नींद सताती है, इनको नींद नहीं सताती। इससे बड़ा और क्या चमत्कार देखना चाहते हो?'' गुरुदेव की भूख, प्यास और नींद पर पूर्ण विजय थी।

पुराने दिनों की बात है, पठानकोट में मैं एक दिन दुकान पर बैठा हुआ था। एक बाबा गाता हुआ उधर से गुज़रा – 'गोपाल धुन लागी, मोहे राम धुन लागी।' मैंने उसको पास बुलाकर कहा, 'बाबा! बैठो, कुछ बात करेंगे।' वह बोला, 'मेरा मन बातों में नहीं लगता, राम नाम में लगता है।' मैंने यह बात श्री महाराज जी को बताई तो वह बहुत प्रसन्न हुए।

सन् 1952 की बात है। जगाधरी में वार्षिक सम्मेलन का अवसर था। गुरुदेव की कुटिया में कुछ प्रेमी उनके पास बैठे हुए थे। मैं भी वहीं उपस्थित था। श्री महाराज जी की सहमति से कुछ प्रेमियों को सत्संग में बोलने की आज्ञा मिली थी, परन्तु मुझसे किसी ने नहीं पूछा। मैं दर्शन शास्त्र का मेधावी छात्र रह चुका था। बोलने में भी काफी निपुण था। मुझको अपने मुकाबले का एक भी वक्ता वहाँ नज़र नहीं आ रहा था, इसलिए मैंने स्वयं ही श्री महाराज जी से कहा दिया, महाराज जी! मुझे भी बोलने के लिए थोड़ा समय दिया जाए।' श्री महाराज जी ने कह दिया, ''इन्हें भी दस मिनट दे दिए जाएं।'' मैंने कहा, महाराज जी! दस मिनट में क्या होगा?' ख़ैर, गुरुदेव ने बीस मिनट का समय दे दिया। जब बोलने का समय आया तो प्रेमी जन मन में सोच रहे थे कि आज बड़ा अच्छा प्रवचन सुनने को मिलेगा। लेकिन उस दिन जब मैंने बोलना प्रारम्भ किया तो बुद्धि से विचार गायब होने लगे। मैंने बहुत कोशिश की परन्तु असफल रहा। फिर एक गिलास पानी मंगाकर पिया, पुनः प्रयास किया परन्तु निराशा ही हाथ लगी। अंत में यह कहकर बैठना पड़ा, 'आज मेरे साथ एक अनहोनी सी हो रही है। मैं चुप हो जाने के लिए मज़बूर हूँ।'

मन में मैं बड़ा निराश था। गुरुदेव से भी मैंने इस बारे में कुछ नहीं कहा, न ही उन्होंने मुझसे इस बारे में कोई बात की। पूरा वर्ष बीत गया। 1953 में सम्मेलन का वही अवसर एक बार फिर सामने आ गया। उस दिन भी श्री महाराज जी की कुटिया में प्रेमियों के नाम सत्संग में बोलने के लिए लिखे जा रहे थे, परन्तु मैं मौन था। गुरुदेव ने स्वयं ही उस सत्संग में मुझसे बोलने के लिए कहा। परन्तु मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा, महाराज जी! पिछले वर्ष मैं भुगत चुका हूँ। इस बार मुझे माफ़ कीजिए।' श्री महाराज जी ने बड़े ही प्रेमपूर्वक वात्सल्य भाव से कहा, ''लाल जी! आज यह ख़ुद तुमसे बोलने को कह रहे हैं।'' फिर बोले, ''लाल जी! किसी का होकर बोला करो।'' बात वास्तव में यह थी कि पिछले वर्ष मेरे अन्दर अपनी काबलियत का बड़ा अहंकार था, जिसको उन्होंने मेरी ही भलाई के लिए तोड़ दिया था। आज

उनका इशारा था कि गुरु रूप परमेश्वर अन्दर मौजूद है। उसी की कृपा से मनुष्य को सफलता मिलती है। उसके प्रति अपने आपको समर्पण करके ही कार्य करने में भलाई है। गुरुदेव के कहने पर मैंने 'हाँ' कर दी। जब बोलने का समय आया तो मैंने बिना ही पूर्ण तैयारी के गुरु चरणों का ध्यान करके बोलना प्रारम्भ कर दिया। उस दिन अन्दर से धाराप्रवाह विचार इस प्रकार निकल रहे थे जिस प्रकार निरन्तर नदी का प्रवाह स्वत: ही चलता रहता है। प्रेमी जन भी सुनने में तल्लीन थे। वे इतने भाव-विभोर हो गए कि कुछ प्रेमियों ने तालियाँ भी बजा दी। पच्चीस मिनट का समय पता ही न चला कब ख़त्म हो गया। संगत और समय की माँग करने लगी परन्तु मैंने मना कर दिया। पास बैठे गुरुदेव ने प्रवचन जारी रखने का इशारा किया इसलिए कुछ देर और बोलना पड़ा। उस दिन मुझको साक्षात् अनुभव हो रहा था कि मेरी वाणी किसी और शक्ति की प्रेरणा से ही निकल रही थी, जिसमें इतना रस था कि जनता उस रस में सराबोर हो रही थी। उस दिन का प्रवचन मेरे जीवन का यादगार प्रवचन था।

एक सन्यासी मेरे मित्र थे। वह भगवा वस्त्र पहना करते थे। अंग्रेज़ी भाषा में वे धाराप्रवाह भाषण दिया करते थे। आधुनिक गुरुओं में उनकी भी गिनती है। उनका ट्रस्ट भारत में तो प्रसिद्ध है ही, विदेशों में भी उसकी शाखाएं और शिष्यगण हैं। दिल्ली में एक दिन वह मुझसे बोले कि तुम मेरे साथ आ जाओ, दोनों मिलकर पूरे हिन्दुस्तान पर छा जाएंगे। क्योंकि वह मेरे बारे में जानते थे कि हिन्दी में भाषण देने में मेरी बराबरी कोई नहीं कर सकता। विशेष बात यह थी कि लोग मेरी बातों को मंत्रमुग्ध होकर सुनते थे। जब उन्होंने मेरे सामने अपना प्रस्ताव रखा तो मैंने उनसे कहा, 'मुझको तो गुरु मिल गया, अब मैंने हिन्दुस्तान को नहीं अपने आपको जीतना है।' पूछने लगे, 'कौन सा संत मिला है?' मैंने कहा, 'महात्मा मंगत राम जी, जो कि आजकल यहाँ आए हुए हैं।' वह बोले, 'शाँति मेरे मन में भी नहीं है, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।' मैं उनको श्री महाराज जी के पास ले गया। उस समय भी वह गेरुआ वस्त्र पहने हुए थे। जब श्री महाराज जी के पास जाकर बैठे तो गुरुदेव ने मुझसे पूछा,

''प्रेमी! यह कौन है?'' मैंने उनका परिचय करवाया। फिर श्री महाराज जी ने उनसे पूछा, ''कैसे आए हो?'' उन्होंने कहा, 'कृपया मुझको भी रास्ता बतलाइये।'' गुरुदेव बोले, ''तुमको क्या रास्ता दिखाएं, तुम तो लाल कपड़े पहनकर पहले ही ज्ञानी बने हुए हो। पहले कहीं नौकरी करके मेहनत की कमाई से रोटी खाना सीखो।'' उनके उठकर चले जाने के बाद गुरुदेव मुझसे बोले, ''ऐसे लोगों को मत लाया कर, यह अन्दर से बिल्कुल खाली है। यह पाप के भागी बने हुए हैं, जीवन में बहुत सज़ा पाएंगे।'' यह ऐसे वक्ता थे जिनका भाषण सुनने भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तक आया करते थे।

एक दिन की बात है, जन्माष्टमी का त्यौहार था। उस दिन कुछ प्रेमी सत्संग में देर से पहुँचे। गुरुदेव ने उनसे पूछा, ''प्रेमी! लेट क्यों आए हो?'' प्रेमियों ने कहा, महाराज जी! कृष्ण की झाँकियाँ देखने गए थे। वहाँ पर कृष्ण जी की माखन लीला और रास लीला भी देखी।' श्री महाराज जी बोले, ''उन्होंने वह लीला नहीं दिखाई–जब कृष्ण नाग के फन पर खड़े हो गए थे।'' बातचीत चल रही थी कि कृष्ण की बाँसुरी में कैसा जादू था कि गोपियों के कानों में जब वह राग पड़ता था तो आटा मलते हुए सने हाथ होने पर भी सब कुछ छोड़कर वहाँ पहुँच जाती थीं। इस पर श्री महाराज जी ने कहा, ''वह नाद को बाँसुरी द्वारा बाहर निकाल देते थे, जिसके आनन्द में मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी मस्त हो जाते थे।''

एक बार दशहरे का दिन था। गुरुदेव कहने लगे, ''प्रेमी! दशहरा क्यों मनाते हो, बुद्धि सीता है – संकल्पों में फँसी हुई है। राम ने इस सीता को छुड़ाया था। तू भी इस सीता को छुड़ाकर राम बनके दिखा।'' एक दिन बोले, ''अभिमन्यु का चक्रव्यूह में फँसना तो बहुत ही ख़तरनाक है।'' एक बार श्री महाराज जी गुरुद्वारे में गए। एक प्रेमी ने श्री महाराज जी से कहा, महाराज जी! आपने माथा नहीं टेका।' श्री महाराज जी ने कहा, ''अपनी किताबों को कौन माथा टेकता है।'' 1953 में श्री महाराज जी ने एक दिन कहा था कि इस समय

इनके शरीर के अलावा और कोई सन्त नहीं है।

श्री महाराज जी के पास बैठकर बड़ी शाँति अनुभव होती थी। कभी-कभी ख़ुश्बू का भी अहसास होता था। जहाँ श्री महाराज जी जगाधरी आश्रम में बैठते थे, अभी तक उनका प्रभाव वहाँ मौजूद है। 1988 में जब मैं वहाँ गया था तब मुझको इस बात का अनुभव हुआ था। मेरे अन्दर भक्ति का भाव तो था ही, वहाँ कुटिया के पास पेड़ों में मुझको 'मंगत' ही 'मंगत' नज़र आ रहे थे। उस समय मैं उन पेड़ों से चिपटकर बहुत रोया था। उसी कुटिया में मैंने एक दिन श्री महाराज जी से मेरे ऊपर कृपा करने के लिए प्रार्थना की थी। उस दिन उन्होंने मुझको कहा था, ''प्रेमी! पहले 20 दिन तक जमकर सिमरन करके तो देख।'' लेकिन मैंने गुरुदेव की यह बात आज़माकर नहीं देखी। जब मेरी उम्र 62 वर्ष की हो गयी तो मुझको गुरुदेव की 20 दिन वाली बात याद आयी। गुरुदेव की बात पर अमल करने के लिए मैं 20 दिन तक न तो आफ़िस गया और न ही कोई कार्य किया। रात-दिन सिमरन की ही धुन लगी रही। बीसवाँ दिन जब आया तो गुरु कृपा का अहसास अन्दर होने लगा। उस दिन जो आन्तरिक आनन्द प्राप्त हुआ उससे गुरुदेव की बात सत्य सिद्ध हुई। उसके पश्चात् वह निरन्तर बढ़ता रहा। आज गुरु कृपा से जो शाँति और आनन्द अन्दर है उसका ऋण मैं कदापि नहीं चुका सकता। अब समझ में आता है कि सच्चा प्यार तो गुरु-शिष्य में ही होता है और कहीं नहीं। आज यदि गुरुदेव शरीर रूप में होते तो उनके पास जाकर मैं यही कहता, 'गुरुदेव क्या हुक्म है? चाहो तो मेरे शरीर की खाल भी उतार लो, मैं देने को तैयार हूँ।'

मैं करूँ जो प्यार तुझसे बुरा न मान लेना।
जहाँ दिल रहे न वश में वो मुक़ाम आ गया है।।

नोट : जिस समय लेखक की बात देवराज जी से हुई थी उस समय उनकी आयु लगभग 85 वर्ष थी। अब वे संसार में नहीं है।

2

श्री नंद लाल बिन्द्रा, हल्द्वानी

(1) गुरु द्वारा शिष्य की रक्षा

पाकिस्तान बनने से पहले की बात है। एक बार श्री महाराज जी रावलपिंडी में अपने बड़े भाई पं. ठाकुर दास जी के घर ठहरे हुए थे। नंद लाल जी अपने चाचाजी के साथ वहाँ पहुँचे। उनके चाचाजी श्री महाराज जी से दीक्षा ले चुके थे। चाचाजी ने गुरुदेव से कुरी चलने के लिए प्रार्थना की, क्योंकि उनका निवास स्थान वहीं पर था। गुरुदेव ने प्रार्थना स्वीकार कर ली।

कुरी जाने के लिए दो ताँगे मंगाए गए। अगले ताँगे में श्री महाराज जी और भगत जी बैठे तथा पिछले ताँगे में नंद लाल और उनके चाचाजी। रास्ते में पहली नदी ताँगे ने पार कर ली। उस समय सड़कें तो बनी नहीं थी, बहुत ऊबड़-खाबड़ रास्ता था। दूसरी नदी भी आसानी से पार हो गयी। जब तीसरी नदी घोड़ी पार कर रही थी, तभी अचानक वह रुक गई। नदी के पास ही एक ऐसा मोड़ था कि पीछे से आने वाले पानी का अंदाज़ा लगाना मुश्किल था। ऐसा प्रतीत हुआ मानो घोड़ी को आने वाले सैलाब का पता पानी को सूंघकर लग गया था। घोड़ी आगे बढ़ने को तैयार नहीं थी। परन्तु ताँगे वाले ने चाबुक मार-मार कर उसको आगे बढ़ने के लिए मज़बूर कर दिया। अचानक ही नदी में पानी बढ़ने लगा। घोड़ी के पैर उखड़ने लगे। तभी नंद लाल जी की नज़र नदी पार खड़े श्री महाराज जी ने पर पड़ी। वे हाथ हिलाकर अपनी ओर आने का इशारा कर रहे थे। तभी घोड़ी के पैर पुनः जमने लगे। धीरे-धीरे पानी भी कम होने लगा। हम नदी पार पहुँच गए। बाद में भगत जी ने हमको बताया था कि श्री महाराज जी ने मुझको कहा था कि जब तक दूसरा ताँगा नहीं आ जाता तब तक आगे नहीं जाना है। इससे पता लगता है कि गुरुदेव ने स्वयं हमारी रक्षा की व्यवस्था की थी।

(2) गुरुदेव द्वारा रोग निवारण

महाराज जी जब कुरी में ठहरे हुए थे, उसी दौरान पास के एक गाँव के पंडित जी गुरुदेव से वहाँ चलने के लिए प्रार्थना करने लगे। दो दिन के लिए गुरुदेव उनके साथ चले गए। अपने फ़ार्म पर ही उन्होंने गुरुदेव के ठहरने की व्यवस्था कर दी। एक दिन नन्द लाल जी भी वहीं सत्संग सुनने के लिए पहुँच गए। उनके सामने ही एक बुज़ुर्ग मुसलमान महाराज जी के पास आकर बैठ गया। महाराज जी ने उसके बैठने के वास्ते एक आसन दिलवाया। फिर पूछा, ''क्या नाम है तुम्हारा? कहाँ रहते हो? कैसे आए हो?'' उसने कहा कि एक गर्ज़ लेकर आया हूँ। मेरे केवल एक बेटा है, वह भी तपेदिक का मरीज़ है। डाक्टर ने जवाब दे दिया है। ज़मीन बेचकर उसका इलाज करवा चुका हूँ। मुझको पता लगा था कि साईं लोग आए हुए हैं। वे सब कुछ करने में समर्थ होते हैं, इसी आशा से आपके पास आया हूँ।

महाराज जी ने कहा, ''देखते नहीं–यह ख़ुद बीमार हैं। अपने को ही ठीक नहीं कर सकते।'' उस बुज़ुर्ग ने कुछ नहीं कहा, चुपचाप बैठा रहा। पंडित जी ने उनसे चाय के लिए पूछा परन्तु न कर दी। दोपहर को खाने के लिए पूछा, उसने पुनः न कर दी। महाराज जी उसको देखकर मुस्कुराने लगे। फिर एक प्रेमी से कहा कि यह तो पीछे ही पड़ गया है। शाम के चार बज गए। महाराज जी ने कहा, ''बाबा! ज़िद नहीं करते।'' उसने कहा कि मैं ज़िद कहाँ कर रहा हूँ? मैंने तो दरबार में अर्ज़ी दे दी है। बस मेहर का पात्र होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

गुरुदेव ने उसका हठ देखकर प्रेमियों से कहा, ''प्रेमियों! सब मिलकर खुदा से इसके लिए दुआ करो।'' बाबा ने भी अपने हाथ ऊपर करके अपना कलमा पढ़ा। फिर दाढ़ी पर हाथ फेरकर उठकर चल दिया। फ़ार्म के मालिक ने कहा, 'बाबा! अब तो चाय पी लो।' बाबा ने कहा, 'मैं तो मालामाल हो गया।' महाराज जी प्रेमियों से बोले, ''देखो, यह कैसा ज़िद्दी है।'' फिर कहा कि यह लोग कैसे विश्वासी हैं।

एक महीना बीत गया। महाराज जी रावलपिंडी पधारे। एक आढ़त की

दुकान थी, उसी की छत पर सत्संग होता था। एक दिन उसी गाँव के पंडित जी का बेटा मेरी दुकान के सामने से गुज़रा। मैंने उससे पूछा कि उस मुसलमान के बेटे के क्या हाल हैं? उसने कहा वह तो हल चला रहा है। बिल्कुल स्वस्थ है। यह सुनकर मैं मन में सोचने लगा कि महाराज जी ने तो हमको बहका दिया। उसका काम भी कर दिया और हमको कुछ बताया भी नहीं।

रात्रि को सत्संग समाप्ति के बाद जब सब लोग ग्यारह बजे तक चले गए तब मैंने महाराज जी से कहा, 'मैंने आपसे कुछ बात करनी है।' महाराज जी ने कहा, ''हाँ प्रेमी! ज़रूर करो।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! वह बाबा का लड़का था न.....।' बीच में ही महाराज जी बोल पड़े, ''क्या हुआ उस लड़के को? क्या वह मर गया? मैंने कहा, 'महाराज जी! आपकी कृपा से उसका बेटा बिल्कुल ठीक हो गया। अब वह हल चला रहा है।' महाराज जी बोले, ''प्रेमी! इन्होंने कुछ नहीं किया। प्रभु कृपा से भाग्यवश वह स्वयं ठीक हो गया है।''

सब कुछ करके भी महाराज जी इस प्रकार संकोच करने लगे माने कुछ भी न किया हो। गुरुदेव की करामातें कभी-कभी कृपा के रूप में पता लग जाती थीं, परन्तु उनका कहना यही था कि इन करामातों से मनुष्य की वास्तविक उन्नति नहीं हो पाती।

(3) गुरु का स्वप्न में दर्शन - सच्चा स्वप्न

पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के सगे चाचा राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव हल्द्वानी में नगर पालिका में सेक्रेट्री थे। 1918 में एक बार पदमपुरी, ज़िला नैनीताल, गए हुए थे। वहाँ सोमाहारी बाबा नाम के एक संत से उनकी भेंट हुई। बाबा ने उनसे पूछा कि कैसे आए हो? उन्होंने बाबा से अपनी शरण में लेने के लिए प्रार्थना की। बाबा ने कहा, 'अभी नहीं।' उन्होंने सोचा कि यदि अभी नहीं, तो कभी न कभी शरण में अवश्य ले लेंगे। इसलिए आगे कुछ नहीं कहा।

सन् 1935 में श्रीवास्तव जी को लखनऊ एक काम से जाना पड़ा।

वहाँ रात्रि को स्वप्न में सोमाहारी बाबा खड़े हुए दिखाई पड़े। मन में सोचा कि अब नाम अवश्य देंगे। अचानक बाबा ने उंगली से एक व्यक्ति की ओर इशारा किया। उनकी ओर देखते ही वह व्यक्ति गायब हो गया।

इसके पश्चात् 1952 में महात्मा मंगत राम जी हल्द्वानी पधारे। श्रीवास्तव जी के एक मित्र ने उनको महाराज जी के बारे में सूचना दी। समाचार पाकर उनके सत्संग में वह उपस्थित हुए। सत्संग में बैठते ही श्रीवास्तव जी को लखनऊ में देखे हए स्वप्न की याद आ गई। महाराज जी की शक्ल बिल्कुल उस व्यक्ति जैसी थी जो कि स्वप्न में सोमाहारी बाबा की कृपा से दिखाई दिया था। सत्संग में बिल्कुल पीछे बैठे हुए उनकी दृष्टि सामने महाराज जी पर पड़ी और महाराज जी की उन पर।

सत्संग समाप्ति पर सब चले गए परन्तु श्रीवास्तव जी बैठे रहे। महाराज जी ने उनसे पूछा, '' प्रेमी! क्या तुमको नहीं जाना?'' उन्होंने कहा, महाराज जी आपके चरणों में एक प्रार्थना करनी है। कृपया अपनी शरण में मुझको ले लीजिए। परन्तु मैं इस योग्य हूँ भी या नहीं, यह मुझको नहीं पता।' इतना सुनकर महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! तेरे ही लिए तो यहाँ आए हैं।'' यह सुनकर उनके शरीर के रोम-रोम में रोमांच हो गया। फिर महाराज जी ने उनको अगले दिन प्रात:काल दीक्षित किया।

(4) शिमला में वार्तालाप

पाकिस्तान बनने के बाद प्रेमी नंद लाल जी भारत में आ गए थे। व्यापार सब समाप्त हो चुका था। श्री महाराज जी शिमला में जाखू की पहाड़ी पर ठहरे हुए थे। नंद लाल जी को जब पता लगा तो बिना गुरु आज्ञा लिए ही वहाँ सात दिन के लिए गुरुदेव के पास चले गए।

वहाँ पहाड़ी पर बंदर बहुत थे। एक दिन गुरुदेव के पास बैठे हुए थे। अचानक एक दृश्य देखने को मिला। एक बन्दर के हाथ में बिच्छू बूटी छू जाने के कारण वेदना होने लगी। तुरन्त ही वह पास में ही लगी पालक बूटी से अपना

हाथ रगड़ने लगा। इससे उसकी बेचैनी समाप्त हो गयी। यह दृश्य देखकर गुरुदेव प्रेमी जी से पूछने लगे कि क्या देखा? इस बन्दर को बूटी का ज्ञान है? क्या यह बन्दर मनुष्य से श्रेष्ठ नहीं? नंद लाल जी ने कहा, 'हाँ श्री महाराज जी!' गुरुदेव बोले, ''क्या पागल हो गया है? क्या यह बन्दर निष्काम सेवा कर सकता है? क्या यह ईश्वर का सिमरन कर सकता है? यह मनुष्य जन्म सर्व-श्रेष्ठ है, प्रभु कृपा से मिला है। इसमें सब कुछ कर सकते हो, यहाँ तक कि ईश्वर रूप हो सकते हो।''

एक दिन श्री महाराज जी बोले, ''देखो, ईश्वर की कैसी लीला है। उसने तरबूज़ बनाया जिसमें पानी भी है और भोजन भी है। एक बीज में कैसी रचना रच देता है।'' नंद लाल जी वार्तालाप के पश्चात् बाज़ार गए और तरबूज़ ले आए। उसको देखकर श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! क्या इन्होंने तरबूज़ खाने को कहा था?'' फिर तरबूज़ से थोड़ा टुकड़ा लेकर कहा कि प्रसाद बाँट दो।

व्यापार के बारे में श्री महाराज जी से वार्तालाप हो रहा था। हल्द्वानी में कार्य करने का विचार चल रहा था। नंद लाल जी सोच रहे थे कि काम चलेगा या नहीं। गुरुदेव ने उनके मन की बात जानकार उनसे कहा, ''प्रेमी! जो तेरे भाग्य में लिखा है वह तेरे पास अवश्य आएगा, चाहे कहीं भी बैठ जा।''

एक दिन श्री महाराज जी शिमला में जाखू की पहाड़ी पर विराजमान थे। नंद लाल जी ने उनसे पूछा, 'जब भगवान श्री कृष्ण बाँसुरी बजाते थे तो गायें चरना छोड़कर भगवान के पास पहुँच जाती थी। यहाँ तक कि अगर गोपियों के हाथ आटे में सने हों तो उनको धोना भी भूल जाती थीं। क्या उस बाँसुरी की धुन में वास्तव में इतना आकर्षण था या बाद में इतिहास लिखने वालों ने उनकी महिमा को बढ़ाने के लिए ऐसा लिख दिया?'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! भगवान कृष्ण बाँसुरी द्वारा नाद की ध्वनि को बाहर प्रकट करने में समर्थ थे। उस नाद की ध्वनि हर जीव के शरीर में हो रही है। कोई भी जीव उस नाद रूप में प्रभु की आवाज़ सुनकर

आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। जैसे कि अगर आप सो रहे हों और कोई व्यक्ति आपका नाम लेकर पुकारे तो आप तुरन्त जाग जाते हो और जानना चाहते हो कि मुझको किसने और क्यों बुलाया है।''

(5) नाद (शब्द) का अनुभव

नंद लाल जी को गोलड़ा (पाकिस्तान) में दीक्षा मिली थी। 1944 में उनकी माता जी का देहान्त हो गया था। किसी प्रेमी ने इसकी सूचना श्री महाराज जी को गंगोठियाँ में दे दी। श्री महाराज जी का अपने कर कमलों से लिखा पत्र आया कि माता जी के क्रिया-कर्म से फ़ारिग होकर गंगोठियाँ पहुँचे। पत्र मिलने के तीन-चार दिन पश्चात् प्रेमी जी अपने मित्र के साथ गुरु चरणों में हाज़िर हुए। जब नमस्कार करके बैठ गए तब गुरुदेव ने फ़रमाया, ''प्रेमी! तुमको यहाँ इसलिए नहीं बुलाया कि तुम्हारा माता का अफ़सोस किया जावे, बल्कि इसलिए बुलाया है कि अपनी मौत को याद रखो। अपनी मौत की याद से ईश्वर की याद आती है। मौत की याद ही पाप कर्म करने से रोकती है और लोक-परलोक का सुधार हो जाता है।''

जब सायंकाल के समय प्रेमी पीर ख़्वाजा जंगल में गए तो श्री महाराज जी स्वच्छ घास वाली जगह पर लेटे थे। उसी समय उठ कर बैठ गए। उनकी अद्‌भुत मस्ती की हालत थी। श्री महाराज जी वाणी उच्चारण करते रहे, जो कि शब्द की महिमा के बारे में थी। प्रेमी जी ने श्री महाराज जी से प्रश्न किया, 'महाराज जी! रोम-रोम में शब्द की ध्वनि कैसे समाई हुई है?' श्री महाराज जी ने अपनी पीठ से कुर्ता उठाकर नंद लाल जी से कान लगाने को कहा। जो आनन्द उस समय अनुभव हुआ उसकी खुमारी 5-6 दिन तक मन में बनी रही।

दूसरे दिन फिर सायंकाल दोनों प्रेमी जंगल को गए। लेकिन श्री महाराज जी कल वाले स्थान पर नहीं मिले। इधर-उधर ढूंढते-ढूंढते श्री महाराज जी को एक बबूल के पेड़ के नीचे बैठा हुआ पाया। वह स्थान ऊँचा-

नीचा था तथा छोटे-छोटे कंकड़ बिखरे पड़े थे। श्री महाराज जी ने हमको बैठने को कहा। बहुत कठिनाई से जगह साफ करके बैठ गए। प्रेमी जी ने श्री महाराज जी से कहा, 'जहाँ आप कल सायंकाल विराजमान थे वह जगह समतल, साफ और बैठने योग्य थी। जिस स्थान पर आज बैठे हैं यह बैठने के लायक नहीं है। आप कल वाले स्थान पर क्यों नहीं बैठे।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''शुरू से ही इनका प्रोग्राम यह रहा है कि जहाँ किसी ने इनको एक स्थान पर देख लिया, दूसरे दिन स्थान बदल दिया।'' प्रेमी जी ने इसका कारण पूछा तो श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! यह पत्थर पूज कौम है। सन्तों के वचनों पर तो चलते नहीं, मगर उनके चले जाने के पश्चात् उस जगह की पूजा, अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए, आरम्भ कर देते हैं। इसी कारण इनको ऐसा करना पड़ता है।''

(6) बड़ों के प्रति विनम्रता

एक बार सत्गुरुदेव कुरी से रावलपिंडी पैदल चल पड़े। संगत के कुछ प्रेमी भी साथ थे, जिनमें नंद लाल जी भी शामिल थे। श्री महाराज जी की चाल इतनी तेज़ थी कि प्रेमियों को उनके साथ हल्के-हल्के दौड़ना पड़ता था। रावलपिंडी अभी लगभग एक मील दूर था कि नंद लाल जी के मन में विचार आया कि श्री महाराज जी से घर चलने की प्रार्थना की जाए। जैसे ही उन्होंने श्री महाराज जी के पास आकर कुछ कहना चाहा, श्री महाराज जी ने पहले ही उनसे कह दिया कि तुम्हारे घर ही चलेंगे। यह सुनकर प्रेमी जी के मन में खुशी की लहर दौड़ गई। जल्दी से घर पहुँचकर एक कमरे में श्री महाराज जी के लिए गद्दा और चादर बिछाई दी। गुरुदेव ने गद्दा हटवाकर लोई बिछवाई और आसन पर विराजमान हुए। तीन-चार दिन वहाँ ठहरे। गर्मी के दिन थे। अमृत वाणी और वचनों की वर्षा होती रही। छत पर सत्संग होता था। रात के 11 बजे तक प्रेमी बैठे रहते थे। श्री महाराज जी बार-बार उनको जाने के लिए कहते थे, परन्तु पता नहीं वहाँ कौन सी चुम्बक शक्ति थी कि प्रेमियों का मन

वहाँ से जाने को नहीं करता था। प्रेमियों के जाने के बाद मुश्किल से आधा घंटा एक करवट से लेटने के पश्चात् भक्त बनारसी दास जी को साथ लेकर श्री महाराज जी चश्मे की ओर चले जाते थे। यह कार्यक्रम लगभग जीवन भर इसी प्रकार रहा। प्रातः निश्चित समय पर अपने आसन पर पहुँच जाते थे।

उन्हीं दिनों एक दिन गुरुदेव के बड़े भाई पं. ठाकुर दास जी दर्शन के लिए जब आए तो श्री महाराज जी ने तुरन्त उठकर बरामदे में जाकर बड़े भाई के चरण स्पर्श किए। पं. ठाकुर दास जी ने श्री महाराज जी को कहा, 'आप महापुरुष हैं, आप ऐसा न किया करें। हमको बहुत संकोच होता है।' तब श्री महाराज जी ने कहा, ''यह हमारा कर्त्तव्य है और अधिकार है। यह मर्यादा हम नहीं छोड़ सकते। आप हमारे पिता तुल्य भ्राता है।''

दूसरे दिन कल्लर से स्कूल के हैडमास्टर साहब, जहाँ श्री महाराज जी ने आठवीं कक्षा तक विद्या ग्रहण की थी, आपके दर्शन के लिए आ गए। उस समय भी इसी प्रकार दृश्य देखने को मिला। श्री महाराज जी ने तुरन्त उठकर मास्टर साहब के चरण स्पर्श किए। हैडमास्टर साहब की आँखों से आँसू बह निकले और कहा, 'महाराज जी! प्रणाम तो हमको करना चाहिए।' तब श्री महाराज जी ने कहा, ''नम्रता और मर्यादा का पालन महापुरुषों के जीवन का लक्षण है।''

(7) कर्मफल ज़रूरी भोगना पड़ता है

यह घटना उस समय की है जब दोबारा श्री महाराज जी हमारे घर पर पधारे थे।

शुभ स्थान गंगोठियां के पश्चात् श्री गुरु महाराज जी रावलपिण्डी पधारे। दास को उनको अपने घर पर ठहराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तकरीबन सारा दिन संगत आती रहती थी। सुबह दस बजे के करीब फरमान अली सब्जी लेकर मेरे घर पर आया और सब्जी देकर श्री महाराज जी के पास सत्संग में बैठ गया। उस समय वहाँ पर कर्म फिलास्फी के विषय में चर्चा चल रही थी।

अनजाने या जाने में जो भी कर्म मनुष्य से हो जाता है उसका नतीजा इस जन्म में या अगले जन्म में अवश्य भोगना पड़ता है। यह प्रकृति का अटल नियम है। खासकर क्रूर कर्म अन्त समय याद आते हैं और अन्त में जिस याद में शरीर छोड़ता है वैसी ही इसको योनी प्राप्त होती है।

फरमान अली ने श्री महाराज जी से कहा, 'साईं जी! अगर इजाज़त हो तो कुछ अर्ज़ करूँ।'

श्री महाराज जी ने कहा, ''कहो प्रेमी क्या कहना है।''

फरमान अली ने कहा, 'वैसे तो मैं मुसलमान हूँ। पुनर्जन्म को हम नहीं मानते। मगर सत्संग में साईं जी आपके विचार सुनकर एक सच्चा किस्सा याद आ गया जो सब मैंने अपनी आँखों से देखा है।

हमारे गाँव में एक हाज़ी साहिब थे। दो बार हज कर चुके थे। गरीबों यतीमों व अनाथों की मदद किया करते थे। बच्चों को मिठाईयाँ बाँटते रहते थे। हर साल एक छोटा सा भण्डारा करते थे। सारा गाँव उनकी इज्ज़त करता था। जब कभी हाजी साहिब बाज़ार में आते तो लोग उठकर उनको सलाम करते थे। काफी उमर के थे। थोड़े बीमार हुए। कई बार बेहोश हो जाते और कहते- मुझे बचाओ, मुझे बचाओ। मुझे खच्चरें काट रही हैं। एक दिन वह होश में थे तो मैंने (फरमान अली) पूछा- हाजी साहिब, अगर आप गुस्ताखी माफ करें तो यह बताने की मेहरबानी करें कि बेहोशी में आप मुझे बचाओ, मुझे बचाओ क्यों कहते हैं। आपको क्या नज़र आता है। हाजी साहिब रो पड़े और कहा - तमाम मोहल्ले के लोगों को बुलाओ, मैं अपना गुनाह ब्यान करना चाहता हूँ। ताकि मेरे दिल को तसकीन मिले और आराम से मैं जहान से कूच कर सकूँ। जो बात उनके दिल में थी लोगों के आ जाने पर कहनी शुरू की। उन्होंने फ़रमाया- जवानी में मैं मिलिट्री में था। अंग्रेजों का राज्य था मिलिट्री में घोड़े और खच्चरों को राशन देने होता था जो कि मुकर्रर था। काफी अरसे बाद मुझे ख्याल आया कि स्टोरकीपर से मिलकर अगर कुछ राशन कम कर दिया जावे तो इन जानवरों को खास फ़र्क नहीं पड़ेगा। इस प्रकार मैंने और स्टोरकीपर ने

बेजबानों का पेट काटकर लाखों रुपये कमाये। उन रुपयों से गाँव में काफी जमीन खरीदी। मन में डर तो था ही कि कहीं भेद न खुल जाये। इसी डर से नौकरी से इस्तीफा दे दिया। फिर भी मन में डर बना रहा। दोबारा हज पर गया। बच्चों को मिठाईयां बांटी। गरीबों यतीमों व अनाथ औरतों की मदद की। लोगों ने इस कारण मेरी इज्ज़त की। मुझे हाजी समझा। मैंने अपना गुनाह दिल में छुपाए रक्खा। अब मौत मेरे सामने है। जब मैं बेहोश हो जाता हूँ तो वह घोड़े और खच्चर मुझे काटते हैं और बड़ा दु:खी होता हूँ।

इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''यह बात बिल्कुल ठीक है। कोई भी आदमी पाप करके लोगों से छुपा सकता है लेकिन खुद अपने से नहीं छुपा सकता। अन्दर मौजूद खुदा सब कुछ जानता है। हर व्यक्ति को अपना किया हुआ अच्छे या बुरे काम का फल जरूरी भोगना पड़ता है।

3

श्री करम चन्द टंडन, चंडीगढ़

(1) गुरु स्वयं शिष्य को चुनता है

(क)

मैं कठाई गाँव में रहता था जो कि आज़ाद काश्मीर के मुज़फ्फराबाद से काश्मीर रोड पर पड़ता था। यहाँ से 4-5 मील की दूरी पर नड्धज्जियाँ गाँव था, यहीं पर एक स्कूल में मैं मास्टर था। गुरुदेव 1940 की गर्मियों में यहाँ पहली बार चिनारी होते हुए पहुँचे थे। चिनारी में उन्होंने सत्संग सम्मेलन किया था। मैं प्रेमी जिवन्दा शाह के साथ सम्मेलन में गया था, वहीं पहली बार गुरुदेव के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव दो महीने एकांतवास के लिए उचित स्थान की तलाश में थे। प्रेमी जिवन्दा शाह ने श्री महाराज जी को वहाँ से लगभग 2 मील दूर स्थित एक एकांत जगह दिखायी। इस स्थान का नाम चखौटी था। यहीं पर प्रेमी की दुकान तथा चौबारा था। दुकान से लगभग 15 फीट के फासले पर काली नाग का नाला (दरिया) था जिसका जल बहुत साफ और ठंडा था। इस स्थान के चारों ओर ऊँचे काले पहाड़ थे जिसके कारण सायं 5 बजे सूर्यास्त हो जाता था। सारा दृश्य बड़ा ही मनोहारी था।

इसी चौबारे पर रोज़ हिन्दू-मुसलमान प्रेमी गुरुदेव से वार्तालाप करने आते थे। मैं भी दिन में 1-2 बजे तक स्कूल से सीधा यहाँ पहुँच जाता था। मेरा भोजन भी यहीं होता था। एक दिन श्री महाराज जी ने अचानक कहा, ''लाल जी! बनारसी लाहौर छपाई करवाने के वास्ते चला गया है। क्या आप कुछ लिखने का कार्य कर सकते हो?'' मैंने हाँ कर दी। दिन के 1 बजे से 4 बजे तक वाणी का प्रवाह चलता रहता था। 'निर्बन्ध जीवन प्रकाश' नामक वाणी यहाँ पर गुरुदेव ने लिखवाई थी। वाणी लिखने के बाद हम दोनों दरिया के किनारे एक सुन्दर सी शिला पर बैठ जाते थे। श्री महाराज जी अक्सर समाधिस्थ हो

जाते थे। उस प्रेम और आनन्द की मूर्ति के मुखमण्डल को देखकर मैं आत्मविभोर हो जाता था। जब गुरुदेव की आँख खुलती थी तभी वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त होता था। मैं हर शनिवार को घर चला जाता था और सोमवार को अपनी ड्यूटी पर वापस आ जाता था।

एक दिन शनिवार को अचानक श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''लाल जी! मलमल की एक पगड़ी लेकर आना।'' उस समय मेरी 22 वर्ष की उम्र थी। उसी वर्ष फरवरी माह में मेरी शादी हुई थी। बालों को कंघे से संवारने की आदत थी। पगड़ी पहनने का कोई प्रश्न नहीं उठता। मेरी समझ में नहीं आया कि श्री महाराज जी पगड़ी क्यों मंगा रहे हैं। सोमवार को वापस लौटने पर मैं पगड़ी साथ नहीं लाया। श्री महाराज जी ने पूछा, ''लाल जी! पगड़ी लाए हो?'' मैंने झूठ बोल दिया, 'महाराज जी! याद नहीं रहा।' अगले शनिवार को जब घर जाने लगा तो फिर श्री महाराज जी ने कहा, ''लाल जी! पगड़ी लेकर आना।'' मैं जान बूझकर दुबारा भी पगड़ी नहीं ले गया। घर से 5-6 मील के फासले पर चनारी में कपड़े की दुकान थी, इसीलिए सोचा कि कौन इतनी दूर पगड़ी लेने जाए। श्री महाराज जी के पास पहुँचने पर फिर उन्होंने पूछा, ''लाल जी! पगड़ी लाए हो?'' मैंने फिर झूठ बोल दिया, 'महाराज जी! याद नहीं रहा।' अगले शनिवार को फिर श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''लाल जी! आज तुमसे यह आखिरी बार कह रहे हैं कि घर से पगड़ी लेकर आना। '' मैं मन में सोचता रहा कि पता नहीं बार-बार मुझसे पगड़ी लाने के लिए क्यों कह रहे हैं। दीक्षा के बारे में मुझको उस समय तक कुछ पता नहीं था। फिर भी अगली बार मैं 5 गज की मलमल की पगड़ी लेकर श्री महाराज जी के पास पहुँचा। सायंकाल के समय मैंने पगड़ी श्री महाराज जी को दे दी। रात को श्री महाराज जी ने कहा, ''लाल जी! सुबह 8 बजे स्नान करके आ जाना।'' उन दिनों श्री महाराज जी सुबह 3 बजे उठकर बाहर चले जाते थे। प्रातः 8 बजे दरिया में ही स्नान करके वापस लौटकर आसन पर विराजमान हो जाते थे। उस समय उनको लगभग 400 मि. लिटर दूध 200 मि. लिटर पानी युक्त चाय का

सेवन करवाया जाता था। निर्धारित समय पर मैं उनको प्रणाम करके उनके सामने बैठ गया। उन्होंने उस पगड़ी के कपड़े में से लम्बाई में पतली सी पट्टी फाड़कर थैले में रख ली। बाकी पगड़ी उन्होंने स्वयं अपने कर कमलों से मेरे सिर पर बाँधी। फिर श्री महाराज जी ने पवित्र उपदेश देकर फ़रमाया, ''लाल जी! आज तुमको नया जीवन दिया गया है।''

एक मार्मिक बात मुझे श्री सत्गुरुदेव ने उस समय कही थी। ''लाल जी! छः महीने का रास्ता है यात्रा जल्द-अज-जल्द (शीघ्र अति शीघ्र) शुरू करो। तुम जल्द ही मंज़िले मकसूद पर पहुँच जाओगे।''

(ख)

सन् 1941 की बात है, एक सज्जन चौधरी फ़कीर चन्द सहगल, जो कि मेरी पत्नी के मौसा थे, श्री महाराज जी के सम्पर्क में आए। यह प्रेमी गाँव शारियाँ के एक धनी दुकानदार थे और बड़े धार्मिक विचारों के थे। इन्होंने श्री महाराज जी से प्रार्थना की थी कि कुछ दिन वह इनके पास ही ठहरे। इन्हीं की प्रार्थना पर श्री महाराज जी 1942 की गर्मियों में शारियाँ से 7-8 किलोमीटर दूर सरूपा जंगल में दो माह तक ठहरे थे। तप के दौरान चौधरी जी दिन-रात श्री महाराज जी की सेवा में रहते थे। यह जंगल इतना भयानक था कि दिन में भी चीते और भालू वहाँ पर घूमते रहते थे। चौधरी जी के दो बेटे और तीन-चार नौकर खच्चरों से सब सामान और भोजन सामग्री जंगल में पहुँचाते रहते थे। जो प्रेमी श्री महाराज जी के दर्शनों के वास्ते वहाँ जाते थे। उनकी सेवा में यह सामान खर्च होता था। दो मास वहाँ ठहरने के पश्चात् जब वर्षा ऋतु प्रारम्भ हुई तो श्री महाराज जी ने वहाँ से प्रस्थान किया। रास्ते में कुछ दिन शारियाँ में चौधरी जी के यहाँ ठहरे। एक दिन चौधरी जी ने श्री महाराज जी से विनती की, 'महाराज जी! दास पर कृपा करें और चरणों में स्थान दें।' उस समय चौधरी जी की आयु 50-60 वर्ष के बीच में थी। उनका सिर श्री महाराज जी के चरणों पर था और आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। श्री महाराज जी के नेत्र बंद थे और

वहाँ पूर्ण मौन था। कुछ समय इसी प्रकार बीत गया। जब श्री महाराज जी के नेत्र खुले तब उन्होंने अपने कर कमलों से चौधरी जी को उठाया और फ़रमाया, ''चौधरी जी! अभी समय नहीं आया, ईश्वर आज्ञा अभी नहीं हुई।'' इस पर उन्होंने कहा, 'हे प्रभु! मेरा कल्याण कब होगा?' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''अगले वर्ष फिर आएंगे, जैसी प्रभु आज्ञा होगी।''

इस घटना के पश्चात् मैंने श्री महाराज जी से कहा, 'गुरुदेव! सरूपा जंगल में चौधरी जी ने आपकी बड़ी सेवा की थी। पिछले वर्ष से आपके आगे आँसू बहाकर प्रार्थना कर रहे हैं परन्तु फिर भी आपके मन को नहीं पिघला सके। आप उन पर कृपा क्यों नहीं कर रहे हैं? मुझको तो आपने तीन बार पगड़ी लाने के लिए कहा था। तीसरी बार अपनी ही इच्छा से आपने मुझे दीक्षा दी, जबकि चौधरी जी बार-बार आपसे प्रार्थना कर रहे हैं।' श्री महाराज जी मेरी बात सुनकर बोले, ''लाल जी! तुम्हारी भूमि नरम थी। पिछले जन्म की कुछ मेहनत थी। इस जन्म के भी संस्कार अच्छे थे, इसलिए कृपा कर दी। परन्तु चौधरी तो पिछले 40 साल से व्यापार में ऊँच-नीच कर रहा है। इसकी भूमि बड़ी सख़्त है। इसमें ज़रा कसकर हल चलाना पड़ेगा। इनका हृदय कठोर है। हल चलाने के बाद जब सिंचाई होगी तभी इसकी भूमि नरम होगी। तुम कहते हो कि ऐसे ही भूमि में बीज डाल दिया जाए।''

चौधरी साहब को दो वर्ष तक दीक्षा के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी। अगले वर्ष सन् 1943 में जब श्री महाराज जी वहाँ गए तब चौधरी जी पर उन्होंने कृपा की। इस घटना से सिद्ध होता है कि समय आने पर गुरु स्वयं ही शिष्य को चुनता है।

(2) विकारों से मुक्ति

हमारे गाँव कठाई के ही एक निवासी थे जिनका नाम था सुखदयाल।। वह हर समय शराब के नशे में धुत रहते थे। शराब की भट्टी घर में लगा रखी थी। नाजायज़ शराब बनाते थे। उसका सेवन स्वयं भी करते थे

और बेचते भी थे। एक दिन अचानक चिनारी में श्री महाराज जी के सत्संग में आ गए। जब सत्संग समाप्त हुआ और लोग प्रस्थान करने लगे तो क्या देखा कि सुखदयाल जी श्री महाराज जी के चरणों में सिर रखकर रो रहे हैं। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी और रो-रो कर हिचकियाँ बँध गयी थी। कह रहे थे, 'महाराज जी! मुझे इस घोर नरकी जीवन से बचा लो। मैं आपकी शरण में आया हूँ।' श्री महाराज जी समाधिस्थ थे। काफी देर पश्चात् उन्होंने आँखें खोलीं। सुखदयाल जी को चरणों से उठाया और सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। उस दिन के पश्चात् प्रेमी जी की काया पलट गई। नशा और बुरी आदतें सब छूट गईं। गुरु कृपा से पिछले शुभ संस्कार जागृत हो गए और प्रभु चरणों में प्रेम हो गया। इसके पश्चात् गाँव में नित्य सत्संग करने लगे।

(3) गुरु अन्तर्यामी

सन् 1941 के अक्टूबर माह की बात है। मैं गुरुदेव के जन्म स्थान गंगोठियाँ में वार्षिक सम्मेलन में भाग लेने हेतु गया हुआ था। वहाँ बड़ी दूर-दूर से जनता इस यज्ञ में भाग लेने आती थी। सम्मेलन समाप्ति के दो दिन पश्चात् एक-एक करके सभी शिष्य श्री महाराज जी की आज्ञा लेकर वापस होने लगे। सभी प्रेमी बारी-बारी से सत्गुरुदेव के चरणों में प्रणाम कर रहे थे। फिर सबको विदा करने के लिए श्री महाराज जी कमरे से उठकर बरामदे में आ गए। बड़े प्रेम से सब विदा हो रहे थे। अचानक श्री महाराज जी एक तरफ़ को मेरे पास आए और चुपचाप मेरी जेब में चाँदी के 8 रुपए डाल दिए। मैं इस बात से कुछ परेशान सा हुआ और गुरुदेव के चरणों में गिर कर प्रार्थना की, 'महाराज जी! आप क्या कर रहे हैं? मुझे पाप के गड्ढे में क्यों धकेल रहे हैं? यह स्थान तो देने का है, लेने का नहीं।' उसी समय मुझे बड़े विनम्र भाव से समझाने लगे, ''लाल जी! मुझे पता है कि तुम्हारे पास वापस जाने के लिए किराए के वास्ते पैसे नहीं हैं। चुप होकर इन्हें स्वीकार कर लो।'' मैं ख़ामोश हो गया। बात बिल्कुल ठीक थी। मेरी जेब में वापस लौटने हेतु वास्तव में पैसे नहीं थे। परन्तु

अन्तर्यामी सत्गुरु ने अपनी अन्तर दृष्टि से यह सब जान लिया था। मैंने मन में में सोच लिया था कि वापसी का किराया मैं लाला फ़कीर चन्द जी से ले लूँगा और घर पहुँचकर वापस कर दूँगा। आज जब मुझको यह घटना याद आती है तो रोमांचित हो उठता हूँ। साथ ही यह भी ध्यान आ जाता है कि गुरु अन्तर्यामी हैं और सदैव संग हैं।

(4) कुछ अन्य बातें

चमत्कारों के सम्बन्ध में वे प्राय: कहा करते थे कि यह तो मायाजाल है, परम पद की प्राप्ति में बहुत बड़ी बाधा है। इनसे साधना का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। एक घटना सुनाते हुए उन्होंने कहा कि एक साधक 15-20 वर्ष तक तप करके आए। इसके परिणाम स्वरूप उनको जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त हो गयी। जनता को प्रभावित करने के लिए उन्होंने सबके सामने पानी पर चलकर गंगा पार करके दिखाई। एक सिद्ध पुरुष भी यह नज़ारा देख रहे थे। उन्होंने उस साधक से पूछा, 'तुमने कितने वर्ष इस सिद्धि को प्राप्त करने में लगाए?' उसने उत्तर दिया, 'इस कार्य में मुझको 15 वर्ष लग गए।' तब सिद्ध पुरुष ने फरमाया कि तुमने 15 वर्ष में एक आना की सिद्धि प्राप्त की है। यदि किसी नाव वाले को एक आना (पुराना सिक्का) देते तो तुमको वह नदी पार करवा देता। इसीलिए गुरुदेव ने चमत्कारों की तरफ़ कभी ध्यान नहीं दिया। उनके जीवन में एकमात्र घटना उस समय घटी थी जब उन्होंने जलते हुए तंदूर में पैर डाला था, परन्तु फिर भी एक बाल तक न जला था।

एक दिन की बात है, मैंने श्री महाराज जी से कहा, महाराज जी! कोई मठ, आश्रम या डेरा मत बनाना।' इस पर श्री महाराज जी ने कहा, ''लाल जी! संगत के वास्ते एक जगह एकत्र होना लाभकारी होता है, मगर यह ऐसी व्यवस्था कर जाएंगे कि प्रेमी ऐसे स्थानों का दुरुपयोग न कर सकें। न ही यह मठ, समाधि वग़ैरा बनाने की आज्ञा देंगे।'' उनका कहना था कि गुरु आज्ञा का पालन करना ही गुरु भक्ति है न कि समाधि पर माथा टेकना और फूल चढ़ाना।

अपनी अनुभवी वाणी में उन्होंने फ़रमाया भी है –

एक आतम का होवे विश्वासी, चित्त पर सेवा नित धारी।
पोथी पाषाण मढ़ी नहिं पूजे, सो समता ज्ञान विचारी।।

दो माह के तप के दौरान ही एक दिन सायंकाल श्री महाराज जी दरिया किनारे शिला पर बैठे हुए थे। मैं उनके चरणों में विराजमान था। अचानक उन्होंने मुझसे कहा, ''यह समता सिद्धान्त का बीज अगले 100 वर्षों में फल लाएगा। एक दिन समता धर्म का सूर्य सारे संसार में चमकेगा। यह समतावाद कोई नया मज़हब या पंथ नहीं है। यह शिक्षा प्राचीन वेदों और उपनिषदों के सिद्धान्तों की सरल व्याख्या के रूप में प्रभु आज्ञा से प्रकट हुई है।'' वार्तालाप के दौरान गुरुदेव ने एक दिन मुझसे यह भी कहा था कि वाणी का व्यापक प्रचार होने में 500 वर्ष तक का समय लग सकता है।

नोट : महात्मा बुद्ध की वाणी / शिक्षा का व्यापक प्रचार सम्राट अशोक के काल में हो पाया था।

4

श्री नरेन्द्र कुमार जिंदल, अम्बाला

(1) राम के दर्शन अन्दर करो

मेरी पहली भेंट श्री महाराज जी से सितम्बर 1953 में जगाधरी आश्रम में हुई थी। 23 सितम्बर 1953 का दिन था, अचानक मेरी भेंट श्री गुरशरण दास जी से हुई। वह मेरे मित्र थे तथा एक ही आफ़िस में दोनों काम करते थे। उन्होंने बताया कि मेरे गुरुदेव जगाधरी आश्रम में पधार चुके हैं, और कल सायंकाल की गाड़ी से हम कुछ लोग उनके दर्शनार्थ जगाधरी जा रहे हैं। फिर कहने लगे कि अगर तुम्हारा विचार हो तो तुम भी कल स्टेशन पहुँच जाना। इस पर मैंने प्रश्न किया कि उनका क्या नाम है और किस प्रकार के वस्त्र पहनते हैं, गेरुआ या सफेद। प्रेमी ने गुरुदेव का नाम महात्मा मंगतराम जी बताया और वस्त्रों के बारे में कहा कि सफेद कपड़े पहनते हैं। मैंने उनसे कहा कि मैं आपके साथ उनके दर्शन के लिए चलूँगा। मेरे मन में जिज्ञासा इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि न तो मैंने ऐसा नाम कभी सुना था और न ही सफेद वस्त्रों में कोई सन्त देखा था। मैं रामायण का पाठ किया करता था जिसमें संत दर्शन की अपार महिमा का वर्णन है। संस्कारों ने भी अपना कार्य किया।

सायंकाल की गाड़ी से हम सब लोग रात्रि के लगभग 8 बजे जगाधरी आश्रम में पहुँच गए। इससे पहले मैं संगत समतावाद से परिचित नहीं था। अपने कमरे के बरामदे में श्री महाराज जी विराजमान थे। बरामदे में एक गैस जल रही थी तथा वहाँ दरी बिछी हुई थी। दरी पर एक लोई बिछी थी जिस पर श्री महाराज जी विराजमान थे। बड़ी सादगी थी, किसी भी प्रकार का ठाठ-बाट, तकिया वग़ैरा वहाँ नहीं था। उसी दरी पर हम सब बैठ गए। श्री महाराज जी शरीर से बड़े दुबले-पतले थे। खादी का एक बटन वाला कुर्ता, सिर पर पगड़ी तथा धोती तहमद की शक्ल में बाँधी हुई थी। आँखों में बड़ी चमक

मालूम देती थी। चेहरे पर उदासीनता थी। कभी श्री महाराज जी आँखें खोलते, फिर बन्द करके समाधिस्थ हो जाते। दास उनके मुख को ही निहारता रहा। बड़ी ही शान्ति वहाँ महसूस हुई। जब उन्होंने आँखें खोलीं, फरमाने लगे, ''प्रेमियों! कोई प्रश्न करो।'' एक प्रेमी ने आत्मा-परमात्मा के बारे में प्रश्न किया। श्री महाराज जी ने उसको बहुत तर्कपूर्ण ढंग से संक्षिप्त सा उत्तर दिया। वह उत्तर मुझे याद नहीं रहा। यह मेरा पहला अवसर था। सिवाय गुरशरण दास के न तो मैं किसी अन्य प्रेमी को जानता था और न ही मैंने ऐसा माहौल अपनी ज़िन्दगी में देखा था। उस समय मेरी आयु लगभग 24 वर्ष की थी। घर में माता-पिता, दादा-दादी से मूर्ति पूजा के संस्कार विरासत में मिले थे। बचपन से पूजा-पाठ और रामायण पढ़ने का स्वभाव था। श्री महाराज जी के सामने कई प्रश्न-उत्तर हुए परन्तु मेरी समझ में कुछ नहीं आया। इतने में खाने की घन्टी बजी, श्री महाराज जी ने सबको खाने के वास्ते तथा विश्राम करने के लिए कहा। खाना खाकर रात्रि को विश्राम किया। सवेरे नहा-धोकर 7 बजे के लगभग मैं तथा कुछ अन्य प्रेमी श्री महाराज जी के कमरे में उपस्थित हुए और दंडवत प्रणाम करके उनके पास बैठ गए।

मैं मूकदर्शक ही बना रहा, पर मन में कई प्रकार के विचार उठ रहे थे। श्री महाराज जी ने कहा ''प्रेमियों! कोई सवाल करो।'' जब कोई भी नहीं बोला तो दास ने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! मूर्ति पूजा का क्या लाभ है?' श्री महाराज जी ने जो उत्तर दिया वह बड़ा ही कठोर और पंजाबी भाषा में था। उस समय मेरे जैसे व्यक्ति के लिए उनके रहस्यपूर्ण उत्तर को समझ पाना कठिन था। परन्तु उनकी शरण में आने के पश्चात् अब वह सब भली प्रकार समझ में आता है। श्री महाराज जी के द्वारा उच्चारण किए गए शब्द मुझको अभी तक याद हैं। उन शब्दों का भावार्थ इस प्रकार से है :-

''प्रेमी जी! मूर्ति पूजा से कोई लाभ नहीं। तुम हिन्दू लोग केवल मूर्ति पूजकर कल्याण चाहते हो। जिस देवता, भगवान या सत्पुरुष की मूर्ति पूज रहे हो उनके जीवन आदर्श की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता। जब तक उनके

आदर्शमय जीवन को आप नहीं अपनाओगे, तब तक किसी प्रकार का कोई लाभ होने वाला नहीं। जो ग्रन्थ और वाणी उन्होंने आप लोगों के लिए प्रकट की है उनका स्वाध्याय करके जब तक जीवन में उन विचारों को धारण नहीं करते तब तक उन ग्रन्थों के पढ़ने का कोई लाभ नहीं। जो क़ौम अपने सत्पुरुषों की कदर नहीं करती वह तबाह हो जाती है, दूसरी क़ौमें आकर उन पर शासन करती हैं।''

यह बात अब तक किसी ने दास को समझाई नहीं थी। केवल रामायण का पाठ करने से कल्याण हो जाएगा, यही धारणा स्वभाववश बनी हुई थी। प्रथम दर्शन में न तो श्री महाराज जी के मर्म भरे शब्दों को मैं समझ पाया और न ही श्री महाराज जी की स्थिति को जान पाया। अगर मैं यह कहूँ कि मैं जान गया था कि श्री महाराज जी बड़े ऊँचे सन्त थे, तो यह मेरी मूर्खता ही होगी। एक साधारण व्यक्ति ऐसी महान हस्ती को उनकी कृपा से ही जान सकता है। हाँ, अब मैं यह कह सकता हूँ कि ऐसे सत्पुरुष का मिलाप होना ईश्वर की महान कृपा है। जैसे रामायण में कहा है –

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता

उसी दिन रात्रि के आठ बजे अम्बाला पहुँच गए। कई दिनों तक श्री महाराज जी के शब्द मेरे कानों में गूँजते रहे। बार-बार उनका चेहरा आँखों के सामने आता रहा। अक्टूबर 1953 के सम्मेलन में दास जगाधरी नहीं गया था। परन्तु प्रेमी जी से पता चला कि गुरुदेव नवम्बर माह के आरम्भ में एक माह के लिए अम्बाला पधार रहे हैं। मन में उनसे दोबारा मिलने की जिज्ञासा पूर्ण हुई।

2 नवम्बर, 1953 को सायंकाल 7 बजे प्रेमी भाई गुरशरण दास ने मेरे घर पर मुझको आवाज़ लगाई और कहा कि श्री महाराज जी अम्बाला पधार चुके हैं। यह शब्द सुनकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ और श्री महाराज जी के दर्शनार्थ मैं उनके साथ चल दिया। उनके ठहरने का प्रबन्ध संगत ने वीरान जगह पर नए बाँस के मरघट से आगे एक बग़ीचे में किया था, श्री महाराज जी यहाँ पहली नवम्बर को अम्बाला पधार चुके थे।

बग़ीचे में पहुँचकर श्री महाराज जी को एक बड़े टैन्ट में अपने आसन पर बैठे हुए देखा। टैन्ट में काफ़ी प्रेमी उनके चरणों में बैठे हुए थे। श्री महाराज जी समाधि अवस्था में लीन थे। थोड़ी देर बार जब उन्होंने आँखें खोली तब सारे उपस्थित प्रेमियों पर दृष्टिपात किया। फिर फ़रमाया, ''प्रेमियों! कोई सवाल करो।'' एक प्रेमी ने उस समय प्रश्न किया, 'महाराज जी! प्रभु की भक्ति कैसे की जाए?' गुरुदेव ने 15 मिनट तक उसका उत्तर अपने वचनों द्वारा दिया। उत्तर क्या था, वह मुझको याद नहीं रहा। वास्तव में उनकी बात मेरी समझ में भी नहीं आई थी। कारण यह था कि भगवान राम और श्री कृष्ण का उनके उत्तर में कोई ज़िक्र नहीं था। मैं अपने मन में यही सोच रहा था कि पता नहीं कौन सा मत है और किस भगवान को पूजते हैं। इसी प्रकार प्रेमीजन प्रश्न पूछते रहे और श्री महाराज जी उसका उचित उत्तर देते रहे। अन्त में आरती हुई और प्रसाद लेकर मैं प्रेमियों के साथ अपने घर रात्रि 11 बजे पहुँचा।

अगले दिन फिर सायंकाल मैं श्री महाराज जी के दरबार में उपस्थित हुआ। उस दिन श्री चिरंजीत लाल, मजिस्ट्रेट, अपनी धर्मपत्नी सहित बैठे प्रश्न-उत्तर कर रहे थे। यह श्री महाराज जी के हैडमास्टर के लड़के थे और अम्बाला में कार्यरत थे। जो बातें हो रही थीं वह ठीक प्रकार समझ में नहीं आईं। इतना दास ने ज़रूर सुना कि तुम हमारे सखा हो, तुम्हें हम पर विश्वास नहीं होगा। यह बात श्री महाराज जी ने तब कही जब वे दीक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। रोज़ाना की तरह आरती व प्रसाद वितरण के पश्चात् दास घर पहुँचा।

इसी प्रकार 2-3 दिन तक मैं वहाँ सायंकाल सत्संग में श्री महाराज जी के पास जाता रहा। प्रत्येक दिन श्री महाराज जी अपने प्रवचन में यह बात कह देते कि लोग यहाँ आते हैं, घन्टियां खड़काते हैं और आरती उतारते हैं, परन्तु इनकी बात को सुनकर भी सही विचार नहीं करते। इस प्रकार की भक्ति इन लोगों का कैसे कल्याण करेगी। जब तक विचार ठीक नहीं, कर्म में पवित्रता नहीं तब तक ऐसे लोग अन्धविश्वास में अपने जन्म को बर्बाद कर रहे

हैं।

प्रत्येक दिन जब मैं उपरोक्त विचार सुनता रहा तब एक दिन निश्चय किया कि कल से श्री महाराज जी के पास नहीं जाऊँगा, क्योंकि न तो उनकी बात समझ में आती है और न ही मूर्ति पूजा की बात करते हैं। इसलिए छठे रोज़ दास नहीं गया। इस प्रकार एक सप्ताह और बीत गया। तेरहवें रोज़ श्री गुरशरण दास ने सायंकाल आवाज़ लगाई और कहा कि श्री महाराज जी तुमको याद कर रहे हैं। मुझे तुमको उनके पास ले जाने की आज्ञा हुई है। दास ने फ़ौरन प्रेमी जी को उत्तर दिया कि हम आपके श्री महाराज जी के पास नहीं जाएंगे, क्योंकि हमको उनकी कोई बात समझ में नहीं आती है और यह भी पता नहीं कि वह कौन से भगवान की पूजा करते हैं, जबकि तमाम हिन्दू लोग श्री राम व कृष्ण की पूजा करते आ रहे हैं। उनके प्रवचन में किसी भी देवी-देवता की पूजा का भी ज़िक्र नहीं आता।

इस पर प्रेमी जी ने कहा, 'मेरे साथ आज अवश्य चलना होगा, क्योंकि श्री महाराज जी ने आपको लाने के लिए आज्ञा की है। इच्छा न हो तो कल मत जाना।' इस पर दास प्रेमी जी के साथ चल दिया और वहाँ पहुँचकर सबसे पीछे वाली लाइन में बैठ गया। मन में ऐसा विचार था कि श्री महाराज जी ने मुझे बुलाया है, कहीं मुझे विचार करने के लिए न कह दें। श्री महाराज जी समाधि से आँखें खोलीं और फ़रमाया, ''प्रेमियों! कोई विचार करो।'' किसी ने कोई प्रश्न नहीं पूछा। 3-4 मिनट बीतने के पश्चात् श्री महाराज जी फिर समाधिस्थ हो गए। करीब 10 मिनट बाद श्री महाराज जी ने फिर आँखें खोलीं और फ़रमाया, ''प्रेमियों! कोई विचार करो।'' वातावरण बिल्कुल शाँत था। किसी ने कोई विचार नहीं किया। श्री महाराज जी ने दोबारा फ़रमाया, ''प्रेमियों! कोई विचार करो।'' मेरे मन में बैठे-बैठे यह विचार स्वत: आया कि कहीं मुझको विचार करने के लिए न कह दें, बड़ी मुश्किल हो जाएगी। आखिर वही हुआ जिसका मुझे अन्देशा था। श्री महाराज जी ने मेरी ओर इशारा करके कहा, ''प्रेमी! तुम कोई विचार करो।'' इतना सुनते ही मैं बहुत परेशान

सा हुआ और गर्दन नीची करके बैठा रहा। परन्तु उपस्थित प्रेमियों ने मुझसे कहना शुरू कर दिया कि श्री महाराज जी तुमसे विचार करने के लिए कह रहे हैं। उन्होंने मुझको वहाँ से उठाकर श्री महाराज जी के सामने बैठा दिया। श्री महाराज जी ने बड़े प्रेम भरे शब्दों में दास से कहा, ''लाल जी! कोई विचार करो।''

उस समय दास के मुख से यही बात निकली, 'महाराज जी! मैं तुच्छ बुद्धि जीव हूँ और आपके चरणों की धूल हूँ। आप ही कृपा करके विचार प्रदान करें और उसका उत्तर भी आप ही फ़रमाएं।' कृपासिन्धु श्री महाराज जी ने मेरी बुद्धि में ऐसा विचार डाला जिसकी मैं कभी कल्पना नहीं कर सकता था। विचार था – भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन का वार्तालाप हो रहा है। उस समय अर्जुन श्री कृष्ण से मन को वश में करने का उपाय पूछ रहे हैं और कह रहे हैं कि पवन का वेग बड़ा प्रबल है, परन्तु मन का वेग इससे भी प्रबल है। श्री महाराज जी यह प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा, ''कितना अच्छा प्रश्न किया है।'' सच तो यह है कि यह प्रश्न उनकी कृपा से कर पाया था, मेरी कोई सामर्थ्य नहीं थी। यह उनकी परम कृपालुता और दयालुता थी। इसी प्रश्न पर सारा सत्संग हुआ। इसका उत्तर श्री महाराज जी ने वाणी के द्वारा दिया। बहुत समय बीत गया, वाणी याद नहीं परन्तु उसकी पहली लाइन यह थी –

तन के सुखिए बहु मिले, मन का मिला न कोई।
जब मन का सुखिया मिला, तब पार उतारा होई।।

सत्संग अवश्य सुना पर मेरी समझ में कुछ नहीं आया। परन्तु श्री महाराज जी के मुखारबिन्द से वाणी सुनकर मन उस समय गद्‌गद् हो गया। उसी समय संकल्प लिया मैं हर रोज़ श्री महाराज जी के सत्संग में आया करूँगा। सत्संग समाप्त हुआ और अपने साथियों के साथ मैं घर वापस लौटा। अगले दिन मैं फिर सायंकाल सत्संग में उपस्थित हुआ। सत्पुरुष के पास ऐसी कशिश थी कि वहाँ मन अब कुछ शाँति अनुभव करने लगा। सत्संग समाप्ति के पश्चात् मुझको पं. जगन्नाथ, कोहाला वाले, मिले और कहने लगे, 'तुम

सत्संग के पश्चात् श्री महाराज जी के पास बैठा करो।' मैंने उनकी बात को उस समय टाल दिया, परन्तु जब मैं घर पहुँचा तो यह शब्द मेरे कान में एक घण्टे तक गूँजते रहे कि शंका समाधान के लिए श्री महाराज जी के पास बैठा करो।

अगले दिन सत्संग में फिर उपस्थित हुआ और समाप्ति के पश्चात् उनके पास बैठा। 4-5 सज्जन वहाँ बैठे हुए थे। उनमें से दो प्रेमी उनकी टाँगें दबा रहे थे और श्री महाराज जी उनसे कह रहे थे कि सूखे लक्कड़ मत दबाओ। वास्तव में उनकी टाँगें बहुत पतली थीं। दास ने सोचा कि श्री महाराज जी का कन्धा और बाँह मुझको दबानी चाहिए तभी वार्तालाप का अवसर मिलेगा। ज्यों ही मैंने उनके कन्धे पर हाथ रखा, ऐसा लगा जैसे किसी कोमल चीज़ को मैंने स्पर्श किया है और मन में विचार आया कि कहीं टूट न जाए, क्योंकि श्री महाराज जी का शरीर अति सूक्ष्म खुराक लेने के कारण बहुत कोमल था। अभी यह विचार आया ही था कि श्री महाराज जी ने मेरे मन के भाव को जानकार कहा, ''कितनी जोर के दबा ले, यह टूटने वाली बाँह नहीं।''

इतनी बात सुनकर मैं नीची नज़र करके उनके पास बैठ गया। तभी उन्होंने मुझसे पूछा, ''प्रेमी! क्या चाहते हो?'' दास ने कहा, 'महाराज जी! कृपा करके मुझे भगवान राम के दर्शन करा दो।' श्री महाराज जी मेरी बात सुनकर समाधिस्थ हो गए। जब 15 मिनट तक आँखें नहीं खुलीं तब मैं वहाँ से उठकर घर चल दिया, क्योंकि रात्रि के 11 बज चुके थे।

अगले दिन दास फिर सत्संग में गया। अब श्री महाराज जी के वचन कुछ समझ में आने लगे थे। सत्संग की समाप्ति पर दास फिर श्री महाराज जी के पास बैठा। उन्होंने फिर वही प्रश्न किया, ''प्रेमी जी! तुम क्या चाहते हो?'' दास ने उत्तर दिया, 'प्रभु! मेरी तो एक ही इच्छा है, आप प्रभु से मिल चुके हैं, आप मुझको भगवान राम के दर्शन करा दो।' श्री महाराज जी ने कहा, ''कौन से राम से?'' दास ने उत्तर दिया, 'क्या राम भी कई हैं?' उस समय गुरुदेव ने फ़रमाया:-

एक राम दशरथ का बेटा। एक राम घट-घट में लेटा।।
एक राम का सकल पसारा। एक राम सभी से न्यारा।।

दास ने उत्तर दिया, 'मुझको दशरथनन्दन राम के दर्शन चाहिए।' इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रभु राम के दर्शन तो कैकेयी, मन्थरा, रावण व सूर्पनखा आदि सब कर रहे थे, उनका कल्याण नहीं हुआ तो तेरा कैसे हो जाएगा?'' मैं निरुतर हो गया और गर्दन नीची करके बैठा रहा। श्री महाराज जी ने दास से कहा, ''प्रेमी! अब घर जाओ, आराम करो। बहुत रात हो गई है।'' दास श्री महाराज जी को प्रणाम करके चल दिया।

अगले रोज़ मैं पुनः सत्संग में उपस्थित हुआ, सत्संग के पश्चात् श्री महाराज जी के निकट बैठा। उनके पास कोई ऐसी कशिश थी कि मन उनके चरणों में बैठने को करता था। श्री महाराज जी ने दास से कहा, ''तुम रोज़ इनके पास चुपचाप आकर बैठ जाते हो, क्या तुमको इनकी बात समझ में नहीं आई?'' दास ने फिर वही कहा कि प्रभु राम के दर्शन आप करा सकते हैं। आप इस तुच्छ दास पर अपनी विशेष कृपा करें। श्री महाराज जी ने कहा, ''जब तक तुम राम के दर्शन अपने अन्दर हृदय में नहीं करोगे, अगर राम तुम्हें मिल भी जाएं तुम उनको नहीं पहचान पाओगे।'' भक्त तुलसीदास के सम्बन्ध में उन्होंने दोहा कहा –

चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीड़।
तुलसीदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुवीर।।

भक्त तुलसीदास को राम बाहर मिले परन्तु वह उनको पहचान नहीं पाए। जब उन्होंने प्रभु राम के दर्शन अपने हृदय में किए तब उन्होंने घोषणा की –

सियाराम मय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।

इसी प्रकार जब तुम राम के दर्शन अपने हृदय में करोगे तब सारा संसार राममय दिखाई देगा। भक्त की जैसी निष्ठा होती है भगवान उसी रूप में दर्शन देने की कृपा करते हैं। दास ने श्री महाराज जी से प्रार्थना की, 'महाराज जी, प्रभु के दर्शन अन्दर कैसे होंगे, कृप्या इस सम्बन्ध में तुच्छ बुद्धि जीव को

समझाने की कृपा करें।' तब उन्होंने कहा कि सत्गुरु की कृपा से ही यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। इतना कहकर श्री महाराज जी समाधिस्थ हो गए। 15-20 मिनट तक मैंने प्रतीक्षा की परन्तु समाधि नहीं टूटी। दास ने श्री महाराज जी को प्रणाम किया और घर को चल दिया। उस समय रात्रि के लगभग 11:30 बजे थे।

हर रोज़ की तरह मैं सायंकाल फिर सत्संग में उपस्थित हुआ और सत्संग के पश्चात् श्री महाराज जी के पास बैठा। श्री महाराज जी ने जब मुझको देखा तो मुझसे कहा, ''प्रेमी! राम के जीवन की कोई बात सुनाओ।'' दास ने श्री महाराज जी से कहा, 'जब दोनों भाई राम और लक्ष्मण वन में माता सीता की खोज में घूम रहे थे, उस समय उनको एक ज़ेवर की पोटली मिली। तब भगवान राम ने लक्ष्मण जी से कहा- भैया, इन ज़ेवर को पहचानो, क्या यह तुम्हारी भाभी के हैं? उस समय लक्ष्मण जी ने उत्तर दिया- मैंने भाभी का मुँह कभी नहीं देखा, मैं उनके पैर के ज़ेवर तो पहचानता हूँ लेकिन गले व मुँह के नहीं पहचानता। श्री महाराज जी, श्री राम तो भगवान थे, उनके भाई लक्ष्मण कितने ऊँचे चरित्र के थे।' इस पर श्री महाराज जी ने दास से कहा, ''माता सीता जिसकी धर्मपत्नी थी, न वह गले के पहचानता है और न ही पैर के पहचानता है। प्रभु राम किस स्थिति के मालिक थे, कभी तुमने विचार किया है?'' दास यह सुनकर चुप हो गया। फिर श्री महाराज जी समाधिस्थ हो गए। थोड़ी देर इंतज़ार करने के पश्चात् प्रणाम करके मैंने रात्रि 11 बजे घर को प्रस्थान किया।

रोज़ के प्रोग्राम के अनुसार मैं अगले दिन पुनः सत्संग के पश्चात् श्री महाराज जी के पास उपस्थित हुआ। कल अपने इष्ट राम की प्रशंसा सुनकर मन में श्री महाराज जी के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा पैदा हुई। दास ने उस दिन श्री महाराज जी से हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'मुझ तुच्छ दास पर अन्तर्मुख होने का रास्ता बताने की कृपा करें।' तब श्री महाराज जी ने कहा, ''अगर कोई संशय हो तो निकाल लो।'' तब मैंने कहा अब कोई संशय नहीं रहा, बस आप कृपा

करें तभी चैन मिलेगा। पूछने लगे कि अब तक क्या और कैसे पूजा करते रहे। दास ने उनको पूरा विवरण बता दिया। इस पर श्री महाराज जी ने कहा, ''ज़ीरो बटे सौ।'' इतना सुनकर मेरे मन को बहुत कष्ट पहुँचा और सोचने लगा कि क्या मैं आज तक अँधेरे में ही रहा। फिर विचार आया कि तेरे भाग्य बड़े अच्छे हैं जो सही रास्ता बताने वाले संत मिल गए हैं। परन्तु श्री महाराज जी का मार्ग क्या है और इनके भगवान कौन से हैं जिनकी यह पूजा करते हैं, यह विचार अन्दर चलने लगे। उसी समय श्री महाराज जी ने एक और प्रश्न दास से किया, ''प्रेमी! यह बताओ कि राम क्या करते थे?'' दास ने उत्तर दिया, 'प्रभु राम तो भगवान थे। जनता उनके दर्शन करके निहाल होती थी।' तब श्री महाराज जी ने कहा, ''सुन प्रेमी! प्रभु राम राजा थे। दिन में राज्य का कार्य करते थे और रात को सारी आयु महल में नहीं सोए। सरयू नदी के किनारे बैठकर भगवान की आराधना में लीन हो जाते थे। इसी प्रकार जब तू दिन में दफ़्तर का काम करेगा और रात को जागकर भगवान का सिमरण करेगा तब तू सही रूप में श्री राम का भक्त होगा। यही कल्याण का सही रास्ता है।'' इतना सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया और श्री महाराज जी को मन ही मन धन्य कहने लगा। फिर दोबारा श्री महाराज जी से कृपा करने की प्रार्थना की। इस पर उन्होंने फ़रमाया, ''आज रात तुम्हारे घर आएंगे।'' तब दास ने कहा, 'कितने बजे आएंगे ताकि घर का दरवाज़ा खुला रखें।' इस पर श्री महाराज जी ने कहा, ''संत ऐसे नहीं आते जैसा तुम सोच रहे हो। यह तो ध्यान में तुम्हारे घर आएंगे।'' दास ने श्री महाराज जी को प्रणाम करके घर को प्रस्थान किया।

घर पहुँचते-पहुँचते रात्रि के 12 बज चुके थे। मन ही मन मैंने विचार किया कि आज सोना नहीं चाहिए। नहा-धोकर माला से जाप करने बैठ गया। सुबह 4 बजे तक जाप किया। फिर एक घण्टा विश्राम किया। उसके पश्चात् घर में निचली मंज़िल से ऊपर पानी भरकर सैर करने चला गया।

उस दिन दफ़्तर पहुँचकर यही विचार मन में चलता रहा कि आज रात सत्संग के पश्चात् जब मैं श्री महाराज जी के पास जाऊँगा तो उनकी कृपा

अवश्य होगी। हर रोज़ की तरह सत्संग के पश्चात् उनके पास बैठा। मुझको देखते ही उन्होंने फ़रमाया, ''प्रेमी! हम तुम्हारे घर गए थे। तीसरी मंज़िल पर तुम्हारा कमरा है। उसकी छत कड़ियों की है। वहाँ दीवार में दो अलमारी हैं और तीन खिड़कियाँ गली की तरफ़ हैं।'' यह सारा विवरण सुनकर मैं आश्चर्य में डूब गया। मन ही मन सोचने लगा कि यह सत्पुरुष कोई मामूली फ़कीर नहीं हैं। करनी वाले पहुँचे हुए फ़कीर हैं। तेरे को कोई बात समझ में आए या न आए, तू अपने आपको इनके प्रति समर्पित कर दे। इनकी शरण में जाते ही तेरी सब समझ में आ जाएगा। इतनी बात मन में सोच ही रहा था कि श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! क्या सोच रहे हो?'' दास ने कहा, 'महाराज जी! आपकी बिना कृपा हुए मेरा जीवन बर्बाद हो जाएगा। मुझे अपनी शरण में लेने की कृपा करें।'

इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''अब तो यह काश्मीर जा रहे हैं, लौटने पर तुमको अवश्य दीक्षा दी जाएगी।'' यह 21-11-1953 की रात्रि के 11 बजे की बात है। दास ने श्री महाराज जी से कहा, 'आपकी विशेष कृपा है कि आपने वचन तो दे दिया, क्योंकि सन्त का वचन खाली नहीं जाता।' दास प्रणाम करके अभी टैन्ट से निकला ही था कि थोड़ी दूर पहुँचते ही श्री बनारसी दास जी ने आवाज़ लगाई कि श्री महाराज जी तुमको बुला रहे हैं। दास श्री महाराज जी के सन्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहा, 'प्रभु! आपकी दास को क्या आज्ञा है?' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रातःकाल छः बजे नहा-धोकर साफ-सुथरे कपड़े पहन कर इनके पास आ जाना, तुमको दीक्षा दे दी जाएगी।''

दास ने श्री महाराज जी से प्रश्न किया कि प्रोग्राम में परिवर्तन का क्या कारण है। इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''इनका क्या पता है कि फिर यह लौटकर आएं या न आएं, तेरे कारण इनको आना पड़ेगा।'' 22 नवम्बर को प्रातःकाल 6 बजे उनके दरबार जा पहुँचा। गुरूदेव की विशेष कृपा हुई और मैं मन ही मन में अपने को सौभाग्यशाली समझने लगा कि इस उच्च कोटि की

महान हस्ती ने तुझको अपनी शरण में ले लिया है।

दीक्षा के समय श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''तुमने इनको पहचाना नहीं।'' दास ने उत्तर दिया, 'महाराज जी! मेरी क्या हस्ती है जो मैं आपको पहचान पाऊँ, यह सब आपकी दयालुता और कृपालुता है।' इस पर श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! गुरु शिष्य को पकड़ता है, शिष्य गुरु को नहीं पहचान सकता।'' दीक्षा देने के पश्चात् जो बहुत ही मार्मिक बात कही थी वह निम्नलिखित है।

''प्रेमी! कच्ची अवस्था में किसी को नाम नहीं बताना। अगर तुमने ऐसी बात की तो सारी दी हुई ताकत तुमसे छीन ली जाएगी।''

नोट : श्री महाराज जी ने 4 फरवरी, 1954 को अमृतसर में अपनी नश्वर देह का त्याग कर दिया था, इसीलिए उन्होंने कहा था कि पता नहीं यह लौटकर आएं न आए, तेरे कारण आना पड़ेगा।

5

श्री गंडू राम, जगाधरी

(1) सत्गुरू से भेंट

सन् 1951 की बात है, मैं जगाधरी स्थित समता योग आश्रम में महात्मा मंगत राम जी के पास रोज़ मिलने जाया करता था। एक दिन घर पर मेरे मन में विचार आया कि श्री महाराज जी ने कभी मुझसे यह नहीं पूछा कि मैं क्या काम करता हूँ। उसी दिन जब मैं श्री महाराज जी के पास पहुँचा तो उन्होंने मुझसे पूछा, ''प्रेमी! क्या काम करते हो?'' मैंने कहा, 'महाराज जी! बर्तनों की दुकान है।' श्री महाराज जी बोले, ''पहले ठठिहार बर्तन बनाया करते थे जो कि शराब और मांस का सेवन करते थे।'' मैंने कहा, 'न तो मैं मांस खाता हूँ और न ही शराब पीता हूँ। यहां तक कि बीड़ी, सिगरेट इत्यादि का भी सेवन नहीं करता।' फिर श्री महाराज जी समाधि में लीन हो गए। लगभग पाँच मिनट बाद जब आँख खुली तो पूछा, ''प्रेमी! तुम्हारा नाम क्या है?'' मैंने कहा, 'गंडू राम।' फिर श्री महाराज जी ने कहा, ''तुमको संतों के पास जाने की कोई ज़रूरत नहीं है।'' मैंने पूछा, 'क्यों श्री महाराज जी?' उन्होंने कहा, ''यदि इन्सान सिनेमा देखता रहे तो संतों के पास जाकर क्या करेगा?'' मैंने कहा, 'महाराज जी! मैं सिनेमा तो ज़रूर देखता हूँ परन्तु धार्मिक फिल्में देखता हूँ।' उन्होंने कहा, ''कोई फिल्म धार्मिक नहीं होती है। सिनेमा ही पाप की जड़ है।''

मैं श्री महाराज जी के पास लगातार जाता रहा परन्तु कभी नाम-दीक्षा लेने के लिए उनसे प्रार्थना नहीं की। एक दिन मेरे एक रिश्तेदार मेरे पास आए जिन्होंने श्री महाराज जी से नाम ले रखा था। उन्होंने मुझको बताया कि श्री महाराज जी केलाघाट, देहरादून में पधारे हुए हैं, चलो उनसे मिल आते हैं । मैं अपने बड़े भाई के पास गया और पूछा, 'क्या देहरादून में श्री महाराज जी

मिलने चलोगे?' उन्होंने कहा, 'एक शर्त पर जा सकता हूँ। पहले रास्ते में हरिद्वार की गंगा में पाप छोड़ आएंगे, फिर देहरादून और मसूरी भी घूमने चलेंगे।'

शर्त मान ली गई। हम 6 प्रेमी हरिद्वार गंगा स्नान करके केलाघाट, देहरादून पहुँच गए। वहाँ जाकर देखा कि दो तम्बू (टैन्ट) लगे हुए थे। हम लोग वहाँ जाकर बैठ गए। मैं पीछे बैठा था तथा मेरा भाई आगे बैठा था। अन्य प्रेमी भी पहले से ही वहाँ मौजूद थे। प्रात:काल का समय था। श्री महाराज जी ने मेरे भाई से पूछा, ''प्रेमी! किधर से आए हो?'' उसने कहा, 'महाराज जी! जगाधरी से आए हैं।' श्री महाराज जी ने कहा, ''गंगा में स्नान करके पाप वग़ैरा साफ करके आए हो न।'' श्री महाराज जी की यह बात सुनकर भाई मेरी तरफ़ आश्चर्य से देखने लगा। उसको देखकर श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी, गंगा में स्नान करने से यदि इस तरह किए हुए कर्मों का फल मिट जाए तब तो यह बड़ा चंगा काम है।'' फिर बड़ी तेज़ आवाज़ में बोले, ''प्रेमी! यदि 24 अवतार भी इक्ट्ठे हो जाएं तब भी तेरा कर्मफल नहीं मिटा सकते।''

हम लोग वहाँ तीन दिन तक रहे। वहाँ प्रेमी ओम कपूर भी आ गए। वह हम लोगों को तपोभूमि की जगह दिखाने के लिए नदी के किनारे-किनारे ले गए। यह जगह तभी खरीदी गयी थी। वहाँ देखा कि कुछ आम के वृक्ष थे। एक पीपल का पेड़ भी था जिसको चरवाहों ने काट रखा था। केवल उसका मुख्य तना बचा था। वही पेड़ अब हरा-भरा हो गया है। एक छोटे से टूटे मन्दिर की दीवारें भी थीं। तीन स्थान पर चश्मों से पानी भी निकल रहा था। इनमें एक बड़ा चश्मा था। जब वापस पहुँचे तो श्री महाराज जी ने पूछा, ''प्रेमी! जगह पसन्द आई?'' हमने कहा, 'महाराज जी! जब आपने पसन्द की है तो हमको पसन्द क्यों नहीं आएगी।' श्री महाराज जी ने आगे कहा, ''वहाँ चश्मे के पास एक गड्ढा है। उसका पानी रोगों को दूर करने वाला है और वह पक्का पानी है। पक्के पानी की यह पहचान है कि उसमें नन्हीं मछलियाँ पैदा हो जाती हैं।'' यही चश्मा आजकल तपोभूमि में पानी का मुख्य स्त्रोत है।

जब चलने का समय आया तो श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! जब इधर आए हो तो मसूरी भी घूम आओ।'' मेरा भाई श्री महाराज जी की बात सुनकर मुझसे चुपचाप कहने लगा कि यहाँ मन में कोई बात मत सोचो, यहाँ श्री महाराज जी को सब पता चल जाता है। फिर हम लोग मसूरी घूमने चले गए।

तीन दिन बाद घर पहुँचने पर मैंने सोचा कि अब श्री महाराज जी से नाम ज़रूर लेना है। सन् 1952 की बात है, श्री महाराज जी दिल्ली में बाग़ कड़े खाँ में ठहरे हुए थे। उनके पास पहुँचकर मैंने नाम दान के लिए प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! तुमको नाम नहीं दिया जाएगा। जगाधरी में रोज़ तुम आश्रम में आते थे परन्तु कभी भी नाम के लिए नहीं कहा। हम जब जगाधरी आएंगे तभी नाम देंगे।'' मैं वापस जगाधरी चला गया लेकिन अन्दर बेचैनी बढ़ती गई इसलिए लगभग 15 दिन बाद फिर श्री महाराज जी के चरणों में पहुँच गया। उस समय रावलपिंडी के प्रेमी भवानी दास भी वहाँ मौजूद थे। श्री महाराज जी ने मुझे देखकर कहा, ''प्रेमी! तू फिर आ गया।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! यहाँ आने के लिए मन में बहुत बेचैनी हो रही थी इसी कारण आया हूँ। अब आप मुझ पर ज़रूर कृपा कर दीजिए।' श्री महाराज जी बोले, ''प्रेमी! अच्छा रात्रि दो बजे आ जाना।'' मैं जिस जगह ठहरा हुआ था वह जगह वहाँ से लगभग 10 किलोमीटर दूर थी। इसलिए मैंने भगत बनारसी दास जी से वहीं ठहरने के लिए प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने ठीक दो बजे भगत जी को आवाज़ दी, ''बनारसी, जगाधरी के एक प्रेमी को 2 बजे का समय दिया था।'' मैं तुरन्त ही बोल पड़ा, 'महाराज जी! मैं हाज़िर हूँ।'

जब श्री महाराज जी ने नाम दिया तो यह कहा, ''प्रेमी! कबीर और नानक भी इसी नाम को जपा करते थे।'' यह सुनकर मैं बहुत हैरान हुआ क्योंकि लगभग 10 वर्ष पूर्व मैं मन में सोचा करता था कि कुछ लोग राम-राम जपते हैं और कुछ लोग नारायण-नारायण जपते हैं, पता नहीं किस नाम को जपने से ज़्यादा लाभ होता है। यह विचार भी बार-बार मन में आता था कि

नानक और कबीर किस नाम का जाप करते थे। निश्चित रूप से अन्तर्यामी गुरुदेव मेरे मन की कल्पना को जानते थे, इसीलिए मेरे निश्चय को पक्का करने के लिए उन्होंने नानक और कबीर की बात मेरे सामने कही।

नाम लेने के पश्चात् मैंने अपनी दुकान बंद करके बर्तन बनाने का कारखाना शुरू कर दिया था। एक दिन जब श्री महाराज जी के पास बैठा था तो उन्होंने मुझसे कहा, ''प्रेमी! हक-हलाल की कमाई का सदैव ख़्याल रखना।'' मैंने कहा, महाराज जी! हमारी सारी कमाई हक-हलाल की है। कुछ लोग सामान बिना पर्ची के ले जाते हैं।' श्री महाराज जी ने तुरन्त कहा, ''प्रेमी! बिना पर्ची के सामान ले जाने से क्या फायदा होता है?'' मैंने कहा, 'महाराज जी! बिना पर्ची के सामान बेचने से लिखा-पढ़त कुछ नहीं करनी पड़ती है और इन्कम टैक्स भी नहीं देना पड़ता है।' श्री महाराज जी बोले, ''प्रेमी! इस प्रकार तुम सरकार की चोरी करते हो।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! यही दुकानदारी का चलन बना हुआ है।' श्री महाराज जी बोले, ''यह कोई चलन नहीं है। अपना जो माल बनाओ उसकी पूरी लिखा-पढ़त करके सरकार को टैक्स अदा करो।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! यदि हमने ऐसा किया तो सारा कारोबार बिगड़ जाएगा और काफ़ी नुकसान होगा।' श्री महाराज जी तुरन्त बोले, ''प्रेमी! यदि ऐसा करने से कारोबार में घाटा हुआ तो उसके यह जिम्मेदार हैं।'' मैंने श्री महाराज जी के सामने वायदा किया कि आगे से ऐसा ही होगा।

इसके पश्चात् श्री महाराज जी की आज्ञानुसार बिना पर्ची के माल बेचना बन्द कर दिया। धीरे-धीरे ग्राहक वापिस जाने शुरू हो गए, क्योंकि पक्की रसीद से कोई माल खरीदने को तैयार नहीं था। एक महीने में तैयार माल से गोदाम भर गया। एक दिन मेरा साथी बोला, 'तुम तो भगत बन गए हो। इस तरह कारोबार करोगे तो दिवाला निकल जाएगा।' उसकी बात मानकर फिर पुराने तरीके से व्यापार शुरू कर दिया। 1953 का पूरा वर्ष इसी प्रकार बीता। 1954 के प्रारम्भ में श्री महाराज जी ने नश्वर शरीर का परित्याग कर

दिया। उसके पश्चात् एक दिन सरकार का आदेश आया कि जिस जिस फर्म ने 1953 में जितना उत्पादन किया है उस फ़र्म को उत्पादन के बराबर सरकारी कोटे से धातु मिलेगा। सरकारी कोटे के धातु से बर्तन बनाने में दुगना लाभ होता था। हमने 1953 में एक महीने तक गुरुदेव की आज्ञानुसार लिखा-पढ़त करके जो माल तैयार किया था उसी के आधार पर हमको सरकारी कोटा मिला। उस समय याद आया कि यदि श्री महाराज जी की आज्ञा के अनुसार 1953 में व्यापार किया होता तो मालामाल हो गए होते। गुरुदेव के सामने जो वायदा किया था उसका पालन न करने के कारण मुझको काफी नुकसान उठाना पड़ा। तभी यह बात समझ में आयी की गुरु आज्ञा पालन करने में ही मनुष्य का कल्याण है ।

6

श्री नथ्था राम, जगाधरी

(1) जब गुरुदेव मिले

सत्गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी से भेंट होने से पहले मैं शंकर भगवान की पूजा करने के लिए नियमित रूप से मंदिर जाया करता था। एक दिन प्रात:काल लगभग चार बजे मैंने बहुत अच्छा स्वप्न देखा। सफेद वस्त्र पहने हुए एक महात्मा जी सत्संग कर रहे थे। काफी जनता सत्संग सुन रही थी। सत्संग समाप्त होने पर सारे लोग चले गए परन्तु मैं बैठा रहा। महात्मा जी ने कहा कि तुम क्यों नहीं जाते। मैंने कहा कि मेरा जाने के लिए मन नहीं कर रहा है। थोड़ी देर बाद मुझसे फिर पूछा, ''तू पूजा करता है?'' मैंने कहा, 'थोड़ी-बहुत पूजा करता हूँ।' फिर पूछा, ''किसकी पूजा करता है?'' मैंने कहा, 'शंकर भगवान की पूजा करता हूँ।' वह बोले, ''जिस मंदिर में तू जाता है, शंकर भगवान उसमें कैद नहीं है। वह सब जगह हैं। यदि तू शंकर भगवान से मिलना चाहता है तो किसी शंकर रूपी फ़कीर की शरण लेनी पड़ेगी।'' इसके पश्चात् मेरी आँख खुल गई। मैं सोचता रहा कि कोई रास्ता मिलने वाला है। मैंने अपना मंदिर जाने का नियम जारी रखा।

एक दिन मैं बाज़ार से गुज़र रहा था। रास्ते में एक फ़ोटो फ्रेम वाले की दुकान पर मेरी नज़र पड़ी। वह दुकानदार एक सफेद वस्त्र वाले महात्मा की फ़ोटो फ्रेम में फिट कर रहा था। उसको देखकर मैं खड़ा हो गया। वह व्यक्ति मुझको जानता था। उसने मुझसे पूछा, 'नथ्था राम, कैसे खड़े हो?' मैंने उससे कहा, 'मुझको ऐसा लग रहा है जैसे मैंने इस महात्मा जी को कहीं देखा है। यह किसकी फ़ोटो है?' उसने कहा, 'यह महात्मा मंगत राम जी की फ़ोटो है। यह बहुत उच्च कोटि के संत हैं। इनका आश्रम जगाधरी में है। साल में एक बार वहाँ विशाल सम्मेलन होता है।'

मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन मेरा एक मित्र बोला कि महात्मा मंगत राम जी आजकल यहाँ आए हुए हैं। इस मित्र से मैं महात्मा जी के बारे में कहता रहता था, क्योंकि 'समता दर्पण' पत्रिका में उनके बारे में मैं पढ़ा करता था। मैंने मित्र से आश्रम का पता पूछा, फिर अकेला ही आश्रम की ओर चल दिया। जब उनकी कुटिया के निकट पहुँचा तो उनको कुटिया में नहीं पाया। फिर रसोई की तरफ़ आते दिखाई पड़े। उनको देखते ही मुझको स्वप्न वाली शक्ल और फ़ोटो याद आ गयी। यह वही सूरत थी, इसलिए मैं तुरन्त ही उनके चरण पकड़कर बैठ गया। श्री महाराज जी ने स्वयं मुझको उठाया और कहा, ''बस प्रेमी!'' फिर मैं उनके साथ ही कुटिया में चला गया। यह बात 1953 की है। मैंने श्री महाराज जी से पूछा, 'इस अनोखी जगह पर मैं कैसे आ गया?' श्री महाराज जी बोले, ''प्रेमी! तू इधर कहाँ आने वाला था, तुमको बुलाया गया है।'' उस दिन के बाद मैं रोज़ सुबह-शाम वहाँ जाने लगा। एक दिन श्री महाराज जी ने अचानक मुझसे पूछा, ''प्रेमी! क्या सिगरेट पीते हो?'' मैंने कहा, 'महाराज जी! डेढ़-दो डिब्बी रोज़ पीता हूँ।' फिर श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! यदि इनकी ज़रूरत हो तो सिगरेट छोड़कर इनके पास आना।'' मैंने श्री महाराज जी से वायदा किया कि सिगरेट पीना छोड़ दूँगा। मैंने वायदा तो कर लिया परन्तु अपने ऊपर विश्वास नहीं था। यह भी विचार आ रहा था कि आज किसी समर्थ पुरुष के आगे प्रण किया है इसलिए उधर से सहायता अवश्य मिलेगी, शायद सफलता मिल जाए। पहले भी कई बार प्रयास किया था परन्तु सफलता नहीं मिली थी।

उस दिन प्रातः करीब 11 बजे घर पहुँचा। दिन भर सिगरेट नहीं पी। सायंकाल के समय मुझसे रहा नहीं गया। मैंने छत पर जाकर सिगरेट पीने की तैयारी कर ली। मैंने जैसे ही पहला दम लगाया तो मेरा स्वांस रुक गया। मुझको बेहोशी सी आ गई। काफी देर बाद मेरी स्वांस की गति ठीक हुई। उसके बाद दूसरा दम नहीं लगाया। अगले दिन श्री महाराज जी के पास गया। माथा टेककर जैसे ही बैठा, तुरन्त श्री महाराज जी बोले, ''बेईमान! शरारत करने से

बाज़ नहीं आया। ज़रा दूसरा घूँट भरकर देखता तब पता चलता।'' मैं सोचने लगा कि यह तो घट-घट की जानने वाले हैं। फिर उनके पास रोज़ाना आना-जाना प्रारम्भ हो गया।

एक दिन श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''प्रेमी! तू इनकी परीक्षा ले ले।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! पीछे जो कुछ भी हुआ है, वह सब परीक्षा ही तो है। पहले स्वप्न में दिखाई दिए, फिर सिगरेट वाली घटना हुई, इसके अलावा क्या परीक्षा लेनी है।' श्री महाराज जी कहने लगे, ''नहीं प्रेमी और परीक्षा ले।'' श्री महाराज जी का हुक्म था इसलिए और परीक्षा लेने की सोचने लगा। अगले दिन जब आश्रम में आया तो गेट से अन्दर आते ही मन में विचार आया कि श्री महाराज जी की कई लोगों से काफी गहरी बातचीत होती है, परन्तु मेरे साथ नहीं होती। आज श्री महाराज जी मुझसे स्वयं मेरा नाम पूछें, वह भी एक बार नहीं दो बार, तब मेरी तसल्ली होगी। मैं जैसे ही अन्य प्रेमियों के पीछे श्री महाराज जी की कुटिया में जाकर बैठा, उनकी निगाह सीधी मेरे ऊपर पड़ी। उन्होंने तुरन्त मुझसे पूछा, ''प्रेमी,तेरा नाम क्या है? मैंने कहा, 'नथ्था राम।' श्री महाराज जी फिर बोले, ''प्रेमी, ज़रा जोर से बताना कि तेरा नाम क्या है?'' मैंने फिर अपना नाम बता दिया। थोड़ी देर में एक प्रेमी बूँदी के लड्डू लेकर आया। श्री महाराज जी ने भगत बनारसी दास जी को लड्डू बाँटने के लिए कहा। जब वह लड्डू बाँटने लगे तो मेरे मन में विचार आया कि मुझको दो मिलने चाहिए। भगत जी जब मेरे पास पहुँचे तो तुरन्त श्री महाराज जी ने कहा, ''बनारसी, इसको दो लड्डू दे दे।'' मुझको दो लड्डू मिल गए। थोड़ी देर में विचार आया कि आज लंगर का प्रसाद भी मिलना चाहिए। उसके बाद श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''प्रेमी! लंगर का प्रसाद लेकर जाना।''

इस घटना के पश्चात् मैंने श्री महाराज जी से प्रार्थना की, 'महाराज जी! सब प्रेमियों पर कृपा हो रही है, मेरे ऊपर भी कृपा कीजिए।' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! अपना ज़मानती तैयार कर ले फिर कृपा की जाएगी।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! मैं पापी और दोषों वाला आदमी हूँ, मेरी ज़मानत

कौन देगा। मेरी ज़मानत तो आप ही देंगे।' इतनी बात सुनने के बाद श्री महाराज जी तुरन्त बोले, ''अच्छा-अच्छा, सवेरे आ जाना।'' अगले दिन प्रात:काल दीक्षा का कार्य सम्पन्न हुआ। दीक्षा के समय श्री महाराज जी ने मुझको बहुत खोलकर समझाया था किस चक्र के जागृत होने पर शरीर में विभिन्न स्थानों पर किस प्रकार का नाद (शब्द) अनुभव होता है। इसके बाद मैं प्रतिदिन दोपहर को श्री महाराज जी के पास अकेला ही बैठा रहता था। उनके सामने बैठकर मुझको ऐसा प्रतीत होता था मानो उनके मस्तक से एक तरंग सी निकलकर मुझको छू रही है।

एक दिन मैंने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! जो ग्राहक दुकान पर आते हैं, किसी से कम पैसा लेता हूँ किसी से ज़्यादा। इस बारे में क्या नीति अपनानी चाहिए?' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! हर ग्राहक को ऐसा समझा कर जैसे मंगत राम तेरे सामने आया है। फिर स्वयं ही बुद्धि ठीक निर्णय लेगी।'' उस दिन के बाद से प्रभु की ऐसी मेहरबानी हुई कि जो भी अपना-पराया दुकान पर आया, सबके लिए समान रेट पर वस्तु दी जाने लगी।

एक दिन प्रेमी श्री महाराज जी के सामने बैठे थे। उनमें से एक की जवानी की अवस्था थी। उसकी आँखों में काजल लगा था और कंघी वगैरह भी ठीक प्रकार की हुई थी। ज़रा सज-संवर कर आए थे। उन्होंने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! ध्यान कहाँ किया करें?' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! जब भजन किया करो तो कंघे-शीशे का ध्यान रखा करो। तुम क्या ध्यान कर पाओगे, जब ऐसा स्वांग बना रखा है।''

एक दिन मैंने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! क्या रामलीला देखनी चाहिए?' श्री महाराज जी ने कहा, ''यदि राम, लक्ष्मण, सीता आने वाले हैं तो मुझको भी ले चलो। मैं भी दर्शन कर आऊँगा।'' फिर बोले, ''इनका चरित्र कुछ और होता है परन्तु रात्रि को राम और लक्ष्मण बन जाते हैं। वहाँ जाकर क्या करेगा।'' मैंने उनके आगे माथा टेककर एक रुपया सामने रखा। उन्होंने तुरन्त कहा, ''प्रेमी! यह रुपया उठा ले। इसको सेवा में लगा। आगे

चलकर तुझसे बहुत सेवा ली जाएगी।''

एक दिन ग्रंथ खोलकर मैंने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! इनमें से कौन सी वाणी मेरे लिए ज़्यादा लाभदायक है?' उन्होंने ग्रंथ लेकर स्वयं पढ़कर सुनाया –

आशा रूपी रोग है, सतगुर खोजो वैद्य।
औषध खाओ सतनाम की, जाए करम की कैद।।

इसके पश्चात् कहा, ''यही तेरी दवाई है।''

साल-डेढ़ साल पहले मुझको स्वप्न में श्री महाराज जी के दर्शन हुए। मुझसे बोले, ''प्रेमी, बोल! तू लखपति बनना चाहता है या करोड़पति?'' मैंने कहा, 'महाराज जी! न मुझे करोड़ की ज़रूरत है न लाख की। मुझे आप केवल अपना प्यार दे दीजिए।' इसके बाद मेरी आँख खुल गई।

जिस दिन मुझको दीक्षा मिली उसी दिन मैं दीक्षा में मिले बीज-मन्त्र को भूल गया। सायंकाल श्री महाराज जी के पास जाकर मैंने कहा, 'महाराज जी! मैं आपके द्वारा दिए गए नाम को भूल गया।' फिर मैं याद करके बताने की कोशिश करने लगा। श्री महाराज जी ने तुरन्त मुझको रोक कर कहा, ''प्रेमी! इसको मुँह सें कभी नहीं बोलना। यह तुमको दोबारा कह रहे हैं, इसको कभी मुँह से नहीं बोलना चाहिए।'' फिर श्री महाराज जी ने बीज-मन्त्र को दोबारा मुझको बताया।

एक दिन की बात है, रात्रि को श्री महाराज जी कुटिया के बाहर बैठे थे। चाँदनी रात थी। प्रेमी लोग श्री महाराज जी के चरण दबाया करते थे। मेरे मन में भी विचार आया कि क्या मेरे भाग्य में चरण दबाना नहीं है। श्री महाराज जी ने तुरन्त पैर सीधे कर दिए और बोले, ''इनको दबा।'' मैं फिर उनके चरणों को दबाकर कृतार्थ हुआ। गुरुदेव की यह सारी लीला देखकर मैंने हृदय में यह पक्का विश्वास हर समय बना रहता है कि वह अन्तर्यामी परमेश्वर ही हैं, जिनका निरंतर मार्गदर्शन हमको मिलता रहता है।

नोट : यह प्रेमी काफी समय तक ग़रीब तथा असहाय रोगियों की समय लगाकर तन, मन, धन से निष्काम सेवा में संलग्न रहे। इस प्रकार गुरुदेव की यह बात सत्य सिद्ध हुई कि तुमसे बहुत सेवा ली जाएगी।

7

श्री संत शरण अग्रवाल, बरेली

(1) गुरु दीक्षा

एक दिन मैं (शिव नाथ अग्रवाल) अपने पिताजी, श्री संत शरण के पास बैठा हुआ था। ईश्वर के बारे में वार्तालाप हो रहा था। सत्गुरुदेव महात्मा मंगत राम जी के प्रति मन में अपार श्रद्धा थी, इसी कारणवश मैंने उनसे पूछा, 'आपको गुरुदेव के बारे में कैसे पता चला? आपकी दीक्षा कैसे हुई? उनके पास बैठकर क्या-क्या देखने और सुनने को मिला, ज़रा सुनाइये।'

उन्होंने कहा, 'मैं तहसील कार्यालय में रेवेन्यू एकाउन्टेंट था। प्रेमी उत्तम चन्द सिक्का मेरे एसिस्टेंट थे। उनका जीवन बड़ा ही सादा था। एक दिन उन्होंने मुझको '**समता विज्ञान योग**' (ग्रन्थ श्री समता प्रकाश का सातवाँ अंग) तथा '**ग्रन्थ श्री समता विलास**' पढ़ने के लिए दिए। उनसे पता लगा कि श्री महाराज जी एक अच्छे महापुरुष हैं। मैंने उनसे प्रार्थना की कि किसी प्रकार उनको बरेली बुलाकर दर्शन करवाओ। उन्होंने गुरुदेव से पत्र व्यवहार किया। गुरुदेव ने कृपा करके दिसम्बर 1951 में बरेली आने की सूचना भेज दी।'

गुरुदेव जब बरेली पहुँचे तब उनके ठहरने की व्यवस्था शहर के बाहर राधेश्याम के बाग़ में की गयी। उसी दिन सायंकाल 5 बजे मैं बाग़ में पहुँचा। गुरुदेव हाल में विराजमान थे, उनको प्रणाम करके बैठ गया। बैठने के बाद मैंने अपने अन्दर एक परिवर्तन महसूस किया। मेरे मन में संकल्प-विकल्प उठना लगभग बंद हो गए थे।

इस भेंट से दो दिन पहले मैंने एक स्वप्न देखा था। जंगल में भजन करते हुए देखा कि अचानक एक रोशनी प्रकट हो गयी। रोशनी पास आने लगी तो देखा कि बैल पर शंकर और पार्वती सवार हैं। उनमें से वह रोशनी निकल रही थी। जब पास आए तो मैंने प्रणाम किया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। सुबह यह स्वप्न पत्नी को सुनाया इसके अगले दिन श्री

महाराज जी के दर्शन करके मन में यह भाव आया कि वही भगवान शंकर मेरे सामने आ गए हैं। इसलिए मेरे मन में उनके महापुरुष होने के बारे में कोई संशय नहीं रहा।

श्री महाराज जी के पास बैठने पर उन्होंने मुझसे कहा, ''प्रेमी! कुछ विचार करो।'' मैंने कहा, 'अध्यात्म के बारे में कोई शंका नहीं है लेकिन गीता के एक श्लोक के बारे में समाधान चाहता हूँ।'

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

(गीता - 8.13)

श्लोक सुनकर श्री महाराज जी ने इसका अर्थ बताने के लिए कहा। मैंने कहा कि किताब में लिखा है - ओ३म् अक्षर-ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ जो देह त्याग करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। मैंने आगे कहा कि ऐसा तो कोई भी कर सकता है। श्री महाराज जी ने कहा है कि इसका अर्थ बहुत गहरा है, फिर समझाया जाएगा।

मैंने श्री महाराज जी से दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की। मेरी प्रार्थना स्वीकार करते हुए उन्होंने मुझसे अगले दिन प्रातः पाँच बजे आने के लिए कहा। प्रातःकाल मैं साइकिल द्वारा रवाना हुआ। रास्ते में रेल फाटक बन्द होने के कारण देर हो गयी। वहाँ पहुँचने पर श्री महाराज जी जा चुके थे। भक्त बनारसी दास ने कहा कि प्रतीक्षा करके गंगा की तरफ़ गए हैं। मैं उसी तरफ़ चल दिया। लगभग एक मील दूर पर श्री महाराज जी को देखा तथा प्रणाम किया। श्री महाराज जी ने कहा कि तुम समय से नहीं आए। समय की पाबंदी लाज़मी है। अब कल आना।

अगले दिन दफ़्तर से सीधा ही वहाँ चला गया। घर से एक पाव लौकी ली लौकी तथा 5 रुपये गुरुदेव के वास्ते साथ ले गया था। रात्रि को वहीं विश्राम किया। प्रातःकाल पाँच बजे बनारसी दास जी ने आवाज़ दी। मैं तैयार ही था। प्रसाद लेकर गुरुदेव के पास पहुँचा। प्रणाम करके रुपये तथा प्रसाद पास रख

लिए। भगत जी जल का लोटा रख कर चले गए। गुरुदेव ने शरीर तथा संसार की असारता पर और आत्मा की अमरता पर संक्षेप में विचार किए। उसके बाद बीज मन्त्र युक्ति सहित समझाया। लोटे से पानी का छींटा दिया। साथ ही यह भी कहा कि यह सर्व सिद्धि दातार है। मैंने कहा, 'क्या और कुछ करने की ज़रूरत है।?' गुरुदेव ने कहा कि सब कुछ यही कर देता है। तुम्हें केवल अपने ध्यान को इसमें लगाना है। उसके बाद गीता के श्लोक के बारे में किए गए प्रश्न का समाधान किया। उन्होंने कहा कि जो अर्थ लिखा गया है, लिखने वाला उसके सही अर्थ को समझता नहीं है। इसका भाव यह है कि जो साधना इस समय बतायी गयी है, यह पक्की होकर फलित होती है तो ब्रह्म शब्द, जिसको आत्मा की आवाज़ कहते हैं और वेद में ओ३म् नाम से कहा गया है, प्रगट हो जाता है। उस अवस्था में प्राण त्याग करने पर परम गति प्राप्त होती है।

गुरुदेव ने कहा कि सुबह तथा सायंकाल जाप अवश्य करना और हर समय सुरति इसमें लगाए रखना। आगे यह सारा काम स्वयं कर देगा। **फिर ज़ोर देकर यह भी कहा कि चाहे शरीर की नस-नस कट जाए फिर भी यह बीज मन्त्र किसी को बताना नहीं।**[1] इसके पश्चात् उन्होंने बनारसी दास जी को आवाज़ देकर कहा कि रुपये वापस कर दो तथा प्रसाद बाँट दो। उसके बाद श्री महाराज जी सैर को चले गए और मैं घर वापस आ गया।

उपरोक्त वृतान्त सुनाने के पश्चात् पिताजी ने कुछ संस्मरण भी मुझको सुनाए जिनको यहाँ लिखा जा रहा है।

श्री महाराज जी 1 फरवरी 1953 को पुनः बरेली आए थे तथा सिटी इम्प्रूवमेंट पार्क में एक माह तक ठहरे थे। एक दिन की बात है - रात्रि लगभग 8 बजे 20-25 व्यक्ति श्री महाराज जी के सामने बैठे हुए थे। एक प्रेमी लोटे में दूध लाया। एक अन्य प्रेमी थैली में पेड़ा लाया। 9 बजे भगत जी को उसे बाँटने के लिए कहा गया। आज्ञा पाकर भगत जी ने पहले एक-एक मुट्ठी की प्याली (कुल्लड़) सबको दी। फिर वह आधा किलो दूध सबको बाँटा गया तथा पेड़ा भी। मुझसे प्रेमी मधुसूदन दयाल ने कहा, 'क्या तुमने एक बात नोट की? थोड़े से

दूध में से सबको दूध बाँट दिया गया। यह करिश्मा फ़कीर का ही था।[2]''

इस संस्मरण के बाद उन्होंने एक अन्य घटना भी सुनाई जो कि उन्होंने भैरों नाथ के मंदिर में देखी थी। यह मंदिर घर से लगभग 200 मीटर की दूरी पर स्थित है।

साधु सीता नाथ भैरों नाथ के मंदिर में रहते थे। वे नाथ सम्प्रदाय के कनफटे साधु थे तथा ऋद्धि-सिद्धि के मालिक थे। पड़ोस के रम्मू लाला का दूध वहाँ जाता था। न पैसे का हिसाब था न दूध का। एक दिन साधुओं की टोली वहाँ आ गयी जिसकी मुखिया एक स्त्री थी। लाला के यहाँ से 20 किलो दूध मँगवाया गया। वह योगिनी 16-17 किलो दूध अकेले पी गई। जब सीता नाथ जी को बताया गया तो उन्होंने स्वयं उस स्त्री को दूध पिलाया। जब बर्तन से दूध समाप्त नहीं हुआ तो योगिनी ने कहा कि यही देखने तो हम यहाँ आए थे।

सन् 1953 में जगाधरी आश्रम में वार्षिक सम्मेलन का समय था। आठ दिन पहले ही प्रेमी भीमसेन तथा मैं जगाधरी पहुँच गए। प्रातः काल लगभग 8 बजे जब मैं श्री महाराज जी के पास कुटिया में पहुँचा तो दूर से ही देखकर कहा, ''अरे प्रेमी! तुम आ गए।'' उनके भाव से ऐसा लगा मानो पहले से प्रतीक्षा कर रहे हों। फिर वह समाधि में चले गए। लगभग 10 मिनट बाद जब नेत्र खोले तो कहा, ''लाल जी! यह तुमको एक बात कहते हैं, दिल में जगह देना। यह शरीर देखने में तो सुन्दर प्रतीत होता है क्योंकि इसके अन्दर आत्मा प्रकाश कर रही है, परन्तु वास्तव में यह है गंदगी का थैला ही। इसकी प्रत्येक इन्द्री और रोम-रोम से गंदगी झड़ रही है। इसमें से सिवाय गंदगी के और निकलना कुछ नहीं है। इसलिए अक्लमंदी यही है कि जीते जी इससे कीमिया बना ली जाए।'' मैंने कहा, 'श्री महाराज जी! जहाँ तक मुझे पता है ताँबे से सोना बनाने की कला को कीमिया बनाना कहते हैं।' तब श्री महाराज जी ने कहा, ''लाल जी! वह तो केवल एक धातु का दूसरी धातु में परिवर्तिन करना है, यह तो (शरीर की ओर इशारा करते हुए) इस मिट्टी से सोना बनाने

की बात तुम्हें बता रहे हैं।'' तब मैंने पूछा, 'महाराज जी! इसके लिए मुझको क्या उपाय करना होगा?'' उन्होंने फ़रमाया, ''सिमरन की जो युक्ति तुमको समझायी गई है, उसमें अपने को मिटा देना ही कीमिया बनाना है।''

एक दिन प्रेमी ओम कपूर ने पूछा, 'महाराज जी! आप जिस चीज़ की इतनी महिमा बयान करते हैं कि वह अत्यधिक आनन्द देने वाली है इत्यादि, यदि एक बार उसका स्वाद चखा दें तो आगे मन स्वयं ही कोशिश करने लगेगा।' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! पहले उसका स्वाद लेने लायक अपना मुँह तो बना।''

एक दिन सायंकाल प्रेमी भीमसेन जी ने श्री महाराज जी से पूछा कि आज दीपावली है, आश्रम में दीपक जला दें। गुरुदेव ने कहा, ''प्रेमी! अन्दर तो तेरे अन्धेरा पड़ा है, वहाँ उजाला कर। बाहर उजाला करने से क्या लाभ है?''

सायंकाल पाँच बजे एक पत्रकार श्री महाराज जी के पास आया। उस समय श्री महाराज जी कुटिया के बाहर दरी पर बैठे थे। 10-12 प्रेमी और भी वहाँ उपस्थित थे। पत्रकार ने कई प्रश्न पूछे। वह श्रद्धालु प्रतीत नहीं होता था, बल्कि श्री महाराज जी को अपनी चतुराई से नीचा दिखाना चाहता था। अपने प्रश्नों का उचित उत्तर सुनकर अंत में उसने पूछा, 'हम कैसे जानें कि आप महापुरुष हैं?'

श्री महाराज जी ने कहा, ''परीक्षा कर लो।''

उसने पूछा, 'कैसे?'

श्री महाराज जी ने कहा, ''एक आरी ले आओ और इनकी गर्दन पर धीरे-धीरे चलाओ। तुमको आप ही पता चल जाएगा।'' कुछ देर चुप बैठकर नमस्कार करके चला गया।

एक दिन गुरुदेव से मैंने पूछा - 'महाराज जी! आज तक जितनी भी मैंने भगवान शंकर वग़ैरा की उपासना की है उसका क्या फल प्राप्त होगा?'

श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! वह सब समाप्त हो गयी, अब जो बताया गया है उसके अनुसार साधना प्रारम्भ करनी होगी।'' गुरुदेव का उत्तर

सुनकर मेरे मन में निराशा छा गयी। मुझको ऐसा लगा जैसे अब तक की साधना निरर्थक चली गई। शीघ्र ही उन्होंने मुझको यह अहसास करा दिया कि पूर्व साधना व्यर्थ नहीं गई बल्कि उसी के फलस्वरूप पूर्ण सत्गुरु की प्राप्ति हुई है।

1. इसका कारण जानने के लिए **ग्रन्थ श्री समता विलास - परिशिष्ट खण्ड** के अध्याय **समता ज्ञान मार्ग** में **योग मार्ग बोध** के **भाग (घ) शुद्ध निदिध्यास** में निम्नलिखित **वचनों** पर विचार करें -

वचन - 94. नाम का असली निर्णय यह है कि जो खास बीज मन्त्र किसी सिद्ध पुरुष से प्राप्त हुआ होवे और अन्तर्गति व बाहिर्गति में पूर्ण रूप से चिन्तन किया जा सके और पल-पल विखे सत्गुरु शरणागत धारण करके एक नाम से आधार पर ही अपनी तमाम की तमाम मनोवृत्तियों को निहचल करके बुद्धि को एकाग्र किया जावे। ऐसे साधन को ही नाम चिंतन और योग कहा गया है।

वचन - 95. जो नामुकम्मिल साधु के उपदेश को धारण किया होवे, जिसने खुद अपने अन्धकार को दूर नहीं किया हो, तो उस उपदेश (नाम) में सफलता होनी कठिन है। क्योंकि इस योग मार्ग में गुरु करनी वाले के बगैर सत् पद की प्राप्ति होनी अति कठिन है। जैसा कि आम बनावटी गुरु घर-घर उपदेश देते फिरते हैं, उसका नतीजा महज़ (केवल) एक व्योहार है, न कि कल्याण है। नामुकम्मिल (अपूर्ण) साधु का उपदेश न यथार्थ कल्याण दे सकता है और न ही बुद्धि उस पर पूर्ण निश्चयगत हो सकती है। ऐसा अच्छी तरह से समझना चाहिए।

2. लेखक ने इस घटना स्थल पर ही सन् 1953 में श्री महाराज जी के दर्शन किए थे। उस समय आयु 6 वर्ष की थी। वहीं गुरुदेव के चरण स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

8

श्री मदन लाल कोहली, आगरा

(1) नियम का पालन

आगरा में एक बार श्री महाराज जी माल रोड पर मदन लाल जी के साथ पैदल जा रहे थे। बरसात का मौसम था। प्रेमी छाता लिए हुए साथ चल रहे थे। एक कार पास से गुज़री जिसके कारण श्री महाराज जी के कपड़ों पर गन्दगी के छींटे पड़ गए। जब वे अपने ठहरने के स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने कपड़े उतारकर टाँग दिए। भगत बनारसी दास जी ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि कृपया दूसरे कपड़े पहन लीजिए। गुरुदेव ने कहा, ''यह अपना असूल (नियम) नहीं तोड़ेंगे।'' बाद में झाड़कर पुनः पहन लिए। गुरुदेव 21 दिन बाद कपड़े बदला करते थे।

इसी प्रकार एक बार जब जम्मू में श्री महाराजा हरिसिंह के राजमहल में जाने वाले थे तो भगत जी ने धुला हुआ कपड़ों का जोड़ा लाकर गुरुदेव से वस्त्र बदलने की प्रार्थना की थी। 21 दिन की अवधि पूरी होने में अभी एक-दो दिन बाकी थे। गुरुदेव ने उस दिन भी वस्त्र बदलने से मना कर दिया था।

(2) अन्त समय गुरु दर्शन

प्रेमी मदन लाल कोहली अन्तिम समय आगरा के एक अस्पताल में भर्ती थे। उनकी पुत्रवधू ने उनका अन्त समय निकट जानकर उसने निवेदन किया, 'पिता जी! आप कृपया महामन्त्र का जाप कीजिए।' यह सुनकर उन्होंने तुरन्त कहा, 'महाराज जी स्वयं मेरे पास खड़े हैं - मैं महामन्त्र का क्या जाप करूँ!'

इतना कहकर वह शाँत हो गए। कुछ मिनट बाद वह परलोक सिधार गए।

(3) मन की बात जान लेना

आगरा में सायंकाल के सत्संग में एक दिन दो व्यक्ति साथ आए। उनमें से एक वकील था तथा दूसरा जैन मत को मानने वाला था। सत्संग की समाप्ति पर श्री महाराज जी उठकर कमरे में चले गए। प्रसाद बाँटा गया। जैनी ने प्रसाद ले तो लिया परन्तु स्वयं न खाकर दूसरे व्यक्ति को दे दिया। गुरुदेव तो अन्तर्यामी थे, उन्होंने दोनों को अन्दर बुलवाकर जैनी से कहा, ''मन में कोई शंका हो तो उसका समाधान कर लो।''

वकील ने तुरन्त कहा, 'इनका मौन व्रत है।'

गुरुदेव ने कहा, ''जब सत्विचार का समय आया है तो मौन व्रत धारण कर लिया है। मन का यह हाल है कि प्रसाद तक खाने से परहेज़ है। इस कपट से क्या कल्याण होगा।''

(4) आज्ञा उल्लंघन की मनाही

आगरा प्रवास के दौरान गुरुदेव ने प्रेमी मदन लाल कोहली को दूध लाने की सेवा सौंपी थी। एक दिन एक अन्य प्रेमी भगत जी से कहकर दूध ले आए। श्री महाराज जी ने जब दूध पिया तो उनके शरीर में कुछ विकार हो गया। उन्होंने भगत जी से पूछा, ''प्रेमी! आज दूध कौन लाया था?'' भगत जी ने दूसरे प्रेमी का नाम बता दिया। इस पर गुरुदेव ने उनको चेतावनी दी कि भविष्य में इनकी आज्ञा के बिना किसी को सेवा देने की गलती मत करना।

9

श्री सुन्दर दास, आगरा

(1) संत अंतर्यामी होते हैं

श्री महाराज जी आगरा में ठहरे हुए थे। एक प्रेमी उनके पास आए और कहने लगे, 'महाराज जी! संत तो अन्तर्यामी होते हैं, दूसरों के मन की बात जान लेते हैं।' श्री महाराज जी ने तुरन्त ही कहा, ''प्रेमी! यह तो बहुत छोटी सी बात है। इस बारे में तुम्हें एक घटना सुनाते हैं। जगाधरी की बात है, एक बार दो प्रेमी आश्रम में आ गए। आपस में उनकी बातचीत हो रही थी। यह उस समय आश्रम के बाहर गए हुए थे। उनमें से एक प्रेमी कहने लगा कि यह सच्चे संत हैं। इस पर दूसरा बोला कि यदि संत जी वापस आने पर मेरा नाम स्वयं बताएं और नाम लेने को भी कहें तब मैं मानूँगा कि वह पूर्ण संत हैं। आश्रम में वापस लौटने पर उन प्रेमियों से बातचीत के दौरान उस प्रेमी का नाम लेकर 2 बजे नाम (दीक्षा) के वास्ते आने के लिए कहा था।''

एक दिन श्री महाराज जी के पास दयाल बाग़ से एक डॉक्टर आया और बोला, 'महाराज जी! पता लगा है कि आप पानी नहीं पीते।'

श्री महाराज जी – हाँ प्रेमी, यह बात ठीक है।

डॉक्टर – परन्तु बिना पानी के तो आदमी जीवित नहीं रह सकता।

श्री महाराज जी – यह जीवित भी हैं। प्रेमी! एक बात और बताएं, यह खाना भी नहीं खाते।

डॉक्टर – यह तो बड़े अचम्भे की बात है।

श्री महाराज जी – प्रेमी! तू परीक्षा लेने आया था न। तो तू 8 दिन यहाँ रहकर देख ले।

डॉक्टर – श्री महाराज जी! आठ दिन का समय मेरे पास कहाँ है।

जब डॉक्टर ने महसूस किया कि श्री महाराज जी उसके दिल की बात जान गए तो वह परीक्षा लेने का विचार त्यागकर चला गया।

(2) गुरु कृपा

गुरुदेव के शिष्यों में एक चानन शाह हुए हैं। वह शराब पीने के काफी शौकीन थे। एक दिन श्री महाराज जी ने उनसे पूछा, ''प्रेमी! तू क्यों पीता है?'' प्रेमी जी ने उत्तर दिया, 'महाराज जी! दर्द दूर करने के लिए पीता हूँ।' श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी! आगे से दर्द नहीं होगा।'' उस दिन के पश्चात् न उनको दर्द महसूस हुआ और न ही उन्होंने पी।

10

श्री हरिकृष्ण कपूर, देहरादून

(1) गुरु मिलन

श्री महाराज जी से मेरा पहला मिलाप केलाघाट, देहरादून में हुआ। यह बात सितम्बर, 1953 की है। मुझे मिलवाने वाले श्री नरसिंह दास लौ थे। वे उन दिनों दफ़्तर में मेरे सुपरिनटेण्डेण्ट थे और मुझसे बहुत स्नेह रखते थे। मुझे उनका सादा और सात्विक जीवन बहुत पसन्द था। एक दिन दफ़्तर से छुट्टी के समय वे बोले, 'कपूर! आओ आज तुम्हें एक ऐसे संत के दर्शन कराएं जो न कुछ खाते हैं और न सोते हैं।' बड़ी उत्सुकता से मैं उनके साथ हो लिया और हम केलाघाट पहुँचे।

केलाघाट देहरादून शहर से सात मील दूर राजपुर से नीचे बहती नदी के तट पर बना हुआ है। वहाँ एक टैन्ट में कुछ लोग हमारी तरह शहर से श्री महाराज जी के दर्शनों के लिए आए हुए थे। हमने भी श्री महाराज जी को प्रणाम किया और एक तरफ़ होकर बैठ गए। श्री महाराज जी बहुत दुबले-पतले पुरुष थे। सफेद कपड़े पहने हुए थे। शरीर दुर्बल और मुख पीला था। सन्यासियों की तरह कोई गेरूआ वस्त्र नहीं था। आध्यात्मिक विचार-विमर्श हो रहा था। तरह-तरह के प्रश्न किये जा रहे थे और श्री महाराज जी उनके प्रभावात्मक उत्तर दे रहे थे। मुझे भी जोश आ गया और मैं भी सवाल कर बैठा, 'महाराज जी! सुना है आपको भूख नहीं लगती?' उत्तर मिला, ''कौन कहता है इन्हें भूख नहीं लगती? हाँ, फर्क इतना है कि तुम्हें रोटी खाने की भूख लगती है और इन्हें नाम सिमरन की भूख लगती है। यह तो शरीर है - इसे जैसा ढालो, ढल जाता है।''

फिर श्री महाराज जी ने पूछा, ''माँस खाते हो?''

उत्तर दिया, 'नहीं।'

''शराब पीते हो?''

'जी नहीं।'

''सिगरेट पीते हो?''

'जी नहीं।'

''सिनेमा देखते हो?''

'जी हाँ।'

''तो तुम्हें सिनेमा छोड़ देना चाहिए।''

यह उन दिनों की बात है जब श्री महाराज जी शहर की तरफ़ विराजमान थे और शहर से बाहर ऋषिपर्णा नदी के किनारे एक कोठी में ठहरे हुए थे। यह जगह भी घर से 4-5 मील दूर थी। रोज दर्शनों के लिए जाने लगा। काफी भीड़ रहती थी। श्री महाराज जी बड़े सुन्दर विचार सामने रखते थे। दुबले-पतले शरीर की आवाज़ में बहुत जोर था। बिना लाउडस्पीकर के बोलते थे। सुबह छ: बजे से रात 10 बजे तक आसन पर बैठे रहते थे और संगत के प्रश्नों का उत्तर देते रहते थे। मैं रोज सोचकर जाता था कि नाम के लिए प्रार्थना करूँगा, परन्तु प्रतिदिन खाली लौट आता था। नाम लेने के इच्छुकों में स्वर्गीय कुन्दनलाल जी वर्मा भी थे।

मैंने उनसे पूछा, 'आप तो नाम लिये हुये हैं, दोबारा क्यों लेना चाहते हैं?'

उत्तर मिला, 'मेरे गुरु आडम्बरी हैं।'

मैंने फिर सवाल किया, 'हो सकता है यह गुरु भी आडम्बरी ही हों - कौन जानता है?'

दस बजे श्री महाराज जी सबसे हाथ जोड़कर कह दिया करते थे, ''प्रेमी जी, अब जाइए। देर हो चुकी है। कल फिर दर्शन होंगे।''

उसी दिन रात दस बजे तक मैं और पूज्य वर्मा साहिब भी बैठे रहे। हम दोनों ने गुरुदीक्षा के लिए विनती करनी थी। संगत हिलने का नाम नहीं ले रही थी। श्री महाराज जी के बारे में बार-बार कहने पर भी लोग बैठे हुए थे। उस दिन पता चला कि श्री महाराज जी अगले दिन देहरादून से जा रहे हैं।

आखिर वर्मा जी ने कह ही दिया, 'मुझ पर भी कृपा कीजिये।'

श्री महाराज जी मुस्कराये और बोले, ''अच्छा, कल सुबह छः बजे आ जाना।''

वर्मा जी प्रसन्न होकर प्रणाम करके चलते बने। केवल मैं ही रह गया।

मैंने भी हाथ जोड़कर विनती की, 'महाराज जी! मुझ दास पर भी कृपा कीजिए।'

श्री महाराज जी ध्यान से मेरी ओर देखते रहे और बोले, ''इतने दिन से क्यों नहीं कहा? कल जबकि हम जाने वाले हैं तो तुम कह रहे हो। वह भी रात के दस बजे। दीक्षा कोई ऐसी वस्तु नहीं जो हर एक को माँगने पर दे दी जाये। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध जन्म-जन्म का होता है। क्या मालूम हम आडम्बरी हों।''

मेरे ऊपर एक बिजली सी गिरी। मैं पसीना-पसीना हो गया और कुछ न कह सका। इतना ही कह सका, 'महाराज जी! मैं नादान बालक हूँ, नासमझ हूँ, मैं इस योग्य नहीं कि आपकी कसौटी पर ठीक उतर सकूँ और न मुझमें इतनी बुद्धि है कि आप जैसे महापुरुष को परख सकूँ। मुझे तो एक अनजान बालक समझ कर अपनी शरण में ले लीजिए।'

श्री महाराज जी ने कहा, ''अभी जल्दी ही क्या है। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? फिर किसी और समय पर विचार करेंगे।''

दिल में घनी उदासी लेकर घर की ओर चल पड़ा। मन में बहुत दुःख था, साथ में क्रोध भी। सोचने लगा कि वर्मा जी को तो झट से आने के लिए कह दिया। ऐसी ठेस पहुँचाने वाला संत पूरा संत नहीं हो सकता। इन विचारों में उलझा हुआ मैं कोई 12 बजे घर पहुँचा।

पत्नी पूछने लगी, 'आप उदास क्यों हैं? क्या श्री महाराज जी ने दीक्षा नहीं दी?'

मैंने उत्तर दिया, 'नहीं! और न ही देंगे। वे हमें परखना चाहते हैं।

किसी और को तो परखते नहीं, हम ही रह गये हैं परखने के लिए।'

पत्नी ने कहा, 'उन्होंने दीक्षा देना स्थगित ही तो किया है, इन्कार थोड़े ही किया है। इसमें भी अवश्य कोई भला होगा।'

रात का एक बज चुका था, परन्तु नींद नहीं आ रही थी। बाहर बारिश होने को थी। थोड़ी देर के बाद आँख लग गई। कोई तीन बजे बादलों की गड़गड़ाहट से नींद खुल गई। बारिश जोर पकड़ रही थी। लगता था जैसे बहुत बड़ी बाढ़ आ जायेगी। मन में गुदगुदी हुई। धर्मपत्नी को जगाकर कहा, 'छः बजे दीक्षा का समय है, मैं भी चलता हूँ। शायद श्री महाराज जी कृपा कर दें।' कुर्ता पाजामा पहनकर और बाटा के स्लीपर बगल में दबाकर मैंने दौड़ना शुरू कर दिया। जवानी के दिन थे। चार-पाँच मील दौड़ना कोई बड़ी बात न थी। एक कार का हार्न सुनाई दिया। कार मेरे बिल्कुल पास आकर रुक गई। अन्दर पूज्य वर्मा जी बैठे थे। उनके साथ देहरादून के प्रसिद्ध डॉक्टर थे। वर्मा जी बोले, 'कपूर साहिब, कार में आ जाइये।' मुझे ऐसा लग रहा था कि यह वर्मा जी नहीं बल्कि श्री महाराज जी हैं जो कह रहे हैं कि तुम्हारी परीक्षा पूरी हो गई। उत्तर दिया, 'शुक्रिया वर्मा जी। आप चलिए, मैं बिल्कुल भीगा हुआ हूँ। कार खराब हो जायेगी और फिर अब तो फासला भी कम रह गया है।'

मैंने फिर दौड़ लगानी शुरू कर दी। पहले निराशा की दौड़ थी, अब मन दौड़ते हुए उछल रहा था, जैसे कोई मुहिम फतह कर ली हो। गुरु स्थान पर पहुँचने में पाँच बज गये। भगत बनारसी दास जी बाहर बरामदे में खड़े थे। देखते ही चौंके और बोले, 'बिल्कुल भीग गये हैं। इतनी जल्दी भी क्या थी? बारिश थम जाने पर घर से चले होते। आइये, अन्दर आ जाइये। कपड़े उतार कर जरा आग ताप लीजिये।'

बारिश बन्द हो चुकी थी, जैसे वह मुझे ही भिगोने के लिए आई हो। भगत जी ने एक धोती पहनने को दी। मैं अपने कपड़े सुखाने लग गया।

भगत जी ने पूछा, 'कल रात श्री महाराज जी से पूछ तो लिया होगा दीक्षा के लिये।'

उत्तर दिया, 'जी हाँ! लेकिन उन्होंने इजाज़त नहीं दी थी।'

भगत जी ने पूछा, 'क्यों? वे तो किसी को मना नहीं करते।'

कहा, 'उन्होंने कहा था कि तुम्हें अभी इन्होंने परखा नहीं है।'

भगत जी मुस्कराये और बोले, 'चलो अब तो परख लिया न। चिन्ता न कीजिये। आज दीक्षा सबसे पहले आपको मिलेगी।'

ठीक छः बजे श्री महाराज जी बाहर से पधारे। सब प्रेमियों ने आगे बढ़ कर प्रणाम किया। श्री महाराज जी मेरी ओर देखकर मुस्कराये। श्री महाराज जी ने स्नान किया और कमरे में आसन पर विराजमान हो गये। भगत जी ने दीक्षा लेने वाले प्रेमियों में सबसे आगे मुझे बिठाया।

दीक्षा लेने के बाद मैंने देखा कि वर्मा जी गुरुदेव को अर्पित करने के लिए भेंट भी लाये हैं। देखकर मैं बहुत लज्जित हुआ।

आँखें भर आईं। कहने लगा, 'श्री महाराज जी!.....' लेकिन श्री महाराज जी ने बीच में टोककर कहा, ''तुमने इनको वह दिया है जो इनमें से किसी ने भी नहीं दिया है।''

11

श्री नरसिंह दास लौ, देहरादून

(1) सत्पुरुष से मिलाप

सावन के दिन थे, हमने सुना कि महात्मा मंगतराम जी देहरादून में विराजमान हैं और उनका टैन्ट राजपुर, ऋषिपर्णा नदी के किनारे केलाघाट पर लगाया गया है। नाम तो सुना था परन्तु दर्शन नहीं हुए थे। प्रबल इच्छा हुई कि श्री महाराज जी के दर्शन करें। पूछते-पूछते केलाघाट जा पहुँचे। श्री महाराज जी के चरणों में शीश निवाकर टैन्ट में बैठ गए।

उस दिन व्यास पूजा थी। हमारा विचार था कि श्री महाराज जी के शिष्य आपकी पूजा आदि करेंगे और कोई विशेष प्रवचन होंगे। परन्तु वहाँ क्या देखा कि थोड़े से मनुष्यों के सिवा कोई रौनक नहीं थी। पूजा का कोई स्थान नहीं था। पृथ्वी पर बैठे हुए श्री महाराज जी के दर्शन जी भर कर किये। देखने में एक दुबला-पतला शरीर जिसमें खून का रंग भी पीला प्रतीत होता था, परन्तु चेहरे पर प्रकाश और आँखों का तेज़ उनके तपस्वी जीवन का पता दे रहे थे। तपस्वी पुरुष कभी-कभी मुस्करा देते थे। प्रायः उनके मुख पर उदासी, उपरामता, चिन्तन और विचार का चक्कर चलता रहता था। आने वालों को बड़े प्यार से विचार करने को कहते थे और हर प्रश्नकर्ता को पूर्ण उत्तर मिलता था। आपके हर शब्द में प्यार, उच्च विचार, सृष्टि के साथ एकरूपता, सम-दृष्टि की झलक मिलती थी। आपके चरणों में आनन्द और शान्ति का राज्य था। भोली-भाली सूरत, सीधी-सादी बातें, सादा लिबास, निर्मलता, निश्चलता व सन्तोषी जीवन आदि देखकर प्रथम दर्शन में ही मन उनके चरणों में अर्पित हो गया। अब यही प्रतीक्षा रहने लगी कि कब शनिवार और रविवार आयेगा और हम अपने प्रियतम के पास जायेंगे। पाँच दिन इस मीठी याद में कटते और दो दिन अपने साथ प्यारेमल शर्मा जी और योगेश्वर पंडित जी को लेकर हज़ूर

के दरबार में उपस्थित हो जाते। इसी प्रकार मेल-मिलाप होते रहे।

सावन समाप्त हो गया। 15 अगस्त 1953 को स्वतंत्रता दिवस की छुट्टी थी। शहर में चहल-पहल व परेड वग़ैरा थी, परन्तु यह पतंगे अपने दीपक पर जलने को उपस्थित हो गये।

श्री महाराज जी ने बड़े प्यार से फ़रमाया, ''आज सब लोग शहर की ओर जा रहे हैं, वहाँ चहल-पहल और रंगारंग के तमाशे हैं। आपको कौन सी वस्तु इस तरफ़ यहाँ खींच कर लाई है।''

दास ने हाथ जोड़कर कहा, 'हज़ूर आपकी और ईश्वर की कृपा दृष्टि का ही यह फल है कि आपके इस दास को संसारी तमाशों में कोई रूचि नहीं है, परन्तु आप जैसे महापुरुषों के चरणों में आनन्द लेने का स्वभाव सा पड़ गया है।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''बड़े भाग हैं, पूर्व जन्म के अच्छे कर्म हैं जिनके फलस्वरूप ऐसी संगत प्राप्त हुई है। इससे सत्संग का अवसर मिलता है और जीवन सुफल हो जाता है।''

दास ने हाथ जोड़कर श्री महाराज जी से प्रार्थना की कि इस अधम जीव को अपने चरण-शरण का अवसर प्रदान करें। थोड़ा विचार के पश्चात् एक हफ़्ते के बाद उत्तर देने को कहा। ज्यों-त्यों हफ़्ता गुज़र गया। दास दरबार में उपस्थित हुआ था तो यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि प्रार्थना स्वीकार हो गई है।

आदेश मिला कि 24 अगस्त को प्रात: 7 बजे उपस्थित हो जाओ। 23 अगस्त की रात को हम आपके टैन्ट में ही रहे। प्रात: काल स्नान करके समय की प्रतीक्षा करने लगे। जब श्री महाराज जी आसन पर विराजमान हुए तब दास को बुलाया। टैन्ट के अन्दर आपने अपना विशेष उपदेश बहुत खोल कर समझाया। आप 31 अगस्त तक केलाघाट, राजपुर में रहे और एक सितम्बर से 15 सितम्बर तक मोहनी रोड, देहरादून ठहरे। प्रतिदिन हम सत्संग का पूर्ण लाभ उठाते रहे। इन पन्द्रह दिनों में श्री महाराज जी के उपदेशों व वचनों से जो

नोट लिए गए थे उनका थोड़ा सा वर्णन किया जाता है, जो कि निम्न हैं :-

शिक्षा नं. 1: एक दिन सायंकाल सात बजे बहुत से प्रेमी घरों को चले गये थे। श्री महाराज जी ने आसन बदला और टाँगें लम्बी कर दीं। एक प्रेमी झट से उठकर टाँगों को दबाने लगा। श्री महाराज जी फ़रमाया, ''प्रेमी! इन लकड़ियों को दबाने से कोई लाभ नहीं है। यह कोई सेवा नहीं है। जो उपदेश आपको इन्होंने दिया है उसकी सच्चे दिल से कमाई करना, यही इनकी सच्ची सेवा है।'' यह सुनकर दूसरे प्रेमी ने कहा, 'महाराज जी! शरीर की सेवा भी सन्तों की सेवा होती है, जिससे प्रसन्न होकर सत्पुरुष आशीर्वाद देते हैं।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! ज़रा ध्यान से सुनो। गुरु या सत्पुरुष शरीर नहीं है। शरीर से न्यारा साक्षी, दृष्टा आत्म तत्त्व है और तुम्हारे सब शरीरों के अन्दर व्याप्त है, तुम्हारे अंग-संग है। तुम्हारे और गुरु के बीच एक इंच की भी दूरी नहीं है। एक शरीर की दूसरे शरीर से दूरी है, आत्माएं न दूर हैं और न नज़दीक हैं, न एक है न दो हैं।''

शिक्षा नं. 2: एक दिन आपने प्रवचन में कहा, ''सत्पुरुषों की मनोदशा को समझो। जो कानून और नियम अपने ऊपर लागू नहीं करते वह दूसरों पर भी लागू नहीं करते। जिस नियम को अपने जीवन, व्यवहार में नहीं लाते, उसका उपदेश जबान से नहीं करते। जब आप पाप कर्म से ऊपर उठ जाते हैं तब दूसरों को भी इनसे बचने के लिए कहते हैं। सन्त जन क्यों पूजे गये? इनकी समाधि और कब्रों की पूजा क्यों की जाती है? इसलिए कि सत् नियमों को अपने जीवन में घटाया। राजा हरिश्चन्द्र व राजा रामचन्द्र की मिसालें लो। सत् और मर्यादा को इन्होंने अपने जीवन में उतारा और दूसरों के सामने अपनाकर क्रियात्मक जीवन पेश किया। ऐसे महापुरुषों के जीवन आज तक हमारी हिन्दू जाति का आदर्श हैं।''

शिक्षा नं. 3: श्री महाराज जी ने एक दिन फ़रमाया कि आज संसार की दशा बहुत बिगड़ी हुई है। बहुत संख्या में ऐसे लोग हैं जो रूहानी जीवन से

इन्कारी हैं और आध्यात्मिक जीवन को निकम्मापन बतलाते हैं। मायावाद या भौतिकवाद को श्रेष्ठ मानते हैं। देश और समाज की उन्नति भी भौतिकवादी तरीकों से करना चाहते हैं। परन्तु अपने निज स्वार्थ का त्याग नहीं करते। आज का प्राणी बहुत ही स्वार्थी हो गया है, इसलिए समाज और देश की उन्नति होने के बजाए गिरावट के गड्ढे में गिर रहे हैं। कहीं भी सुख-शान्ति दिखाई नहीं देती। यदि आज जीवन में सुख शान्ति चाहते हो तो स्वार्थ का त्याग करो। अध्यात्मवाद को अपनाओ। अपने सत्स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। सब जीवों में प्रभु दीनदयाल के दर्शन करके सबसे प्रेम करो और सबकी निष्काम सेवा करो।

गीता में ग़र्ज़ (स्वार्थ) और फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) की शिक्षा दी गई है। श्री कृष्ण का अर्जुन को यही उपदेश है कि ग़र्ज़ (स्वार्थ) को छोड़ और फ़र्ज़ (कर्त्तव्य) को अपना, अर्थात् कर्त्तव्य परायण बन। भौतिकवाद में स्वार्थ प्रधान है। भौतिकवादी अपना काम स्वार्थ की दृष्टि से करता है। अध्यात्मवाद में फ़र्ज़ या कर्त्तव्य पहले है। कर्त्तव्य परायण जीवों में स्वार्थ लेशमात्र भी नहीं रहता, वही सच्चे परमार्थी जीव होते है।

शिक्षा नं. 4: एक दिन श्री महाराज जी ने इस प्रकार उपदेश देना आरम्भ कर दिया, ''यदि कोई संसार में उन्नति करना चाहे तो पहले वह अपना उद्धार करे। शरीर के विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि का त्याग करे। यदि अपना उद्धार हो गया तो दुनिया का उद्धार स्वयं हो जायेगा। अगर तेरा मन मैला है, विकारों से नापाक(दूषित) है तो तेरा अशुद्ध संकल्प सारी दुनिया को अशुद्ध कर देगा। रेडियो के दृष्टान्त से शिक्षा ग्रहण करो, किस प्रकार एक शब्द चलकर सारी पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है। आज भौतिक दृष्टि से सारा संसार एकरूप हो रहा है, किसी एक देश के दुष्कर्म का फल सारी दुनिया को भोगना पड़ता है।

इस प्रकार आध्यात्मिक जगत में मनुष्य के मन से निकले हुए अशुद्ध संकल्प सारे संसार के वातावरण को गन्दा करते हैं। तुम्हारे पापमयी संकल्प दूसरों के अशुद्ध संकल्पों के साथ मिलकर तुम्हारा विरोध उत्पन्न करेंगे। सन्तों

और महापुरुषों ने जो-जो परहेज़ बताए हैं, आजकल उनके उल्ट काम हो रहा है, इसलिए दुनिया दु:खी है।''

ऐसे महापुरुषों के चरणों में बारम्बार कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ और लेखनी को यहीं विश्राम देता हूँ।

12

श्री सन्तराम गोसाईं, काहनूवान

(1) अन्तर्यामी सत्पुरुष

1947 में देश के विभाजन के पश्चात् काहनूवान, ज़िला गुरदासपुर में एक अध्यापक की नौकरी स्कूल में मिली। 1950 में दूसरी बार श्री महाराज जी काहनूवान पधारे। उप्पल वंश के लाला जी के बग़ीचे में उनको ठहराया गया, जो आबादी से बहुत दूर था। संगत की ओर से सायंकाल का समय सत्संग के लिए निश्चित हुआ। बाहर से भी कुछ प्रेमी आए थे। प्रेमियों के खाने और रहने का प्रबन्ध हकीम जसवन्तराय जी की ओर से था। कस्बे की संगत भी सत्संग से लाभ उठाती थी। दास पर अभी नामदान की कृपा नहीं हुई थी। एक वर्ष पहले भी सत्संग के विचारों से लाभ उठाया था। कुछ अन्य जानकारी हकीम जसवन्तराय जी से मिल गई थी। सत्संग में श्रद्धा बढ़ती जा रही थी। समय पर सत्संग में पहुँच जाता था। इस बात का दु:ख मन में था कि सत्पुरुष से सम्पर्क के लिए शारीरिक तौर पर बहुत कम समय मिला था। फिर भी वह हमारे अंग-संग हैं।

एक अनोखा अनुभव हुआ कि श्री महाराज जी चमत्कार या कारामात दिखाने में विश्वास नहीं रखते थे, लेकिन सूर्य से जब किरणें फूटती हैं तो इन्हें रोक सकना अति कठिन है। प्रतिदिन मैं और मेरे साथी डॉक्टर ब्रह्मकुमार उप्पल सत्संग में आया करते थे और हम दोनों कुछ धार्मिक प्रश्न सोचकर आते थे कि आज सत्संग के पश्चात् यह सवाल पूछेंगे लेकिन होता यह कि जो प्रश्न पूछने होते उन सभी प्रश्नों के उत्तर श्री महाराज जी अपने प्रवचन में ही दे दिया करते थे। जब प्रवचन की समाप्ति पर श्री महाराज जी फ़रमाते कि प्रेमियों कोई बात पूछनी हो तो अवश्य पूछो, तो हम दोनों एक दूसरे के मुँह की ओर देखकर चुप रहते। तीन-चार दिन ऐसा ही होता रहा। वापसी पर हम फिर यही विचार

करते हुए घर पहुँचते कि महात्मा तो बहुत देखे-सुने हैं परन्तु ऐसा नहीं देखा कि जो प्रश्न पूछना हो तो उसका उत्तर बिना पूछे ही दे देवे। यह महात्मा बहुत पहुँचे हुए लगते हैं, जो मन की बात बिना बताए जान लेते हैं आदि-आदि।

एक दिन श्री महाराज जी ने कहा, ''डॉक्टर साहिब! कोई विचार हो तो करो।'' डॉक्टर साहिब ने कहा, 'महाराज जी! पूछें क्या, जो कुछ पूछने का हम निश्चय करके आते हैं उसका उत्तर तो आप बिना पूछे ही दे देते हैं। पूछने या कहने की कोई बात रहती ही नहीं।'

श्री महाराज जी ने मेरी ओर देखकर हल्की सी मुस्कराहट से फ़रमाया, ''मास्टर जी! आपने क्या समझा?'' मैंने हाथ जोड़कर निम्न दोहा कहा -

अनन प्रीती चरण की, मन में आई समाये।
'मंगत' सब सुख पाया, जो वर्णन में नहीं आये।।

श्री महाराज जी ने पूछा, ''तुमने यह दोहा कहाँ से लिया?'' दास ने कहा, 'पाकिस्तान बनने से पहले रसाला मार्त्तण्ड में उर्दू में पढ़ा था और कण्ठस्थ कर लिया था। 1947 में इधर आते ही मैंने हकीम जसवन्तराय जी को सुनाया था और पूछा था कि यह महात्मा जी कहाँ रहते हैं। हकीम जी ने उत्तर दिया था कि इनके दर्शन यहीं हो जायेंगे। सो श्री महाराज जी, अब आपकी कृपा हो गई।' इसके पश्चात् श्री महाराज जी ने अपनी अन्तर दृष्टि की बात यह कह कर टाल दी कि कभी ऐसा हो जाता है कि प्रश्नकर्त्ता का उत्तर व्याख्यान में आ जाता है, क्योंकि प्राय: लोग ऐसे ही सवाल करते हैं जो धर्म के सम्बन्ध में हों।

ऐसी अद्‌भुत शक्ति और इसे छिपाये रखने की महानता देखकर सब श्रोताओं की श्रद्धा और जिज्ञासा को शक्ति मिली और सत्संग में उपस्थित होने की रूचि बढ़ती गई।

(2) सिनेमा देखने की मनाही

सन् 1952, मार्च के महीने की बात है। बच्चों की परीक्षाएँ हो चुकी

थी। हम पाँच स्कूल मास्टर गुरदासपुर गए। कोई विशेष सरकारी काम भी था। वहाँ से लौटते समय शाम हो चुकी थी। शहर से बाहर ही वह सड़क थी जो साइकिल सवारों को नहर की पटरी से मिलवाती थी। इस सड़क पर पहले टूटा-फूटा सिनेमा हाल आता है। बाहर के बोर्ड पर लिखा था - ''माया मच्छन्दर।'' साथी कहने लगे - यह पिक्चर तो अवश्य देखनी चाहिए। मैंने इन्कार कर दिया। उन्होंने हठ किया और कहा इसमें कोई बुरी बात नहीं है। गुरु मच्छन्छरनाथ को इनका शिष्य गोरखनाथ एक मायाजाल से निकालता है। अन्त में उन्होंने मुझे मना लिया। मुझे बार-बार याद आ रहा था कि श्री महाराज जी ने सिनेमा, थियेटर देखने को मना किया हुआ है। इसमें गन्दे विचार मिलते हैं। मगर मेरी पेश नहीं चली। बे-मन से थोड़ा बहुत देखा और बीच में ही छोड़कर चल पड़े। दूसरे साथियों को भी इसमें कोई रूचि वाली बात नज़र नहीं आई। चाँदनी रात थी। रात के 10:30 बजे बातचीत करते घर पहुँचे गये।

खाना खाने के पश्चात् सोने के लिए बिस्तर पर लेटा, पर नींद नहीं आई। रह-रह कर मन में पश्चाताप हो रहा था कि श्री महाराज जी की आज्ञा का उल्लंघन हो गया। जैसे-तैसे रात कटी। प्रातः स्कूल गया और निश्चय किया कि आज ही श्री महाराज जी को पत्र लिखकर अपनी इस भूल की क्षमा माँगूंगा। जम्मू श्री महाराज जी को पत्र डाल दिया। कुछ हद तक मन को थोड़ी चैन सी मिली। परन्तु तीसरे-चौथे दिन प्रतीक्षा के कारण फिर बेचैनी आरम्भ हो गई। विचार किया, अगर शनिवार तक श्री महाराज जी का कोई पत्र न मिला तो रविवार को स्वयं हज़ूर के दरबार में उपस्थित हो जाऊँगा। परन्तु श्री महाराज जी की अपार दयालुता के कारण शुक्रवार को पत्र मिल गया।

श्री महाराज जी ने पत्र में फ़रमाया था, ''प्रेमी! पत्र मिला। तुमने बहुत गलत काम किया है। तुम्हारे जैसे सुलझे व पढ़े-लिखे आदमी से हमें ऐसी उम्मीद नहीं थी, मगर चूँकि तुमने अपनी गलती को जल्दी मानकर इधर लिख दिया है इसलिए इस बार माफ़ी दी जाती हे। आइन्दा ऐसा हरगिज़ नहीं करना होगा। छोटी-छोटी बातों में सत् का मुतलाशी (जिज्ञासु) साधक अपने मार्ग से

फिसल जाए, यह कोई दानाई (बुद्धिमानी) की बात नहीं है। तुम लोगों पर बहुत सी ज़िम्मेवारियाँ हैं। इस समता शाँति का प्रसार कैसे कर सकोगे, जो ऐसी निकम्मी गल्तियाँ बार-बार करोगे। इस मार्ग में तो कई तकलीफ़ें बरदाश्त करनी पड़ती है। जान मारनी पड़ती है। हमेशा गुरु की रहनी को ध्यान में रखकर नाम सिमरण, अभ्यास बढ़ाओ। हमेशा मन को काबू में रक्खो। मालिक कृपा करेंगे। बहुत-बहुत आशीर्वाद।''

माफ़ी मिली तो जान में जान आई। भविष्य के लिए प्रण किया कि आयु पर्यन्त सिनेमा नहीं देखूँगा।

(3) गुरु कृपा की प्राप्ति

1951 की सर्दियों में परमपूज्य महात्मा मंगतराम जी श्री महाराज ने काहनुवाल पधारने की कृपा की। इसी समय मेरे पापी मन में श्री महाराज जी के दैनिक प्रोग्राम की देख-परख हो चुकी थी; रात को बहुत अंधेरे इनका सीमे की नहर पर (जहाँ अब समता योगाश्रम है) जाना, शौच आदि के पश्चात् एक बटवृक्ष के नीचे शान्ति से कम से कम तीन घन्टे समाधिस्थ हो जाना, वापसी में दिन चढ़ आना और अपने ठहरने के स्थान पर आकर 2 मिनट में स्नान करके अपने आसन पर बैठ जाना, केवल चाय पर सारा दिन गुज़ार देना, दिन-रात श्रद्धालुओं की शंका निवारण में लगे रहना, यह सब अच्छी प्रकार देखकर निश्चय किया कि चाहे मैं इस कृपा का पात्र नहीं हूँ, फिर भी प्रयत्न तो करना चाहिए।

मैंने हकीम जसवन्तराय जी से प्रार्थना की कि मेरी सिफ़ारिश श्री महाराज जी से कर दो ताकि नादान पर कृपा हो जाए। मैंने उसी दिन से खाना छोड़ दिया। हकीम जी ने श्री महाराज से मेरे लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना की। दो दिन ऐसे ही समाप्त हो गये, परन्तु सत्संग में मैं प्रतिदिन उपस्थित था। श्री महाराज जी यह कहकर टालते रहे, ''देखो हकीम जी! इन लोगों ने बहुत कुछ देखा हुआ होता है और फिर आप कहते हो यह गोसाईं हैं। यह भी गुरु वंश से

हैं, पता नहीं इनके कैसे विचार हैं।''

तीसरे दिन हकीम जी ने सत्संग के पश्चात् पुनः प्रार्थना की और कहा, 'मास्टर जी ने तीन दिन से खाना नहीं खाया और कहते हैं कि जब श्री महाराज की कृपा होगी तभी कुछ ग्रहण करूँगा।'

श्री महाराज जी ने पूछा कि इस समय वह कहाँ है। हकीम जी ने कहा, 'बाहर बैठे हुए हैं।' श्री महाराज ने आदेश दिया कि उन्हें बुला लाओ।

ज्यों ही मैं अन्दर आया श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! इस प्रकार हठ करने से यह वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, यह तो दबाव से लेने वाली बात हुई।'' दास ने उस समय श्री महाराज जी से कहा, 'महाराज जी! किसी हठ या दबाव की बात नहीं, केवल व्रत है और बारम्बार आपके चरणों में विनती है, कृपा करके मुझे निहाल करें।'

श्री महाराज जी फ़रमाने लगे, ''क्या आपने आगे भी किसी से नाम लिया है?''

मैंने कहा, 'जी हाँ।'

श्री महाराज जी ने पूछा, ''किससे नाम लिया है?''

दास ने कहा, 'अपने जो कुलगुरु हैं, उन्होंने मेरे विवाह के अवसर पर कण्ठी बाँधकर गायत्री मन्त्र मेरे कान में डाला था। चूँकि मेरे पिताजी ने गायत्री मन्त्र मेरे कान में डाला था तथा मेरे पिताजी ने गायत्री मन्त्र और ऐसे कई मन्त्र-द्वादश अक्षर मन्त्र, शिव मन्त्र और स्तुतियाँ बचपन में ही सिखा दी थीं इसलिए मैंने उसी समय शुद्ध शब्दों में मन्त्र के अक्षर और अर्थ बता दिया था।'

थोड़ा चुप रहने के पश्चात् श्री महाराज जी ने पूछा, ''अपने वंश की परम्परा से क्या कुछ गुरु शिक्षा का काम भी है?''

दास ने उत्तर दिया, 'जी हाँ, 600 घरों की सेविकाई हमारे बाबा जी के भाग में आई थी। मेरे दो बाबा जी तो आयु पर्यन्त कुँवारे रहे। छोटे बाबा जी की इन्होंने शादी करवा दी और वह पालकियों में बैठ कर सेवकों के यहाँ जाते थे। मेरे पिता जी ने पालकियों का मामला छोड़ दिया, वह बहुत अच्छा घोड़ा

रखते थे और इनके साथ तीन-चार सेवादार जाते थे।'

श्री महाराज जी ने पूछा, ''क्या तुम भी सेवकों के यहाँ दान-दक्षिणा प्राप्त करने के लिए जाते हो?''

दास ने कहा, 'मेरे बड़े भाई प्रायः जाते हैं, अगर कोई विशेष तौर से बुलाए तो जाता हूँ, क्योंकि मैं स्कूल में टीचर हूँ, इतना अवकाश कहाँ। दूसरे, न तो कोई आवश्यकता है और न ही कोई चाव है।'

फिर श्री महाराज ने पूछा, ''तुम कौन सा मन्त्र देते हो?'' दास ने कहा, 'महाराज जी, ब्राह्मण को गायत्री मन्त्र और अन्य को '**ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय**' का द्वादस मन्त्र।''

उसी समय श्री महाराज ने मुझसे पूछा, ''इधर से जो मन्त्र लोगे, क्या वह अपने सेवकों को दिया करोगे?''

एक मिनट के पश्चात् दास ने कहा, 'नहीं श्री महाराज जी! जब मैं आपका शिष्य बन जाऊँगा तो गुरुपन छोड़ दूँगा। एक मनुष्य एक समय में एक ही रूप हो सकता है, या शिष्य या गुरु।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''जानते तो तुम बहुत कुछ हो पर मानने का पता नहीं।''

मैंने श्री महाराज जी से कहा, 'इसके पश्चात् वही करूँगा जो आप कहेंगे। मेरे पिताजी ने यह कह दिया था कि अब '**गुर गूँगे, गुर बावरे**' का ज़माना चला गया, काम करके रोटी खा। यह बात मैंने पल्ले बाँध ली है।'

श्री महाराज ने उसी समय फ़रमाया, ''ठीक है, प्रातः थोड़ा प्रसाद लेकर आ जाना।''

रात बड़ी प्रसन्नता से व्यतीत हुई। सुबह नहा-धोकर प्रसाद लेकर हज़ूर के दरबार में उपस्थित हुआ। श्री महाराज जी की विशेष कृपा हुई।

श्री महाराज जी ने उस समय दास को चेतावनी दी, ''यह मन्त्र किसी को नहीं देना। जब तुम अन्दर उस परम तत्त्व को पा लो तब दे सकते हो, उस पात्र की भली-भाँति परीक्षा करके।'' दास ने चरणों पर सिर रख दिया और श्री

महाराज जी ने अपना दायाँ कर-कमल मेरे सिर पर रख दिया। फिर हकीम जी को, जो बाहर कुछ प्रेमियों व पूज्य भगत जी के साथ बैठे थे, बुलाकर फ़रमाया, ''जाओ! अब इनको खाना खिलाओ। तुम्हें अच्छा भाई मिल गया है।'' बाहर आकर मैंने पूज्य भगत बनारसी दास जी को प्रणाम किया। उन्होंने मेरे प्रसन्नता के आँसू अपने दुपट्टे से पोंछ दिये।

13

श्री अमोलक राम बख्शी, पंजलासा

(1) शारीरिक स्वच्छता का अभ्यास से सम्बन्ध नहीं

श्री महाराज जी से दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् एक दिन मैं अपने बुज़ुर्ग सम्बन्धी के साथ श्री महाराज जी के चरणों में उपस्थित हुआ। श्री महाराज जी ने उनसे पूछा, ''प्रेमी! कोई विचार रक्खो।''

बुज़ुर्ग प्रेमी ने कहा, 'महाराज जी! पाकिस्तान में रह गई ज़मीन-जायदाद का क्लेम कब तक और कितना मिलेगा?'

श्री महाराज जी ने उनसे कहा कि यह फ़कीर कोई क्लेम वग़ैरा दिलवाने वाले नहीं हैं। आप कई क्लेम इस ज़िन्दगी में खा चुके हो। अब अगले सफ़र के बारे में कुछ पूछना हो तो पूछो। यह सुनकर वह प्रेमी नाराज़ से हो गए और मुझसे कहने लगे कि श्री महाराज जी हमारे हैं परन्तु इतनी सी बात बताने के लिए मना कर दिया। श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''प्रेमी! इन बुज़ुर्ग प्रेमी को तुमने बड़ा कष्ट दिया है इसलिए इनको घर ले जाओ।''

मैंने श्री महाराज जी की आज्ञा का पालन किया और उनको घर पर छोड़ने के पश्चात् मैंने फिर श्री महाराज जी के दरबार में उपस्थित होकर उनसे क्षमा माँगी। इसके पश्चात् श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''प्रेमी! यह इस बिरादरी के लोगों को अच्छी तरह जानते हैं। इन्होंने इनकी (गुरुदेव की) कदर नहीं की। जो प्रश्न उन्होंने किया था वह योग की पहली जमात वाले से सम्बन्ध रखता है। यह लोग नहीं जानते कि इनकी स्थिति क्या है। यह इन लोगों के ऐसे सवालों के उत्तर देने के लिए नहीं आए। जीवन के असली सवाल की ओर इन लोगों का ध्यान नहीं जाता।''

एक दिन मैंने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी, मैं ऐसे महकमे

में नौकर हूँ जहाँ कई बार स्नान करने का समय नहीं मिलता। ऐसी हालत में अभ्यास कैसे होगा?'

इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! अभ्यास कभी भी किसी भी हालत में नहीं छोड़ना है। अभ्यास की कोताही करना अपनी मूल बरबादी करना है। तुम इस शरीर को बाहर से मल-मल कर साफ करते हो परन्तु पेट के अन्दर हर समय गन्दगी भरी रहती है। जब उससे तुम्हारा शरीर भ्रष्ट नहीं होता तो क्या बाहर की मैल धोने से साफ हो जाएगा?''

(2) प्रभु की भक्त पर कृपा

गुरुदेव के बारे में यह घटना मुझको मेरे चाचा श्री हीरानन्द जी ने सुनाई थी। वे श्री महाराज जी के साथ पेशावर के कार्यालय में ही नौकरी करते थे।

पेशावर में श्री महाराज जी प्राय: प्रभु भक्ति में तल्लीन रहते थे। सारी रात प्रभु की याद में कटती थी। एक दिन की बात है कि श्री महाराज जी प्रभु की याद में इतने लीन हो गए कि प्रात: कार्यालय जाने का ध्यान ही न रहा। जब समाधि टूटी तो काफ़ी देर से कार्यालय पहुँचे। मन में यह विचार चल रहा था कि आज बड़े आफ़िसर ने दफ़्तर के निरीक्षण के लिए आना था, यह तो बहुत बड़ी गलती हो गयी। अब पता नहीं क्या होगा। यह विचार मन में चल ही रहे थे, उसी समय दफ़्तर के बाहर खड़े चपरासी से पूछा, ''आज हम देर से आए हैं। आफ़िसर तो बहुत नाराज़ हुए होंगे, उनके निरीक्षण के बारे में क्या हुआ?''

चपरासी ने तुरन्त उत्तर दिया, 'मंगतराम जी! आप तो दफ़्तर में सबसे पहले आए थे और निरीक्षण के समय उपस्थित भी थे। आप यह क्या कह रहे हैं कि आप देर से आए हैं। बड़ा ही आश्चर्य है!'

श्री महाराज जी ने समझा कि आज उनकी नौकरी समाप्त हो गयी होगी, यह कुछ मज़ाक कर रहा है। फिर श्री महाराज जी कार्यालय के अन्दर

गए। वहाँ अपने एक साथी से पूछा, परन्तु उसने भी आश्चर्य से वही उत्तर दिया। इसको सुनकर श्री महाराज जी को यह विश्वास हो गया कि मेरे मालिक ने आज स्वयं उनके स्थान पर मेरे रूप में ड्यूटी दी है। तभी उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया, और फ़रमाया कि जिस प्रभु ने उनके स्थान पर ड्यूटी दी है अब उनकी ही नौकरी करेंगे।

भगवान कृष्ण ने गीता में यह घोषणा की है – **'हे अर्जुन! जो मेरे लिए ही मेरे को भजता है वह मेरा अनन्य भक्त है। उसके योग और क्षेम का मैं जिम्मेदार हूँ।'** इस घटना से यह स्वत: सिद्ध हो जाता है कि प्रभु उसके योग और क्षेम के जिम्मेदार हैं जो उनको सच्चे हृदय से प्यार करता है।

(3) तन्दूर की अग्नि भी न जला सकी

यह घटना भी मैंने अपने चाचा बख़्शी हीरानन्द जी से सुनी थी। इस घटना के समय वह श्री महाराज जी के साथ ही पेशावर में नौकरी करते थे। यह उनकी आँखों देखी घटना है।

गुरुदेव कल्लर कस्बे में आठवीं तक पढ़ाई करने के पश्चात् अपने घर गंगोठियाँ पहुँचे। कुछ घरेलू परिस्थितियों के कारण अपनी पूज्य माताजी की इच्छा अनुसार पेशावर (अब पाकिस्तान) में मिलिट्री एकाउन्ट्स डिपार्टमेन्ट में नौकरी करनी पड़ी। उन दिनों मेरे चाचा बख़्शी हीरानन्द जी भी श्री महाराज जी के साथ नौकरी करते थे। कुछ अन्य साथियों के साथ यह लोग एक ही स्थान पर रहते थे और भोजन भी साथ ही बनाया करते थे। उन दिनों सर्दी का मौसम था। खाना खाने के पश्चात् सब साथी तन्दूर के पास आग सेंक रहे थे। तन्दूर में लकड़ियाँ जल रही थीं और वह तपकर लाल हो गया था। उसी समय भक्त प्रहलाद और उनके पिता हिरण्यकश्यप के बारे में चर्चा प्रारम्भ हो गयी।

उस समय श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''देखो! प्रहलाद को ईश्वर पर भरोसा था। जब उसके पिता ने उसको तेज़ गर्म लोहे के खम्बे से लिपटने

की आज्ञा दी तो उस समय प्रहलाद को भय लगने लगा। मन ही मन यह सोचने लगा कि अब बचना कठिन है। उसी समय प्रभु कृपा से उस गर्म खम्बे पर एक चींटी चलती हुई दिखाई पड़ी। उसे देखकर भक्त प्रहलाद को विश्वास हो गया कि अगर यह छोटी सी चींटी गर्म खम्बे पर चल सकती है, जिसका प्रभु कृपा से ज़रा सा भी अनिष्ट नहीं हुआ, फिर मुझको भी इससे लिपटने पर कोई हानि नहीं होगी। तभी भगवान को स्मरण करते हुए भक्त प्रहलाद खम्बे से लिपट गए परन्तु उनका ज़रा सा भी बाल-बाँका नहीं हुआ।''

मेरे चाचाजी बड़े हठी स्वभाव के थे। उन्होंने उसी समय बड़े कड़े शब्दों में इस घटना का खण्डन किया और बोले कि ऐसा होना असम्भव है। फिर वाद-विवाद प्रारम्भ हो गया। श्री महाराज जी ने मेरे चाचाजी को बहुत समझाया, परन्तु वह अपनी बात पर अड़े रहे। फिर चाचाजी ने श्री महाराज जी से कहा, 'आप तो दिन-रात प्रभु का नाम लेते रहते हो, ज़रा इस तन्दूर में पैर डालकर दिखाओ, देखें प्रभु आपकी कैसे रक्षा करते हैं।' श्री महाराज जी ने उनको फिर समझाने की कोशिश की, परन्तु उन पर किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ा।

प्रभु प्यारे भक्तों की लाज रखते आए हैं। उसी समय श्री महाराज जी ने जलते हुए तन्दूर में अपनी टाँग डाल दी। पास में बैठे हुए तमाम साथी भयभीत हो गए। उन्होंने तुरन्त ही श्री महाराज जी की टाँग तन्दूर से बाहर निकाल दी और वहाँ से परे ले गए।

आश्चर्य इस बात का था कि टाँग जलने की बात तो दूर, टाँग का एक बाल भी नहीं जला था। प्रभु भी दिव्य हैं, उनके खेल भी दिव्य हें। उनकी कृपा से असम्भव चीज भी सम्भव हो जाती है। यही उनकी आश्चर्यजनक माया है। श्री महाराज जी ने अपनी अनुभवी वाणी में फ़रमाया है -

साची प्रीती राख के, जो सिमरन करे दयाल।
बाल न बाँका कर सके, चक्रवरत भूपाल।।

इस घटना के पश्चात् श्री महाराज जी ने बहुत पश्चाताप किया और

बड़े दु:ख के साथ कहा कि इन्होंने अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं करना था। जो यह भूल अचानक हो गई कि इसके कारण ये बहुत पीछे चले गए हैं। काफी समय तक इनको अपनी भूल का पश्चाताप करना पड़ेगा। इसके पश्चात् जब भी मेरे चाचाजी श्री महाराज जी से मिले उनको इस घटना के बारे में पश्चाताप करते पाया।

यहाँ पर यह बताना उचित होगा कि सत्गुरुदेव किसी भी प्रकार की ऋद्धि सिद्धि दिखलाने के विरूद्ध थे। अपने शिष्यों के लिए भी इस बारे में विशेष तौर से मनाही थी। यदि हम श्री महाराज जी के जीवन का अध्ययन करें तो पता लगेगा कि उनका सम्पूर्ण जीवन किसी चमत्कार से कम नहीं था। उनका जीवन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है।

(4) फ़कीरों के दरबार में कोई भेदभाव नहीं

1939 में दिसम्बर मास में जब पूज्य महाराज जी ने हमारे गाँव बमनियालां (जो अब पाकिस्तान में है) में पधारने की कृपा की तो उन दिनों दास घर पर नहीं था। बड़ी कठिन तपस्या उस समय श्री महाराज जी ने वहाँ एक पहाड़ी पर की। केवल एक बार श्री महाराज जी के लिए मेरे चाचा बख्शी हीरा नन्द जी चाय लेकर जाते थे। किसी को उस समय झोपड़ी खोलने या अन्दर जाने की आज्ञा न थी।

हमारे गाँव के साथ ही भलोट नाम के गाँव का एक फ़कीर था जिसको पता चला कि एक हिन्दू पीर पहाड़ी पर चिल्ला काट रहा है और किसी को रात झोपड़ी में जाने की आज्ञा नहीं है। इसके बावजूद वह रात को वहाँ पहुँचा तो साथ की पहाड़ी में आवाज़ सुनी। वह आवाज़ उसके कहने के अनुसार 'तू ही' 'तू ही' थी। जब वह मुसलमान फ़कीर उस आवाज़ की तरफ़ बढ़ा और निकट गया तो वह आवाज़ साथ वाली पहाड़ी की तरफ़ से आने लगी। यानी वह फ़कीर सारी रात इस प्रकार इधर-उधर भटकता रहा। दूसरे दिन फिर वह फ़कीर रात को श्री महाराज जी की झोपड़ी की ओर गया तो क्या

देखता है कि झोपड़ी के पास एक शेर बैठा है जिससे वह डर कर वापिस अपने स्थान पर चला गया। तीसरी रात फिर झोपड़ी के पास गया तो क्या देखता है कि श्री महाराज जी की टाँगें एक ओर पड़ी हैं, बाहें एक ओर पड़ी हैं और सिर किसी और स्थान पर पड़ा है। उसके पश्चात् वह फ़कीर रात को उस ओर नहीं गया। परन्तु जब श्री महाराज जी ने तपस्या समाप्त की तब वह मुसलमान फ़कीर ने श्री महाराज जी के चरणों में माथा टेक कर क्षमा माँगी। उस की तरफ़ से और संगत की ओर से इस सब हालात के बारे पूछने पर श्री महाराज जी ने टिप्पणी करते हुए फ़रमाया कि यह कोई विशेष बात नहीं थी। उस मुसलमान फ़कीर के मन में जो कल्पना उठी थी वैसा ही दृश्य उनको झोंपड़ी के पास नज़र आता था। यह बात बतानी आवश्यक है कि मैं इस घटना के समय घर पर नहीं था घरवालों ने ही मुझे यह सब हालात बताए थे। यह कहना अनुचित है कि कुछ मुसलमान हथियारों सहित श्री महाराज जी की झोंपड़ी की ओर गये थे। यह कहना अक्षरश: सत्य है कि उस आसपास के इलाके मुसलमान लोगों को श्री महाराज जी के प्रति अपार श्रद्धा व प्रेम था। श्री महाराज जी के तप के पश्चात् वहाँ पर यज्ञ हुआ। जिसमें हिन्दू व मुसलमान जनता ने इकट्ठे बैठकर लंगर पाया। फ़कीरों के दरबार में सब को एक निगाह से देखा जाता है। वहाँ पर कोई भेदभाव नहीं था। ऐसा दृश्य वहाँ स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

14

श्री परस राम हरयाल, दिल्ली

(1) सत्गुरु दर्शन

सन् 1942 की बसन्त ऋतु में दास फ़ौज से अवकाश पर अपने गाँव मोहड़ा मिसराँ, जो कि हरनाल गाँव के निकट था, आया। हरनाल गाँव गुरुदेव के गाँव गंगोठियाँ ब्राह्मणाँ से लगभग 17 किलोमीटर था। श्री महाराज जी ने हरनाल गाँव में यज्ञ किया था। यज्ञ वाले दिन दास के एक बुज़ुर्ग, पशु चिकित्सक, श्री मोहन लाल बाली ने यज्ञ में चलने की प्रेरणा की। दास ने प्रार्थना की कि यज्ञ का खाना दास को अनुकूल नहीं। तब बाली जी ने कहा कि पढ़े-लिखे, समझदार फ़कीर ने हरनाल गाँव में यज्ञ किया है। अत: वहाँ जाकर कुछ विचार-विमर्श करेंगे। दास तैयार हो गया और हरनाल गाँव पहुँचकर फ़कीरों के दरबार में उपस्थित हुआ।

गुरुदेव स्कूल के सामने तालाब के किनारे एक पीपल के पेड़ के नीचे विराजमान थे। यज्ञ सम्पन्न हो चुका था। कुछ स्त्री, पुरुष वहाँ उपस्थित थे। नमस्कार करके हम बैठ गये। एक युवक, जिसके पास एक पुस्तक थी, वेदान्त के प्रश्न पूछ रहा था। उसके पश्चात् दास ने पूछा, 'कुछ लोग ईश्वर की बड़ी स्तुति करते हैं और भीख पर गुज़ारा करते हैं। यदि मैं स्तुति न करके अपशब्द कहूँ तो क्या ईश्वर को कुछ अन्तर पड़ता है?'

गुरुदेव ने स्त्रियों को हाथ जोड़कर जाने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् दास से पूछा, ''स्तुति और अपशब्द का प्रश्न तब उठता है जब ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास हो। क्या तुम्हें विश्वास है कि ईश्वर है?''

दास से उत्तर दिया, 'यदि ईश्वर पर मुझे पूर्ण विश्वास होता तो मुझे यहाँ आने की आवश्यकता न थी और यदि यह विश्वास होता कि ईश्वर नहीं है तो भी नहीं आता। दुविधा में हूँ इसीलिये चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। मैं पूरे

मन से एक बार चेष्टा करना चाहता हूँ। यदि कुछ प्रत्यक्ष न हुआ तो मैं छत पर चढ़ कर शोर मचाऊँगा कि इस विषय पर समय नष्ट न किया जावे।'

गुरुदेव बोले, ''ईश्वर है। उसकी स्तुति या निन्दा से उसे कुछ प्रयोजन नहीं। हाँ, अपने मन पर प्रभाव पड़ता है।''

दास ने कहा, 'पहले तो लोगों को ईश्वर का ज्ञान नहीं, पर यदि किसी को पता है तो बताना नहीं चाहता।'

गुरुदेव - ''प्रेमी! ईश्वर प्राप्ति का मार्ग समाचार पत्रों पर छपवा दिया जावे या दीवारों पर लिखवाया जाये तो क्या लोग इस मार्ग पर चल पड़ेंगे? कोई ही चलने को तैयार होता है। उनमें से कोई विरला ही पहुँच पाता है। फ़कीर दर-दर घूम रहे हैं कि कोई इस मार्ग का अधिकारी मिले।''

तब एक सफ़ेद-पोश बुज़ुर्ग ने मुझसे कहा, 'तुम जवान हो और फ़ौज में नौकरी करते हो। किस ओर चले हो?' (मेरी आयु तब लगभग 24 वर्ष थी।)

दास ने उत्तर दिया, 'क्या जंगल उगने दूँ। फिर बड़े-बड़े पेड़ों को काटता रहूँ और जंगल साफ करता रहूँ। तब तक मेरा तोता उड़ जाएगा।' बुज़ुर्ग चुप हो गया।

फिर गुरुदेव ने पूछा, ''शराब पीते हो?''

दास ने न में उत्तर दिया।

गुरुदेव - ''माँस खाते हो?''

दास ने न में उत्तर दिया।

गुरुदेव - ''सिगरेट पीते हो?''

दास ने पुनः न में उत्तर दिया।

गुरुदेव - ''सिनेमा देखते हो?''

'कभी-कभी', दास ने उत्तर दिया।

गुरुदेव बोले, ''तुम आधे तैयार हो। अभी तुम्हें और देखना होगा। यह गंगोठियां जा रहे हैं। तीन-चार दिन के बाद गंगोठियाँ आना।''

तीन दिन बाद दास जाने के लिए घर से निकला तो पिता जी दूसरे दरवाजे से निकल कर मेरे सामने आ खड़े हुये और कहा, 'तुम मानोगे नहीं। जाओगे ज़रूर। मार्ग कठिन है। इस मार्ग में जो भी करो, पाखण्ड न करना।' यह कह कर रास्ता छोड़ दिया और दास गुरुदेव की शरण में पहुँच गया।

गंगोठियाँ में गुरुदेव के निवास में प्रतिदिन सन्ध्या समय सत्संग होता था। एक दिन सत्संग के पश्चात् काम वासना के सम्बन्ध में चर्चा चल रही थी। दास ने प्रार्थना की कि इस विषय पर समय नष्ट क्यों किया जाता है। यह कोई कठिन समस्या नहीं है। सारी संगत मेरी ओर देखने लगी।

गुरुदेव मुस्कराये और बोले, ''अच्छा बच्चू, देखेंगे।'' कुछ दिन पश्चात् भगत बनारसी दास रावलपिण्डी से आये। अगले दिन बनारसी दास जी दास को प्रातः समय गुरुदेव के सामने बैठा गए। गुरुदेव ने बड़ी कृपापूर्वक दीक्षा प्रदान की और चरणामृत दिया। गुरुदेव ने उस समय फ़रमाया, ''यह जो दृश्यमान है, यह सत्य नहीं है।''

दास ने दीक्षा को जीवन का अंग बनाया और गुरुदेव का आभार माना। छः महीने के अन्दर कुछ ऐसे चिन्ह प्रकट हुये जिनसे विश्वास हुआ और अधिक लगन से इस ओर बढ़ने की प्रेरणा हुई। गुरु दीक्षा और पिता की शिक्षा कि पाखण्ड नहीं करना, यह दो बातें जीवन का मुख्य आधार बने हुये हैं।

अगले वर्ष श्रीलंका अपनी फ़ौजी यूनिट के साथ जाना पड़ा। वहाँ एक व्यक्ति, मटोर गाँव के श्री राम लाल, ने मुझे साधना करते देख कर कहा कि वह श्री महाराज मंगत राम जी को अपना गुरु मन से मानता है और छुट्टी जाने पर श्री महाराज जी से दीक्षा ले लेगा। लेकिन उस समय मार्ग-दर्शन के लिये दास को प्रार्थना की। दास ने टालना चाहा लेकिन वह न माना और मजबूरी में उसे साधन बताना पड़ा। गुरुदेव को पत्र लिख वृत्तान्त लिख दिया और प्रार्थना की कि राम लाल पर कृपा करें। उत्तर में गुरुदेव ने डाँटा और लिखा कि कच्ची अवस्था में किसी को अपना साधन बताने से हानि होगी। पत्र

द्वारा क्षमा माँगी और तब गुरुदेव ने पत्र द्वारा क्षमा किया। अवकाश ग्रहण कर पुनः समयाला जाकर साक्षात् क्षमा माँगी।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि गुरुदेव सर्वत्र प्रकाश रूप में व्याप्त हैं और जब कभी साधन में कोई आवश्यकता होती है तो मार्ग दर्शन प्राप्त होता है। गुरुदेव सबको सुमति बख़्शें।

15

श्री रामलाल, जहाँगीरपुर

(1) यज्ञ के लिए लकड़ी

श्री रामलाल जी पहले गंगोठियाँ में ही रहते थे पाकिस्तान बनने के बाद वह जहाँगीरपुर, ज़िला अम्बाला में रहने लगे। यह संस्मरण उन्होंने अपने पिता श्री अनन्तराम जी से सुना था जो कि श्री महाराज जी के बचपन के साथी थे।

श्री महाराज जी गंगोठियाँ में वार्षिक यज्ञ के अवसर पर समय से एक माह पूर्व कार्तिक महीने में अपने जन्म स्थान पर पहुँच जाते थे। एक दिन इसी अवसर पर सब गाँव के लोगों को एकत्र किया और उनसे फ़रमाया, ''प्रेमियों! अपने बैलों को एक महीने में दो दिन के लिए छुट्टी दे दिया करो। एक अमावस्या को तथा दूसरे संक्रान्ति के दिन बैलों को न जोता करो।'' सब उपस्थित सज्जनों ने श्री महाराज के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

वार्षिक यज्ञ के लिए लकड़ी पीर ख़्वाजा जंगल से कटवाई जाती थी। इस बार श्री महाराज जी कुछ सेवादारों के साथ लकड़ी लाने के लिए जंगल की ओर चल दिए। जब पीर ख़्वाजा जंगल आया तो तमाम सेवादार, जिनकी संख्या 15-20 के लगभग थी, वहीं रुक गए। सबका सिर नीचे को झुका था, हाथ में कुल्हाड़ियाँ थी। तभी सत्गुरुदेव ने फ़रमाया, ''प्रेमियों! इस बार यज्ञ के लिए लकड़ी इस जंगल से नहीं लेंगे। आओ, आगे बढ़ें। इस बार लकड़ी दूसरे जंगल से ली जाएगी।'' यह सुनकर सभी सेवादार आगे बढ़ने लगे।

बात ऐसी थी कि पीर ख़्वाजा जंगल में हिन्दुओं की श्मशान भूमि थी। वहाँ पर गंगोठियाँ निवासी अपने मृतक सम्बधियों का दाह संस्कार किया करते थे। कुछ दिन पहले प्रेमी गंगोठियाँ के एक व्यक्ति का दाह संस्कार करने यहाँ आए थे । संस्कार के लिए लकडी पीर ख्वाजा जंगल से काटी जाती थी। उनमें

से किसी व्यक्ति ने कहा था कि श्री महाराज जी हर वर्ष यज्ञ के लिए लकड़ी इसी जंगल सें कटवाते हैं, ऐसा न हो कि यहाँ की लकड़ी समाप्त हो जाए और हमें मृतक सम्बन्धियों का संस्कार करने में कठिनाई का सामना करना पड़े। यही कारण था कि श्री महाराज जी ने बिना बताए ही उनके मन की बात जानकर दूसरे जंगल में लकड़ी काटने के लिए सेवादारों को आज्ञा दी थी।

जब दूसरे जंगल में पहुँचे, वहाँ पर एक विशाल वृक्ष खड़ा था जो कि बिल्कुल सूख चुका था। श्री महाराज जी ने सेवादारों को फ़रमाया, ''प्रेमियों! यह एक ही पेड़ हमारे यज्ञ की आवश्यकता को पूरा कर देगा। आप सब इसको काटना शुरू करो।'' सब प्रेमियों की दृष्टि ज़मीन की ओर गयी और सभी मौन हो गए। गुरुदेव की आज्ञा का पालन नहीं हुआ।

सेवादारों की मनोदशा को देखकर श्री महाराज जी ने सारे मामले को भली प्रकार समझ लिया। बात ऐसी थी कि यह वृक्ष एक कच्ची कब्र के पास था। उस कब्र के चारों ओर कच्ची दीवार बनी हुई थी। प्रेमी डर रहे थे कि कब्र के पास का पेड़ काटने से हमें कोई मुसीबत न आ जाए। उनका अनुमान था कि वह कब्र किसी पीर की थी। यदि पेड़ काटने से पीर नाराज़ हो गया तो परेशानी निश्चित है। परन्तु सेवादार प्रेमियों की बुद्धि पर ग़फ़लत का पर्दा पड़ गया था, वह यह न सोच सके कि पीरों के पीर हमारे साथ खड़े हैं, वह ही हमें पेड़ काटने की आज्ञा दे रहे हैं। उसी समय अन्तर्यामी सत्गुरु ने एक पैर कब्र पर रखा और दूसरा पैर कच्ची दीवार पर। लटकती हुई एक सूखी टहनी को गुरुदेव ने खींचा। तुरन्त ही देखते ही देखते वह विशाल वृक्ष कच्ची दीवार के बाहर गिर गया। उसी समय श्री महाराज जी ने प्रेमियों को आदेश दिया, ''प्रेमियों! यह तमाम लकड़ी संभाल लो, यज्ञ के लिए काफी है।''

इस चकित कर देने वाली घटना ने सभी उपस्थित प्रेमियों को आश्चर्य में डाल दिया। सत्पुरुषों की महिमा वास्तव में अपार है, उसका पार पाना बहुत ही कठिन है। जो बात असम्भव है, उसको भी सम्भव बना देते हैं। फिर भी संसारी लोगों के लिए उनकी लीला को समझना बहुत कठिन है, जब

तक कि उनकी कृपा न हो। इतिहास के उन पृष्ठों का अवलोकन करें जब भगवान कृष्ण ने माँ यशोदा को बालक रूप में दिव्य दर्शन करवाया परन्तु फिर भी वह उनको समझ न सकीं और अपना बेटा ही मानती रहीं। गंगोठियाँ निवासियों के बड़े भाग्य हैं जहाँ ऐसे सत्पुरुष ने जन्म लेकर दिव्य लीलाएँ कीं। गंगोठियाँ की धूलि को शत-शत प्रणाम।

16

श्री सालिगराम एडवोकेट, कहुटा (पाकिस्तान)

(1) संसार सत्य या असत्य

मेरे भाई ने एक दिन मुझको बताया कि गंगोठियाँ में एक प्रसिद्ध व अनुभवी महात्मा मंगतराम जी हैं। आजकल उनकी बड़ी चर्चा है। यह भी पता चला कि वह बाल ब्रह्मचारी भी हैं। उनके विचार बहुत ऊँचे और सत्य पर आधारित हैं। परन्तु ऐसा भी सुना कि वह विद्वान नहीं बल्कि साधारण सी उर्दू की शिक्षा है और बड़े ही साधारण व्यक्ति हैं। हम दोनों ने यह विचार किया कि रविवार की छुट्टी के दिन गंगोठियाँ जाकर उनसे भेंट व वार्तालाप करके किसी नतीजे पर पहुँचा जाए, क्योंकि बगैर शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों और वेदान्त ग्रन्थों के अध्ययन के आत्मा, परमात्मा का ज्ञान कठिन है।

हम निश्चित प्रोग्राम के अनुसार गंगोठियाँ पहुँच गए। उस समय महात्मा जी संगत में प्रवचन कर रहे थे। कुछ समय पश्चात् महात्मा जी ने हम दोनों अजनबियों की ओर देखा और फ़रमाया, ''आप लोग कहाँ से आए हो?'' हमने कहा कि कहुटा से आपके दर्शनों के लिए आए हैं। कुछ देर पश्चात् मैंने विनती की, 'महाराज जी! एक प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें।'' श्री महाराज जी ने पूछा, ''क्या प्रश्न है!'' मैंने कहा, 'महाराज जी! यह संसार सत्य है या असत्य?'

श्री महाराज जी प्रश्न सुनकर कुछ मुस्कुराए, फिर फ़रमाया, ''आप भी अच्छी जिज्ञासा और सूझबूझ वाले जान पड़ते हैं। इसलिए पहले आप बताएँ कि आपके विचार में संसार सत्य है या असत्य?''

मैंने यह प्रश्न परीक्षा के लिए किया था। मैं यह जानना चाहता था कि महात्मा जी की विद्या और अनुभवता कितनी है। मैंने उत्तर दिया, 'मेरे विचार में यह दुनिया सत्य है, क्योंकि मेरे सामने आप और आपकी संगत बैठी हुई है।

इधर हम दोनों बैठे हुए हैं। वह सामने गाय, भैंस जा रही हैं। वह किसान हल और बैल जोत रहा है। यह वृक्षों पर पक्षी बैठे नज़र आ रहे हैं आदि।'

मेरी बात सुनकर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''आपके ख़्याल में संसार सत्य है, तो यह सत्य ही है - इसमें कोई आश्चर्य नहीं।'' मैंने कहा, 'महाराज जी! आप बताने का कष्ट करें कि यह सत्य है या असत्य। हम गृहस्थी लोग अज्ञानी होते हैं, महात्मा लोग अनुभवी और सिद्ध होते हैं। उनका कथन ही सत्य माना जाता है। असलियत को जानने के लिए ही तो आपके चरणों में पधारे हैं।' इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया,''हमारे विचार में यह संसार असत्य है।'' मैंने कहा, 'कृपया इसको साबित करके दिखाएँ ताकि निश्चय में दृढ़ता आए।'

फिर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''सिर्फ पाँच मिनट के लिए अपनी आँखें और मुँह बन्द कर लें। कान उँगलियों से बँद कर लें। पूरी कोशिश से मन को स्थिर रखें, किसी प्रकार का कोई संकल्प-विकल्प न उठाएँ। समभाव व समानता की मूर्ति बन जाएं।'' मैंने ऐसा ही किया। पाँच मिनट पश्चात् श्री महाराज जी ने आँखें और कान वग़ैरा खोल देने के लिए कहा। फिर पूछा, ''अब आप यह बताएँ कि थोड़े समय के लिए आपको संसार जान पड़ा या नहीं?'' मैंने उत्तर दिया, 'महाराज जी! इस थोड़े समय में संसार का नाम तक नहीं पाया।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''जो चीज़ सत्य होती है उसका अस्तित्व कभी ख़त्म नहीं होता। चूँकि तुमने खुद माना है कि इस थोड़े समय में संसार नहीं पाया गया, इसलिए संसार असत्य है। सत् वस्तु केवल आत्मा है, जिसका अस्तित्व कभी ख़त्म नहीं होता। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय चारों अवस्थाओं में वह मौजूद है। इसलिए वह ही केवल सत्य है और जगत मिथ्या है। मशहूर सूफी सन्त दादू दयाल जी ने कहा है:-

दादू दूसरा कोई नहीं, दूसरा मन की दौड़।
दौड़ मिटी संशे गया, वस्त ठौर की ठौर।।

अर्थात सिवाय परमात्मा के कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं। मन की दौड़-धूप और संकल्प-विकल्प ही संसार का नज़ारा दिखा रहे हैं। जब मन ठहर जाता है तब चित्तवृति का निरोध हो जाता है। समता भाव की प्राप्ति होने पर सब नज़ारे, जो मायावी धोखे थे, ख़त्म होकर वही सत् वस्तु आत्मा ज्यों की त्यों भासती है और अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति होती है।

सब जग रूप ब्रह्म का, भेद भरम नहीं कोए।
'मंगत' सत तत्त खोजिए, फेर जन्म नहीं होए।।

आत्मा शुद्ध, पवित्र, एकरस, अपने आप में स्थित है। यह संसार भ्रम रूप जान पड़ता है। सूर्य गंगाजल में चमकने के कारण ज़्यादा पवित्र नहीं हो जाता और शराब में चमकने से अपवित्र नहीं हो जाता। यही हाल आत्मा का जानो। सूर्य की इतनी उम्र हो चुकी परन्तु उसने अँधेरा कभी नहीं देखा। दिन-रात, अँधेरा-उजाला यह सब ज़मीन के लिए हैं। सूर्य में न कभी रात हुई है और न ही कभी दिन चढ़ा है। इसी तरह आत्मदेव के लिए अज्ञान कहाँ। थियेटर का तमाशा देखते समय यह मुमकिन है कि लोग इस नाटक से धोखा खा जाएं और नाटक करने वालों के साथ-साथ रोने और हँसने लग जाएं। विशेषकर उस समय जब इस बात को भूल जाएं कि जो कुछ सामने हो रहा है वह केवल खेल या तमाशा है, इससे ज़्यादा और कुछ नहीं। इसी तरह संसार की हक़ीकत का नाटक देखते समय धोखा खाया जाना सम्भव है। इसलिए इस सत्य को, जिसके सहारे तुम खड़े हो, दिल में पक्के तौर से बिठाए रखो और अपनी आत्मा को सदैव अपने ध्यान में रखो। इस तरह अपने आप को धोखे में न पड़ने दो। मानुष जन्म दुर्लभ है, अभ्यास द्वारा अपने सत्स्वरूप आत्मा में स्थित होने पर यह राज़ खुल जाएगा कि जगत मिथ्या और कल्पित है तथा आत्मा सत् वस्तु है। जगत को देखने आए हो, करतार को देख कर जाओ। कथनी और करनी से आगे जाकर जब रहनी में प्रवेश करोगे तब अन्तर स्वरूप आत्मा को पहचान पाओगे।''

झूठ पसारा जगत का, सरजनहार सच एक।
बाजी झूठ बाजीगर साचा, एह बिध लखया लेख।।

श्री महाराज जी का इतना उपदेश सुनकर हम दोनों गद्‌गद् हो गए। उनके सम्बन्ध में जो कुछ सुन रखा था वह सत्य निकला। श्री महाराज जी को प्रणाम करके हम दोनों कहुटा वापस आ गए। सत्‌पुरुषों की महिमा अपार होती है, इसका वर्णन कौन कर सकता है।

17

श्री ओंकार नाथ, आगरा

(1) ग्रामवासियों पर कृपा

मैं महात्मा मंगतराम जी की बहन श्रीमती करतार देवी का पुत्र हूँ। श्री महाराज जी के बारे में जो जानकारी मुझको अपनी माताजी, उनकी बहन देवकी जी तथा उनके शिष्यों से मिली उसको सेवा में भेंट कर रहा हूँ।

सबसे पहले मैं श्री महाराज जी के जन्म स्थान गंगोठियाँ के बारे में बताना आवश्यक समझता हूँ। यह शुभ स्थान हिमालय की तराई में कलकल करके बहती हुई जेहलम नदी की घाटियों के साथ मिलता हुआ पोठोहार का रमणीक इलाका है। गंगोठियाँ ब्राह्मणाँ एक साधारण सा गाँव है जिसकी तहसील कहूटा, ज़िला रावलपिंडी है। प्रकृति के सुन्दर दृश्यों से सजी हुई यह धरती अपनी गोद में इस महापुरुष जैसे हीरों को छुपाए बैठी थी। इस क्षेत्र में अन्य उच्च महात्माओं ने भी अपने स्थान बनाए हुए थे। गंगोठियाँ के उत्तर में पंजाड़ नामक पहाड़ों में पाँड़वों की गुफ़ा और सरोवर है, जो इस बात के साक्षी हैं। गुरु नानक देव जी के कुल में से महायोगी बाबा खेम सिंह बेदी ने अपना स्थान पास ही कल्लर नाम के ग्राम में बनाया था। तपस्वी संत टहल सिंह जी ने इसके साथ दुखभंजनी गुफ़ा में चौदह वर्ष तप किया था। इसके साथ ही मटोर नामक गाँव के बाहर संत बाज सिंह की कुटिया थी। पूर्व में नारा ग्राम में एक बाल ब्रह्मचारी सन्यासी बाबा नांगा जी की समाधि और इससे छः मील दूर कनूहा ग्राम के बाहर वन में तपस्वी अतर सिंह की शिला है, जिस पर बैठकर उन्होंने बारह वर्ष घोर तप किया था। यह सब पवित्र स्थान इस क्षेत्र की विशेषता के ज्वलंत उदाहरण हैं। ऐसी पावन भूमि में श्री महाराज जी ने जन्म लिया।

जब आपकी आयु पाँच वर्ष की थी आपकी विद्या डेरा खालसा स्कूल

में आरम्भ हुई। इस पढ़ाई में इनका मन नहीं लगता था। यह तो उस पढ़ाई के इच्छुक थे जो इनको परमात्मा के निकट ले जा सके। पाठशाला से घर लौटते समय जब जंगल से गुज़रना पड़ता था वहाँ दूसरे सहपाठियों से अलग होकर अपनी पुस्तकें एक तरफ़ रखकर आत्म-चिंतन में लीन हो जाते थे। पुत्र की ऐसी दशा देखकर माता-पिता का मन शंकित होने लगा। पंडित और मौलवियों को बुलाकर उनसे झाड़-फूँक करवाई ताकि इनका मन पढ़ाई में लग सके। परन्तु यह अपने कार्य में अटल रहे। आम संसारी लोग जन्म सिद्ध बालक की आन्तरिक स्थिति को कैसे जान सकते थे। अभी आपकी अवस्था छोटी ही थी कि आपके पिता पं0 गौरी शंकर जी का स्वर्गवास हो गया और आपके पालन-पोषण का सारा भार आपकी पूज्य माता श्रीमती गणेशी देवी पर ही पड़ गया। परन्तु उस महान देवी ने साहस नहीं खोया। आगे की पढ़ाई के लिए आपको कल्लर ग्राम में आपकी बड़ी बहन श्रीमती करतार देवी के पास भेज दिया गया। कल्लर में आप विद्यार्थी जीवन में अपने साथियों और विशेषकर अपने अध्यापक श्री किशन सिंह जी की प्रशंसा के पात्र बने रहे। श्री किशन सिंह का कथन है कि आप कक्षा में बैठे-बैठे अन्तर्गत ध्यान में लीन हो जाते थे। फिर भी मास्टर जी इनकी वृत्ति भंग नहीं करते थे। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि वह अपना पाठ भली प्रकार याद कर लेते थे।

भक्ति का रंग दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया और आपकी ऐसी अवस्था हो गई कि सारी-सारी रात आत्मचिन्तन में लीन रहने लगे। परिवार के अन्य सदस्यों को पता न चले इसलिए दिखावे के रूप में आप सो जाते थे। परन्तु उनकी बहन श्रीमती करतार देवी का कथन है कि जब भी रात में आँख खुली तो उनको बैठे हुए प्रभु भक्ति में लीन पाया। परिवार वालों को उनके स्वास्थ्य की चिन्ता होने लगी। पूछने पर केवल इतना उत्तर देते, ''ऐसे ही नींद नहीं आती। स्वास्थ्य मेरा ठीक है। आप कोई चिन्ता न करें।'' कल्लर से आठवीं कक्षा पास करके आप गंगोठियाँ वापस आ गए।

सारी उम्र आपने सादा वस्त्र पहने जो कि विशेषकर खादी के ही होते

थे। उनका कहना था कि अधिक भड़कीले वस्त्र पहनने से शारीरिक अहंकार बढ़ जाता है जिसके कारण व्यक्ति ग़रीबों से घृणा करने लगता है। वह समाज में समानता नहीं रख सकता। सादगी पर तो उनका उपदेश ही होता था। वस्त्रों की सादगी उनके अन्दर बचपन से ही थी। एक बार जब आप छोटे थे, आपकी बहन देवकी जी का विवाह हुआ। विवाह के कुछ दिन पश्चात् आप अपनी बहन के साथ गुज्जरखाँ में उनकी ससुराल जाने के लिए तैयार हो गए। परन्तु उनकी बहन ने कहा कि यदि आप अच्छे कपड़े पहन कर चलो तभी मैं साथ ले चलूँगी वरना नहीं, क्योंकि मेरी ससुराल वाले आपके वस्त्रों को देखकर पता नहीं क्या अनुमान लगाएंगे। परन्तु श्री महाराज जी अपने प्रण पर दृढ़ रहे। यह दृढ़ता ही महापुरुषों का विशेष गुण है। आपने अपनी बहन जी से कहा, ''मैं तो यही वस्त्र धारण करूँगा।'' आप फिर उन्हीं वस्त्रों में उनके साथ गए।

आपका भोजन भी बहुत साधारण और सूक्ष्म था। चटपटे भोजन में आपकी कोई रुचि नहीं थी। वह प्रायः कहा करते थे कि आहार का साधारण और शुद्ध होना अति आवश्यक है। शुद्ध आहार के बिना शरीर और मन निर्मल नहीं हो सकता। प्रारम्भ में ही आप सूक्ष्म आहार ग्रहण करने लगे थे। वह कहा करते थे कि भर पेट खाने से आलस्य आ जाता है और भजन में बाधा पड़ती है। जब आपकी माताजी भोजन परोस कर लातीं तो आप केवल आधा भाग ग्रहण करते और आधा भाग पहले ही अलग कर देते थे। उनकी माता जी कहतीं, 'मंगत! इतना थोड़ा भोजन क्यों ग्रहण करते हो?' आप उत्तर देते, ''माता जी! जितनी आवश्यकता है उतना ले लेते हैं। देश में कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जिनको दिन में एक बार भी भोजन प्राप्त नहीं होता, तब मेरा क्या अधिकार है कि मैं भर पेट भोजन करूँ।''

कितना दर्द था श्री महाराज जी के हृदय में मनुष्य मात्र के लिए। ऐसे त्यागी महापुरुषों का जन्म ही देश के लिए भाग्यशाली हुआ करता है। वास्तव में आपका यह अभ्यास इस सीमा तक पहुँच गया कि आपने भोजन का बिल्कुल ही त्याग कर दिया और केवल थोड़े दूध पर निर्वाह करना प्रारम्भ कर

दिया, जिसने बाद में चाय का रूप ले लिया।

ईश्वर भक्ति के साथ-साथ आप मातृ भक्त भी थे, माता जी की हर प्रकार की सेवा की। परन्तु माता जी जब भी उनके विवाह की बात करती थीं उनको वह टाल देते थे। श्री महाराज जी की आयु जब लगभग 25 वर्ष की थी तभी माता जी का देहान्त हो गया। इसके पश्चात् आप दिन-रात प्रभु भक्ति में लीन रहने लगे। नींद का भी भोजन की तरह त्याग हो गया। सारी रात प्रभु सिमरन में ही व्यतीत होती। इस अभ्यास को आपने जीवन पर्यन्त निभाया। आपके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सब भाव की जनता हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आदि आपके विचारों से प्रभावित हुए बिना न रह सकी।

उनके गाँव की एक आश्चर्यजनक घटना है। उनके ग्रामवासियों को दूर-दूर से पानी लाना पड़ता था, जिसके कारण वे काफी परेशान थे। आपका गाँव काफी ऊँचाई पर था इस कारण कुँए की भी व्यवस्था वहाँ नहीं थी। गाँव से दूर केवल एक कुँआ था जहाँ से पानी लाया जाता था। आपने ग्रामवासियों को कुँआ खुदवाने की प्रेरणा दी। ग्रामवासियों ने कहा, 'महाराज जी! यह स्थान बहुत ऊँचा है, जल निकलने की कोई सम्भावना नहीं है।' आपने उनसे कहा, ''आप लोग साहस से कार्य शुरू करो, आशा है ईश्वर कृपा से पानी निकल जाएगा।''

श्री महाराज जी की प्रेरणा अनुसार ग्रामवासियों ने कार्य प्रारम्भ कर दिया थोड़े दिनों में कुँए की खुदाई पूर्ण हो गई, परन्तु जल नहीं निकला। ग्रामवासी बहुत निराश थे, इतना परिश्रम करने के बाद भी काम नहीं बना। परन्तु श्री महाराज जी ने गाँव वालों को धीरज दिलाया कि चिन्ता की कोई बात नहीं, भगवान सब ठीक करेंगे। एक सप्ताह के बाद सचमुच ऐसी कृपा हुई कि कुँए में पानी निकल आया। इससे ग्रामवासियों के चिरकालीन कष्ट का अन्त हुआ। प्रभु भक्ति में रंगे जीवन को धारण किए हुए आपके द्वारा बहुत से ऐसे कार्य हुए जिससे सर्व साधारण जनता को लाभ प्राप्त होता रहेगा।

जो कार्य असम्भव हो उसको भी सम्भव कर देने की क्षमता सत्पुरुषों में होती है। सत्पुरुषों के जीवन की अनेक घटनाएँ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं।

18

श्री रतनचन्द्र महाजन, दौराँगला

(1) यज्ञ का उद्देश्य

यह बात उस समय की है जब श्री महाराज जी 1944 में शुभ स्थान गंगोठियाँ में वार्षिक यज्ञ के समय पधारे थे। श्री महाराज जी का एक पत्र दौराँगला निवासी प्रेमियों के पास यज्ञ में उपस्थित होने के लिए आया। उस वर्ष दौराँगला से कोई भी प्रेमी यज्ञ में न जा सका। प्रेमियों ने सौ रुपयों का मनीआर्डर श्री महाराज जी के नाम गंगोठियाँ यज्ञ के लिए भेज दिया। श्री महाराज जी ने मनीआर्डर वापस भेज दिया और पत्र द्वारा प्रेमियों को बड़े प्रेम की झाड़ दी। उस पत्र में निम्न शब्द लिखे हुए थे।

''प्रेमियों! हमें आपके दर्शन की आवश्यकता थी, रुपयों की इन्हें आवश्यकता नहीं थी। रुपयों के लिए तो लोग हमसे याचना करते हैं। आप प्रेमियों की यज्ञ में मौजूदगी ज़रूरी थी ताकि सब प्रेमी आपस में मिलकर एक दूसरे से परिचित हों, आपसी प्रेम बढ़ाकर एक दूसरे के हित-चिंतक हों। आप लोग अभी भी अनजान बने हुए हो, इसी कारण यह लापरवाही बना रखी है।''

उपरोक्त पत्र प्राप्त होने पर सब दौराँगला निवासी प्रेमियों की एक सभा हुई जिसमें आगे से गंगोठियाँ यज्ञ में शामिल होने का निर्णय लिया गया। इस सम्बन्ध में श्री महाराज जी को पत्र द्वारा सूचित कर दिया गया और अपनी गलती के लिए श्री महाराज जी से क्षमा माँगी।

लौटती डाक से श्री महाराज जी का उत्तर हमको प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था - ''प्रेमियों! जब चल पड़े हो तो अवश्य ही पहुँच जाओगे।'' श्री महाराज जी की महानता का विचार करें कि उन्होंने किस प्रकार इन थोड़े से शब्दों में अध्यात्म का राज़ बयान कर दिया।

(2) रस्म रिवाज़ में सादगी

सन् 1942 की बात है, मेरे पिताजी का देहान्त हो चुका था। श्री महाराज जी का दूसरी बार दौराँगला में आगमन हुआ।

एक दिन दास श्री महाराज जी के चरणों में बैठा था। दास ने श्री महाराज जी से प्रार्थना की, 'महाराज जी! हमारी बिरादरी में कई ऐसे रस्म-रिवाज़ हैं जिनको पूरा करने में ग़रीब व्यक्ति बड़ा दु:खी और परेशान होता है। उदाहरण के तौर पर मृत्यु के समय को ही लें। कृपा करके आप ऐसा विधान बना देवें ताकि भविष्य में इनसे छुटकारा मिल जाए और इन रस्म-रिवाज़ों को आसानी से निभा सकें।'

उस समय श्री महाराज जी ने उत्तर दिया - ''प्रेमियों! इस बारे में काफ़ी लिखा जा चुका है। समझने के लिए बुद्धि चाहिए। ख़ास विधान की कोई ज़रूरत नहीं। आगे ही इन झमेलों ने बहुत तंग कर रखा है। बस एक बात ध्यान रखो। समय और लोकाचार का ध्यान रखते हुए सादगी के असूलों को अपनाते रहो।''

रात्रि के सत्संग के पश्चात् संगत तो चली जाती थी, परन्तु कुछ प्रेमी रह जाते थे। उस समय बड़ा एकान्त होता था। एक दिन दास ने श्री महाराज जी प्रार्थना की, 'महाराज जी! ऐसी कृपा करें ताकि दौराँगला का नाम इतिहास में अमर हो जाए।' परम दयालु श्री श्री महाराज जी ने अमर वाणी उच्चारण फ़रमाई। श्री समता प्रकाश ग्रन्थ में प्रकाशित '**आलख वाणी**' दौराँगला में ही लिखवाई थी, जिसके तीन सौ पद हैं।

अगले दिन फिर रात्रि के सत्संग के पश्चात् एक प्रेमी ने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! मेरा मन अभ्यास में नहीं लगता।' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! सब राज़ पुस्तक में लिख दिए हैं, अब बाकी कुछ नहीं रहा। इसलिए तुम आइन्दा इन उपदेशों और अनुभवी अमर वाणी से अपना भविष्य संवारते रहना। हमें नित अंग-संग देखना। अभ्यास नित्य करना। अगर मन नहीं लगता तो कोई बात नहीं। निरन्तर लगे रहो। मन अपने आप एक-न-एक

दिन इसका आदी हो जावेगा। दृढ़ता व लगन से जल्दी कामयाबी मिलती है। अभ्यास में कोताही (लापरवाही) करनी अपनी मूल बरबादी करना है।''

एक दिन की बात है, श्री महाराज जी कुटिया के बाहर खेत में धूप में बैठे हुए थे। एक प्रेमी ने दंडवत प्रणाम किया और चुपचाप बैठ गया। श्री महाराज जी ने उस प्रेमी से कहा, ''प्रेमी! कोई सवाल करो।'' प्रेमी ने पूछा, 'हिन्दू क़ौम के पतन का क्या कारण है?' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी जहाँ और बहुत से कारण हैं वहाँ सबसे बड़ी कमी यह है कि इन्होंने 'मिल कर बैठना और बाँट कर खाना' इस असूल को छोड़ दिया है।''

श्री महाराज जी कई दिन वहाँ ठहरे और बहुत सी बातें हुईं, परन्तु 50 वर्ष से ऊपर का समय बीत जाने के कारण वे याद नहीं रही। उनकी महिमा का कोई पारावार नहीं।

(3) गुरु का जीवन शिष्यों के लिए

सत्गुरुदेव मार्च 1942 में पहली बार दौराँगला पधारे। श्री महाराज जी वहाँ एक मन्दिर में ठहरे। इस मन्दिर में सुबह चार बजे ही लोगों ने घड़ियाल खड़काना शुरू कर दिया। तम्बाकू पीने वाले चिलम पीने लगे, जिनमें कुछ बुज़ुर्ग लोग भी थे। आप यह सब दृश्य देखकर बहुत हैरान हुए। आपने लोगों को बुलाने के लिए भेजा, परन्तु वे नहीं आए। आखिर में एक बुज़ुर्ग आपके पास आ गए। आपने उनसे पूछा, ''प्रेमी! यह मन्दिर सत्संग की जगह है या तम्बाकू, चरस पीने का अड्डा है?''

बुज़ुर्ग प्रेमी ने कहा, 'महाराज जी! साधु-संत आते हैं, उनकी धूनी बनी हुई है। शहर के लोग भी यहाँ आकर दम लगा जाते हैं। बाकी आप कौन महात्मा हैं?' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''आप जैसे बीमारों का इलाज करने वाले डाक्टर आए हैं। आप सब बीमार हैं। बाकी कोई जगह फ़कीरों के ठहरने के वास्ते बताओ जहाँ ठहरकर आपको देख सकें।''

श्री महाराज जी के वचन सुनकर उस बुज़ुर्ग प्रेमी ने एक-दो जगह बतलाईं, फिर दिखाने के लिए साथ ले गया। कस्बे के बाहर खेत में एक एकान्त कमरा आपने पसन्द किया, जहाँ आपके ठहरने का प्रबन्ध कर दिया गया। शाम होने से पहले ही आपने उस प्रेमी द्वारा शहर में सूचना भिजवा दी कि शाम को चार बजे सत्संग होगा, सब प्रेमी दर्शन देवें। काफी संख्या में प्रेमियों ने एकत्रित होकर सत्संग का लाभ उठाया।

उसी दिन दास भी वहाँ आ गया था। उपरोक्त वृतान्त भगत जी ने मुझे सुनाया था। वहाँ पर जो वार्तालाप हुआ वह इस प्रकार है- आत्मा-परमात्मा के बारे में काफी गम्भीर विचार-विमर्श हुआ। दास को इस विषय में कुछ भी पता नहीं था। परन्तु दास ने बुद्धि की चतुराई का परिचय दिया। उस समय श्री महाराज जी ने बड़ी मार्मिक बात फ़रमाई, ''यह ईश्वर वाले मसले ज़बानी बातचीत से हल नहीं हो सकते। समय आने पर जब साधना के द्वारा अन्तर्गत स्थिति प्राप्त होती है तब सब गुथ्थियाँ स्वयं ही सुलझ जाती हैं। अलफ़-बे तो पढ़े नहीं, परन्तु प्रश्न एम.ए. के कर रहे हो। आत्मा परमात्मा का किस्सा छोड़ो, पहले सही आदमी बनो, फिर सब कुछ ठीक हो जाएग। यह कथनी की बात नहीं, करनी का मुकाम है।''

सत्संग में विचार तो बहुत हुए परन्तु काफी समय बीत जाने के कारण याद नहीं रहे। पर एक दिन के विचार अभी भी मेरे मानस पटल पर अंकित हैं। श्री महाराज जी ने कहा था, ''अपनी बहुत बडी भूल को समय आने पर समझोगे। हिन्दू क़ौम की हालत बहुत ख़राब है, जीते-जी गुरुओं और सत्पुरुषों को नहीं मानती। उनके शरीर छोड़ने के पश्चात् उनकी समाधि और मूर्तियाँ बनाकर पूजते हैं। तुम अभी छोटे हो, तुम्हारे लिए हृदय में बड़ा प्रेम है। अगर आप लोगों का कल्याण हमारे जीवन की आहुति से हो सके तो यह समझेंगे कि इनका जीवन सफल हो गया है। आप लोगों के कल्याण के लिए आपकी सेवा में इनकी ज़िन्दगी का एक-एक क्षण और खून की एक-एक बूँद भेंट की जा रही है।''

श्री महाराज जी के यह शब्द दास को तीर की तरह लगे और आँसुओं

की झड़ी लग गई। रोते-रोते हिचकी बंध गई। अन्तर्यामी प्रभु ने धीरज दिया और फ़रमाया, ''प्यारे बच्चों! यह तो तुम्हारा कल्याण करने के लिए जगह-जगह जाकर तुमको ढूँढ़ते फिरते हैं। तुमको आसानी से गुरु मिल गए हैं, अगर तुमको ढूँढ़ना पड़ता तब पता लगता। हमारी मेहर सदा आप पर है और आपकी बेहतरी चाहते हैं।''

जब इन शब्दों की याद आती है और अपनी भूल का ध्यान आता है तो दिल में एक कसक सी पैदा होकर रह जाती है। उनकी याद हर समय तड़पाती रहती है। धन्य हैं महान सत्गुरु, जो दया और क्षमा के भण्डार हैं।

19

श्री भीम सैन ओबराय, बरेली

(1) अभ्यास में समय की पाबंदी

श्री महाराज जी के साक्षात् दर्शन करने का तथा उनके नज़दीक बैठकर वचनों को श्रवण करने का सौभाग्य दास को प्राप्त हुआ। उनके जीवन से दास ने जो कुछ अनुभव किया वह जनता के हित के लिए पेश कर रहा हूँ। उनका आदर्शमय जीवन हम संसारियों के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करता है। उन्होंने मुझको अपनी शरण में लेकर विशेष कृपा भी मुझ पर की, जिसके सम्बन्ध में मैं यहाँ वर्णन नहीं कर रहा हूँ।

देहरादून में राजपुर के पास केलाघाट में नदी के किनारे श्री महाराज जी विराजमान थे। दास भी उनके दर्शन के लिए वहाँ गया। मैंने देखा कि रात्रि के लगभग 11 बजे थोड़ी सी देर आराम करके 12 बजे के आस-पास जंगल में जाकर समाधिस्थ हो जाते थे। दिनभर वह उपस्थित होने वाले प्रेमियों की शंका का समाधान करते रहते थे। दास के मन में एक विचार उठा, तभी श्री महाराज जी से यह प्रश्न किया, 'महाराज जी! आपका टैन्ट तो बड़े ही एकान्त स्थान में लगा है। रात्रि को इसी टैन्ट में भजन कर लिया करें। बाहर जाने की क्या आवश्यकता है?' इस पर श्री महाराज जी फ़रमाया, ''प्रेमियों! इनके लिए तो टैन्ट के अन्दर और बाहर एक जैसा ही है, लेकिन प्रेमियों के लिए इनको ऐसा करना पड़ता है। तमाम जीवन भर इनका ऐसा ही प्रोग्राम रहा है।''

धन्य हैं ऐसे सत्पुरुष जिनका आदर्श जीवन संसार के हित के लिए होता है और जिनके वास्ते वे अपनी सुख सुविधाओं को भी त्याग देते हैं।

गुरुदेव के जीवन में समय की पाबन्दी भी बड़ी ज़बरदस्त देखी। वह प्रायः इसका वर्णन अपने प्रवचनों में किया करते थे। उनका कहना था - ''सांसारिक कार्यों तथा परमार्थिक कार्यों में समय की पाबन्दी परम आवश्यक

है। जो प्राणी समय का पाबन्द नहीं, वह जीवन में उन्नति नहीं कर सकता।''

दास के जीवन में समय की पाबन्दी की कमी थी। इसी संदर्भ में दास ने श्री महाराज जी से प्रश्न किया, 'महाराज जी! समय की पाबन्दी के बारे में कभी-कभी उलझन पैदा हो जाती है। मैं जब अभ्यास में बैठता हूँ तो रोगी आ जाता है। दास को सूचना मिलती है कि रोगी अधिक तकलीफ़ में हैं, इसको देख लीजिए। इस विषय में आपकी क्या राय है? अभ्यास को छोड़कर रोगी को देखना चाहिए, यह भी तो सेवा कार्य है।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! अभ्यास छोड़कर समय से पहले कभी नहीं उठना। तुझे भी तो बड़ा भारी रोग लगा हुआ है और उससे छुटकारे के लिए तू यत्न कर रहा है। जब तूने प्रभु को कर्त्ता माना है तो तुझे चिन्ता किस बात की है। सब का दु:ख दूर करने वाला मालिक है। लेकिन अगर उस मरीज़ ने कुछ देर दु:ख उठाना है तो वह दु:ख समय पर ही जाएगा, चाहे तू कितनी भी कोशिश क्यों न करे। प्रेमी! याद रख, अगर तेरे पर भारी विपत्ति भी आ जाए तो भी तूने साधन छोड़कर वक्त से पहले नहीं उठना है।''

(2) सादगी का आदर्श

जब श्री महाराज जी पहली फरवरी 1953 को बरेली पधारे, उनके ठहरने का प्रबन्ध सिटी इम्प्रूवमेंट पार्क के अन्दर एक हाल में किया गया। यह पार्क समता योग आश्रम के पास ही है। वहाँ दास ने श्री महाराज जी की दिनचर्या देखी। सारी रात समाधि में बैठने के पश्चात प्रात: साढ़े छ: बजे के लगभग वह अपने स्थान पर आ जाते थे। फिर जल्दी से स्नान करके 5-7 मिनट में फारिग होकर अपने आसन पर विराजमान हो जाते थे। समय की कदर करते थे। कभी भी उनको तेल या साबुन का प्रयोग करते हुए नहीं देखा। प्रात: लगभग नौ बजे भगत बनारसी दास जी दूध लाते थे। श्री महाराज जी उसको पीने में अधिक समय नहीं लगाते थे।

गर्मियों में हम लोगों को कितनी प्यास लगती है परन्तु श्री महाराज जी

को कभी पानी पीते हुए नहीं देखा। दास ने एक दिन उनसे पूछा, 'महाराज जी! आप कभी पानी नहीं पीते।' इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! दूध में जितना पानी होता है उसके अलावा पानी पीने की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती।'' यहाँ यह बताना आवश्यक है कि श्री महाराज जी 24 घण्टे में एक बार केवल आधा किलो ही दूध ग्रहण करते थे।

श्री महाराज जी का लिबास बहुत सादा था। खद्दर की पगड़ी, कुर्ता, धोती और एक खद्दर की चादर गर्मियों में तथा सर्दियों में एक काश्मीरी लोई रखते थे। जब तक वह वस्त्र बिल्कुल फट न जाएं, किसी भी प्रेमी की सेवा स्वीकार नहीं की जाती थी। जब तक टाँकों से काम चल जाता तब तक उन्हीं वस्त्रों का उपयोग किया करते थे। पन्द्रह दिन से पहले वस्त्र नहीं बदलते थे। साल भर के लिए दो जोड़े काफी होते थे। जूता सादा पहनते थे, जो कि पंजाब में बुज़ुर्ग लोग पहनते हैं। दास इस सम्बन्ध में एक घटना वर्णन करता है।

श्री महाराज जी के जूते का तलवा टूट गया था। भगत बनारसी दास जी ने दास से कहा कि श्री महाराज जी के जूते का तलवा मोची से ठीक करवा दीजिए। तलवा बहुत ज़्यादा घिस चुका था इसलिए दास ने भगत जी से प्रार्थना की कि अगर आप आज्ञा करें तो श्री महाराज जी के लिए नया जूता ले आऊँ। भगत जी ने फ़रमाया कि अभी तो इसी को ठीक करवाने की आज्ञा हुई है। इसलिए इसको ठीक करवा दीजिए और साथ ही नया जूता भी ले आना। श्री महाराज जी से प्रार्थना करना, अगर स्वीकार कर लें तो बड़ी सुन्दर बात है। बाज़ार से टूटी जूती ठीक करवा दी और नया जूता लेकर दास भगत जी के पास पहुँचा। जूता लेने के लिए सिफ़ारिश भक्त जी से करवाई। फिर सायँकाल दास ने श्री महाराज जी से अर्ज़ की, 'महाराज जी! कृपया दास की तुच्छ भेंट स्वीकार कर लें, आपका पुराना जूता अब ज़्यादा देर नहीं चलेगा।' इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! यह अभी छः महीने और चलेगा।'' दास ने पुनः प्रार्थना की, 'महाराज जी! जब यह टूट जाए तब इस नए जूते को पहन लीजिएगा।' इस पर गुरुदेव ने तुरन्त फ़रमाया, ''प्रेमी! जहाँ पर मौजूद होंगे,

क्या वहाँ जूता नहीं मिलेगा?'' श्री महाराज जी ने जूता स्वीकार नहीं किया।

श्री महाराज जी का आदर्श जीवन हम संसारियों को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। जो कुछ वह कहते थे, वह बातें उनके जीवन पर घटित होती थीं। भूख, प्यास और नींद पर उनकी पूर्ण विजय थी। ऐसे महान सत्पुरुष और उनकी विशेष कृपा का पात्र होना, यह बड़े सौभाग्य की बात है।

20

हकीम राजाराम दत्त, दिल्ली

(1) प्रभु परायणता

सत्गुरुदेव देहली के बाग़ कड़े खाँ में पधारे हुए थे। दास श्री महाराज जी के पास बैठा हुआ उनकी जीवन शैली का अवलोकन कर रहा था। मैं सोच रहा था कि कितना कठिन तप, त्याग और वैराग्य है, इन्द्रियों पर कितना संयम है, शारीरिक व्यवस्था, खाना-पीना, सोना-जागना, सर्दी-गर्मी वग़ैरा पर कितना शासन है। शास्त्रों में जो तपस्वी जीवन का ऊँचा आदर्श पेश किया गया है वह आज आँखों के सामने है। जिन गाथाओं को केवल कानों से श्रवण किया था, आज वह प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। आश्चर्य की बात यह है, क्या जीवन में मनुष्य इस दर्ज़े का कमाल प्राप्त कर सकता है? लेकिन किस तरह श्री महाराज जी ने कई जन्मों के तप और साधना के पश्चात् सत्पुरुषों के इस सर्वोच्च आदर्श को अमली जीवन द्वारा पेश किया है। तभी तो श्री अरविंद घोष ने कहा है कि यह युग की महान घटना होती है जब एक जीव मुक्ति रूपी परम पद को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि वह प्रकृति के सब नियमों का अतिक्रमण करके आगे निकल जाता है।

यह कोई सुनी सुनाई कहानी न थी और न ही कोई विचार था, बल्कि गुरुदेव प्रत्यक्ष मिसाल के रूप में अपने निज स्वरूप में विराजमान थे। लोग आँखों से देख रहे थे, मन से महसूस कर रहे थे। मन में संकल्प उठा, क्या कभी मुझे भी ऐसी मस्ती, ऐसी शान्ति और समता स्थिति प्राप्त होगी। इतने में अन्तर्यामी प्रभु रूप श्री महाराज जी की कृपा दृष्टि दास पर पड़ी और फ़रमाया, ''लाल जी! कोई प्रश्न हो तो करो?'' ऐसा शुभ अवसर प्राप्त होने पर हाथ जोड़कर श्री गुरुदेव की चरणों में प्रार्थना की, 'महाराज जी! छोटा मुँह और बड़ी बात वाला मामला है, कहने में शर्म महसूस होती है। क्षमा करें तो कहूँ।'

श्री महाराज जी फ़रमाने लगे, ''हाँ, कहो लाल जी। संकोच करने की कोई बात नहीं यहाँ जो कुछ भी है सब आप ही लोगों के लिए है।'' इस पर मैंने श्री महाराज जी से कहा, 'एक बार राजा जनक ने भारतवर्ष के विद्वानों और ऋषियों को निमन्त्रण देकर अपने दरबार में बुला कर उनसे प्रश्न किया कि क्या आजकल संसार में कोई ऐसा तत्त्ववेता या ज्ञानी पुरुष है जो मुझको इतने समय में ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करवा सके, जितना समय रकाब में पैर रखकर घोड़े की पीठ पर बैठने में लगता है। सब ऋषि-मुनि हैरान थे कि राजा यह कैसा मज़ाक है। किसी का उत्तर देने का साहस न हुआ। दरबार में चारों ओर सन्नाटा छा गया। इतने में एक ऋषि बालक, जिसका शरीर आठ जगह से टेढ़ा था, सामने उपस्थित हुआ, जिसका नाम अष्टावक्र था। उसने राजा जनक की इच्छा को पूर्ण कर दिया। क्या यह गाथा सच है? ऐसा महान ब्रह्मज्ञान क्या इतना शीघ्र और सुलभता से प्राप्त हो सकता है?' यह सुनकर श्री महाराज जी मुस्कुरा दिए, फिर फरमाया, ''यह सत्य ही है। घोड़े की पीठ पर जाने में तो काफ़ी समय लग जाता है, अगर गुरु कृपा हो जाए और शिष्य सुपात्र हो तो एक पलक में काम बन जाता है।''

मैंने श्री चरणों में हाथ जोड़कर निवेदन किया, 'आप अन्तर्यामी हैं। हम लोग भली भाँति अपनी कमज़ोरियों को जानते हैं। अच्छी तरह यह समझते भी हैं कि तप-त्याग, भक्ति, योग तथा ज्ञान के साधनों के लिए न तो हम योग्य ही हैं और न ही इतना साहस है। आयु का अधिक भाग अज्ञान, भोग-विलास और संसारी धन्धों में ही समाप्त हो गया। अब तो आयु के अन्तिम दिनों में शरीर निर्बल हो चुका है। भोगों ने इसे भोग लिया और स्वभाव बिगड़ चुका है। भोगमयी वृत्ति से आलस्य और आराम का जीवन बन गया है। ऐसे हालात में क्या हो सकता है। कृपा करके बतायें कि मोक्ष की प्राप्ति हेतु क्या कोई सरल और शीघ्र सफलता प्राप्त होने वाला मार्ग है, जिस पर चलकर मनुष्य बिना कठिन तप और साधना के अपने ध्येय को प्राप्त कर लेवे? शिष्य होने के नाते भी हमारा अधिकार है कि गुरुदेव की आध्यात्मिक शक्ति का अंश हमको प्राप्त

हो। क्या हम जैसे लोगों के लिए भी कोई सुलभ उपाय प्रभु प्राप्ति का हो सकता है?'

एक क्षण मात्र भी रुके बिना मुस्कुराते हुये उन्होंने फ़रमाया, ''लाल जी! आत्म समर्पण यानि अपने आप को पूर्ण रूप से प्रभु चरणों में अर्पण कर देना, होना या न होना, सुख-दु:ख, लाभ-हानि, यश-अपयश, जीवन-मरण सब कुछ प्रभु आज्ञा में देखना और अपने अहम् को मिटा देना- इससे बढ़कर सुलभ मार्ग प्रभु प्राप्ति का कोई दूसरा नहीं है। एक बार मनुष्य पूर्ण रूप से प्रभु परायण हो जावे तो सहज में ही काम बन जाता है।''

(2) काली कम्बली प्यारी क्यों?

सर्दियों के दिन थे। सत्पुरुष श्री मंगतराम जी महाराज संसारी चहल-पहल से अलग-थलग एक निर्जन स्थान बाग कड़े खाँ दिल्ली में विराजमान थे। सत्संग प्रतिदिन शाम को होता था। मगर कई प्रेमी दिन में भी आ जाते थे। इस प्रकार विचार-धारा चलती रहती थी। एक दिन हकीम राजा राम दत्त जी भी श्री चरणों में पहुंचे। उन दिनों सत्पुरुष एक काली कम्बली ओढ़े रहते थे। उस कम्बली के ऊपर एक सफेद चादर होती थी। हकीम जी ने देखा कि श्री महाराज जी जो कम्बली ओढ़े थे वो एक चीथड़ों का मजमूआ फटी पुरानी कम्बली थी जिसके तार तार उधड़े हुए थे। जब कभी कम्बली के लटकते हुए चीथड़े बिखरने को होते तो झट से सत्पुरुष अपने कर-कमलों से उसे समेट लेते। हकीम जी का कहना था कि दास हैरान था कि संसारी पदार्थों से इतनी उपरामता होते हुए भी न जाने इस फटी पुरानी कम्बली में ऐसा कौन सा गुण था कि श्री महाराज जी ने इसे इतना अपना रखा था। अन्तर्यामी सत्गुरुदेव जी ने दास की हैरानी को देखकर फ़रमाया :- ''यह कम्बली इन्हें बहुत प्यारी है। इनकी पूज्यनीय माता जी ने अपने पवित्र हाथों से इनके लिए तैयार की थी। रात्रि में पहले ऊन को साफ किया, उसे चर्खे पर काता, फिर अपनी निगरानी में बनवाया। इस ख़्याल से कि मेरा लाल 'मंगत' इसे ओढ़े, वो रातें बाहर गुज़ार देता है। सर्दी-गर्मी की परवाह नहीं

करता, तो कहीं उसको सर्दी न लग जाए। यह कम्बली तप-त्याग के ज़माने से लेकर आज-तक इनके अंग-संग रही है। कई जाड़े, बर्फानी रातें, बारिशें और बहारें, जंगलों, विरानों-बियाबानों, पहाड़ों-मैदानों, इन्सानों और दरिन्दों, तप और योग की कठिनाईयों, ज्ञान की बुलन्दियों तक इसने माँ का प्रेम और आशीर्वादों से अपनाये रखा। इसके ओढ़ लेने से वात्सल्य प्रेम, माता की गोद का एवं प्रेम भरी लोरियों का अनुभव करते हैं। इसने हर कष्ट और थकावट में एक सच्चे साथी का साथ निभाया है। यह इनकी माता की यादगार है और इन्हें बहुत प्यारी है।''

सत्गुरुदेव जी के उपरोक्त फ़रमान से मुझ पर से इस कम्बली का राज़ खुला। प्रीतम के प्यार के साथ-साथ मुझे इतनी प्यारी वस्तु से लगाव बढ़ने लगा।

एक दिन का वाक्या है कि सत्गुरुदेव जी आसन पर विराजमान थे। आँखें बंद, ध्यान अवस्था में मग्न, दास सामने बैठा आपके मुखारबिन्द की शोभा को देख रहा था। माहौल में सुकून था। कोई दूसरा प्रेमी वहाँ मौजूद न था। एकदम श्री महाराज जी ध्यान अवस्था से हटे, आँखें खोल दी। कम्बली से हाथ बाहर निकाला। उसके एक फटे और लटके हुए चीथड़े को खींचकर तोड़ लिया और ऊपर को उछाला। टुकड़ा ऊपर से नीचे आ गिरा। दुबारा फिर उछाला, टुकड़ा फिर नीचे आ गिरा। तीसरी बार ज़रा जल्दी से उछाला तो वह एक दीवार के आले में, जो ज़मीन से तकरीबन चार फीट की ऊँचाई पर था, जा पड़ा। ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने हाथ से पकड़कर रख दिया हो। इसके बाद आपने आँखें मूंद लीं। दास यह खिलवाड़ का कोई मतलब न समझ सका। लेकिन ये खिलवाड़ देखकर उस कम्बली से लगाव और बढ़ गया और साथ ही संकल्प मेरे मन में उठा कि मेरे प्रभु अपनी प्यारी कम्बली मुझे कृपा करके दे देवें तो मेरे जैसा भाग्यशाली इस संसार में दूसरा कौन होगा? परन्तु ये संकल्प पूरा न हो सका। सत्गुरुदेव जी दिल्ली से चले गये।

काली कम्बली की कृपा कैसे हुई?

एक साल बीत गया। नवम्बर 1951 में सत्गुरुदेव जी का फिर

दिल्ली आना हुआ। इस बार उनकी सेहत ठीक नहीं थी। फिर भी उनके नित के प्रोग्राम में फ़र्क न आया। दास का रोज़ाना सत्गुरुदेव जी के चरणों में जाना होता था। सत्पुरुष के सत् विचारों से प्रेमी लाभ उठा रहे थे।

एक दिन आसमान पर बादल छाए हुए थे। बूँदा-बाँदी हो रही थी। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। बारिश के आसार नज़र आ रहे थे। बारिश से बचने के लिए छाता हाथ में लेकर चल दिया। दास ठीक सायं चार बजे सत्संग के शुरू होने पर सत्गुरुदेव जी के दरबार में पहुँच गया। सत्संग समाप्त हुआ। आम संगत चली गई। थोड़े प्रेमी रह गये। बारिश हो रही थी। डा. भगत राम जी को वापिस आना था। प्रेमी बाबू अमोलक राम जी उनके साथ जाने लगे, तो दास से छाता माँगा और कहा कि एक घन्टे तक वापिस आ जाएगा।

दास ने कहा, 'बड़े शौक से ले जाओ, लेकिन मैं अँधेरा होने से पहले वापिस जाना चाहता हूँ।'

बाबू जी ने फ़रमाया, 'बस एक घन्टे तक वापिस आ ही जाऊँगा।'

इतना कहकर वे तो चले गये। दास उनकी वापिसी की इन्तज़ार में बैठा रहा लेकिन वे वापिस तशरीफ न लाए। बादल गहरे छा गये। बारिश और भी तेज हो गई। अब और ज़्यादा इन्तज़ार करना नामुमकिन था। मेरा जाने का इरादा देखकर सत्गुरुदेव जी ने फ़रमाया, ''क्या हकीम जी जा रहे हो?''

दास ने कहा, 'महाराज जी! अन्धेरा और बारिश बढ़ रही है। नज़र भी कमज़ोर है इसलिए जाना ही बेहतर है।'

सत्गुरुदेव जी, ''अच्छा, कोई कम्बल, लोई वग़ैरा लेते जाओ ताकि भीगने से बचाव रहे। यहां कई कम्बल, लोईयाँ पड़ी हैं।''

दास ने अर्ज की, 'जो आज्ञा महाराज जी।'

इतना कहकर प्रणाम किया और आज्ञा माँगी।

सत्गुरुदेव जी, ''अच्छा जाओ।''

दास फिर प्रणाम करके बाहर आ गया। भगत जी लंगर वाले कमरे में थे। दास उनके पास गया और महाराज जी वाली पुरानी लोई माँगी। भगत

जी ने देने में देर कर दी।

सत्गुरुदेव जी ने भगत जी को आवाज़ लगाई - ''बनारसी! हकीम जी को लोई दे दो।''

भगत जी ने कहा, 'महाराज जी! बिल्कुल फटी हुई चीथड़े हैं।'

सत्गुरुदेव जी, ''प्रेमी! कोई परवाह नहीं, लोइयाँ वाले जब तेरे पास हैं तो इस पुरानी लोई का क्या करेगा? यहां लोइयाँ ही लोइयाँ पड़ी हैं। ये जो पड़ी हैं, किसलिए हैं।''

भगत जी लोई हाथ में लेकर आए और दरवाज़े पर बुत बने खड़े हो गये। चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। आँखों में मायूसी और मज़बूरी छलक रही थी। दास हैरान था कि भगत जी हैरान क्यों है? दरअसल भगत जी लोई देना नहीं चाहते थे क्योंकि इस काली कम्बली को कई एक पैवंद (कपड़े से मरम्मत) लगाकर सत्गुरुदेव जी ने अपना प्रेम उस पर अंकित किया हुआ था।

इतने में सत्गुरुदेव जी की फिर आवाज़ आई, ''दे दो न बनारसी, हकीम जी को।''

भगत जी ने सोचा, श्री महाराज जी की आज्ञा है, आगे कभी नहीं कहा, इसे क्यों पास रखी हुई है? बड़े प्रेम से भगत जी ने कम्बली मुझे दे दी। दास ने अपने दोनों हाथों से कम्बली थाम कर छाती से लगा ली और भगत जी से कहा, 'ये प्रशाद सत्गुरुदेव जी का मिल गया है, बड़े भाग्य बख़्शने वाली काली कम्बली है। श्री महाराज जी ने बड़ी कृपा की है।'

दास ने झट उसको ओढ़ लिया। फिर जल्दी से वहां से चलने लगा ताकि कहीं ऐसा न हो हुक्म, हाकिम बदल जावे। कहीं देवता लोग मेरी प्यारी कम्बली न छीन लेंवे। इस तरह अन्तर्यामी सत्गुरुदेव जी ने दास की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए अपने आप ही उस कम्बली को दास के हवाले कर दिया। जिसमें आपकी प्यारी माता जी का प्यार भरा था।

उधर भगत जी जब लंगर का काम ख़त्म करके सत्गुरुदेव जी के चरणों में आए तो सत्गुरुदेव जी ने फ़रमाया :- ''ख़ूब प्रेमी हैं। राठ ब्राह्मण हैं। किसी के आगे सिर जल्दी झुकाने वाले नहीं। ईश्वर कृपा करें। लकीर

के अन्दर रहें।''

अर्सा दो साल गुज़रे, सत्गुरुदेव जी फिर दिल्ली तशरीफ़ ले आए। एक दिन सत्संग के पश्चात कुछ प्रेमी प्रभु चरणों में बैठे थे। सत्गुरुदेव जी ने हजरत मंसूर के सम्बन्ध में बतलाना शुरू किया, फ़रमाया, ''जब मंसूर की अस्थियाँ दरयाए दज़ला में डाली गईं तो दरया उछल पड़ा, एक तूफ़ान का रूप ले लिया। खलीफ़ा और सब लोग डर गये कि अब बगदाद तबाह हो जाएगा। उस वक़्त हज़रत मंसूर के एक शिष्य के कदमों पर सिर रख कर बादशाह ने जान की अमान (रक्षा) मांगी तो उसने दया करके फ़रमाया – ये हज़रत मंसूर की काली कम्बली है। इसको फैलाकर दरया को दिखलाओ, तो वह शान्त हो जाएगा। अत: ऐसा ही किया गया। इस प्रकार बगदाद सर्वनाश होने से बच गया।''

दास ने सत्गुरुदेव जी से दरयाफ़्त किया – महाराज जी! क्या यह वो ही काली कम्बली है?

सत्गुरुदेव जी – (मुस्करा दिये) सिर हिलाते हुए फ़रमाया, ''हाँ लाल जी! वो ही काली कम्बली।''

उस वक़्त काली कम्बली की महानता समझ में आई।

सत्गुरुदेव जी के वो लफ़्ज़ याद आए, ''ले लो, हकीम जी! फ़कीरों की ओढ़नी में माज़ी (अतीत), मुस्तकबिल (भविष्य) ऐसे सब राज़ छुपे होते हैं।''

21

श्री हरबंस लाल चावला, दिल्ली

(1) सत्पुरुष श्राप नहीं देते

सन् 1949 में सत्गुरुदेव श्री महाराज ने शिमला में जाखू नामक पहाड़ पर एक पुरानी बिल्डिंग में कुछ माह के लिए तप में समय बिताया था। मैं उनके दर्शन करने से पहले दो दिन हरिद्वार, ऋषिकेश लक्ष्मण झूला आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा करके श्री गुरु चरणों में शिमला पहुँचा। उन दिनों में यह तीर्थ स्थान आजकल की तरह पाखण्ड और व्यापार के केन्द्र न थे। वहाँ धार्मिकता तथा सादगी का वातावरण अधिक था। कई पहाड़ियों के बीच जल बहता हुआ, कहीं-कहीं बावलियाँ भी देखने में आई। कहीं-कहीं साधु, तपस्वी भी बैठे हुए दिखाई दिये।

गर्मी में लम्बी यात्रा के पश्चात् जब जाखू पहाड़ पर पहुँचकर श्री महाराज जी को दण्डवत प्रणाम करके बैठा, वहाँ के अति शाँत वातावरण से मन बहुत प्रसन्न हुआ। श्री सत्गुरुदेव दास से कुशलता पूछने के पश्चात् समाधिस्थ हो गए। मेरे मन में विचार आया कि हम संसारी लोग इन सत्पुरुष की महानता को कैसे जान सकते हैं। हम लोगों में इतनी कमियाँ हैं कि किसी कारणवश सत्पुरुष नाराज़ हो जाएँ तो कितना दण्ड मिल सकता है। उसी समय विचार आया कि जब दुर्वासा ऋषि यादव वंश के लड़कों से अप्रसन्न हुए थे तो उन्होंने यादव वंश के नाश होने का श्राप दिया था, ऐसा श्री मद्भागवत में आता है।

कुछ समय पश्चात् जब श्री महाराज जी ने आँखें खोली तो फ़रमाने लगे, ''लाल जी! कोई विचार करो।'' दास ने कहा, 'महाराज जी! यह जो शास्त्रों में वर्णन आता है कि संत या सत्पुरुष किसी को वरदान देते हैं या किसी को श्राप, इस बारे में कुछ बताने की कृपा करें।'

श्री सत्गुरुदेव जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी जी! असली संत या सत्पुरुष किसी को श्राप नहीं देते, वह सबका भला और कल्याण ही चाहते हैं। सज़ा व जज़ा सब मनुष्य को उनके कर्मों के अनुसार ही मिलती है। हाँ, इतना जरूर है कि सत्पुरुषों की दूरदृष्टि होती है। वे मनुष्य के संस्कारों और प्रकृति को देखकर यह जान लेते हैं कि यह मनुष्य किस ओर अग्रसर हो रहा है। उसका नतीजा सुख-शान्ति होगा या तबाही और बर्बादी होगी। कभी-कभी वे इसका ज़िक्र भी कर देते हैं। उनका इस प्रकार बतलाना ही श्राप या वरदान के रूप में प्रतीत होता है।''

श्री महाराज जी के यह शब्द सुनकर मन में संशय और दुविधा दूर हो गई। जब यादव वंश के नवयुवकों में ऐसी गिरावट आ गई कि दुर्वासा ऋषि, जिनको भगवान कृष्ण ने अपनी पत्नी रूकमणि सहित रथ में जुतकर द्वारिका नगरी में घुमाया था, वे हँसी-मज़ाक करने चल पड़े, तो वास्तव में इस वंश का दुर्भाग्य आया हुआ था। जब उन नवयुवकों ने एक युवक के पेट पर बर्तन बाँधकर उसको स्त्री वस्त्र पहनाकर दुर्वासा ऋषि के पास ले जाकर उनसे यह पूछा कि बताइये इस स्त्री के पेट से क्या सन्तान पैदा होगी, तो उस समय उन्होंने यह उत्तर दिया कि इससे वह पैदा होगा जो आपके वंश का नाश कर देगा। जब इस उपरोक्त विषय पर विचार किया तो ऐसा लगा कि गुरुदेव के संक्षिप्त उत्तर में कितना सार छुपा हुआ है। यह भी स्पष्ट हो गया कि संत दया के भण्डार होते हैं और किसी का बुरा नहीं चाहते। शायद वही तपस्वी जो सत् मार्ग में चलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त हुए और अहंकार पर विजय प्राप्त नहीं कर पाए, तथा कुछ सिद्धियाँ उनको प्राप्त हो गई हैं, अपने तपोबल के आधार पर दूसरों को लाभ-हानि पहुँचाने के लिए उनका प्रयोग करते हैं। परन्तु सत्पुरुष ऐसा नहीं करते, वे तो दया और क्षमा की साक्षात् मूर्ति होते हैं। इतिहास में सत्पुरुषों के जीवन की ऐसी घटनाएँ भरी पड़ी हैं।

श्री गुरु चरणों में पहुँचे हुए दूसरा दिन था। वहीं पता लगा कि बाबू अमोलक राम जी ने जगाधरी आश्रम के लिए ज़मीन का कार्य पूरा कर लिया

है। बाबू जी स्वयं यह सूचना देने वहाँ आए थे। उस समय दास श्री महाराज जी के पास ही बैठा हुआ था। जब वहाँ ज़मीन की चर्चा चली तो श्री महाराज जी ने दास से पूछा, ''कहो प्रेमी! तुम्हारा जगाधरी आश्रम की ज़मीन के बारे में क्या विचार है?'' दास ने श्री महाराज जी से कहा, 'महाराज जी! लोगों के इकट्ठा होने के लिए और सम्मेलन करने के लिए तो यह ज़मीन ठीक ही रहेगी। परन्तु दास के विचार में आध्यात्मिक वातावरण वहाँ ही ठीक बनता है जहाँ प्राकृतिक वातावरण हो जैसे कि पहाड़ या जंगल हों तथा आबादी से दूर हों। साथ ही उस जगह के निकट नदी बहती हो और पानी के चश्मे हों। अर्थात् सारा वातावरण प्राकृतिक हो और वहाँ के दृश्यों को देख कर प्रकृति के रचयिता की महानता प्रकट होती हो।' श्री महाराज जी यह सब सुनकर मौन हो गए।

लगभग तीन वर्ष पश्चात् जब मैं श्री महाराज जी के दर्शन हेतु देहरादून के पास राजपुर में केलाघाट पहुँचा तो एक-दो दिन पश्चात् श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! आओ हमारे साथ, वह जगह देख आएं जो प्रेमियों ने राजपुर में तपोभूमि हेतु ली है।'' श्री महाराज जी के साथ जाकर देखा, वह बड़ा ही रमणीक स्थान था। समय बीतने पर विचार आता है कि संत या फ़कीर यद्यपि रुपये-पैसे आदि से अपने को दूर रखते हैं परन्तु लोक हित में श्रद्धालुओं के लिए ऐसे प्रबन्ध कर जाते हैं जिनकी बड़े-बड़े अमीरों से भी आशा नहीं की जा सकती। जगाधरी आश्रम व तपोभूमि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इसके मूल में उन सन्तों की परहित की भावना ही दृष्टिगोचर होती है।

22

श्री बिशम्बरनाथ लूथरा, बीकानेर

(1) योग विद्या आसानी से नहीं मिलती

सर्व प्रथम सन् 1950 में श्री महाराज जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि कृपया मुझको अपनी शरण में ले लीजिए। परन्तु श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''तुम कालिज के विद्यार्थी हो। इस योग विद्या की क्या इज़्ज़त करोगे और इसको कैसे संभाल सकोगे। पहले अपने पहनावे और जीवन को ठीक करो।''

सन् 1951 के सितम्बर माह में श्री महाराज जी अबोहर में पधारे हुए थे। उस समय दास ने उनसे फिर प्रार्थना की, 'महाराज जी! कृपया दास को अपने चरणों में स्थान दें जिससे यह जीवन सफल हो जाए।' उस समय श्री महाराज जी ने मुझसे कहा, ''ईसा को तो लोगों ने फाँसी दी थी, लेकिन आजकल के नौजवान हमेशा स्वयं ही गले में फाँसी लटकाए फिरते हैं।'' वास्तव में बात यह थी कि उस समय मैं कालिज का नया-नया विद्यार्थी था, मेरे गले में टाई लटकी हुई थी। श्री महाराज जी के शब्दों ने मेरे मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसी समय मैंने भविष्य में टाई न पहनने का निश्चय कर लिया।

इस घटना से मेरे दिल में श्री महाराज जी के लिए तड़प और बढ़ गई, जिसका वर्णन शब्दों के द्वारा नहीं किया जा सकता। मन में बेचैनी रहने लगी और अनेक शंकाएं मन में उठती रहतीं। एक विचार बार-बार आता था - 'क्या श्री महाराज जी दास पर कृपा करेंगे?' 1952 में मैं श्री महाराज जी के दर्शन करने अम्बाला शहर भी गया था। वह दृश्य भी बड़ा आश्चर्यजनक था। वहाँ मैंने ऐसा अनुभव किया कि श्री महाराज जी ने मेरे ऊपर जादू सा कर दिया है। उसका मेरे ऊपर जो प्रभाव पड़ा उसका वर्णन करना ठीक नहीं।

दिसम्बर 1952 की बात है, जब श्री महाराज जी अबोहर स्थित

जोहड़ी मन्दिर में ठहरे हुए थे। मैं भाई वज़ीर चन्द जी के साथ उनके दर्शन के लिए गया। सायँकाल का सत्संग समाप्त होने पर लोग वहाँ से घर के लिए प्रस्थान कर रहे थे। कुछ प्रेमी श्री महाराज जी के पास बैठे हुए थे। हम दोनों भी वहाँ जाकर बैठ गए। श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! कोई सवाल करो।''

इस पर एक बुज़ुर्ग प्रेमी ने बड़े ही गम्भीर और अच्छे प्रश्न किए। श्री महाराज जी ने उनके जो उत्तर दिए उनसे वह प्रेमी व अन्य उपस्थित सज्जन बहुत प्रभावित हुए। श्री महाराज जी के उत्तर बहुत संक्षिप्त और तर्कपूर्ण थे। काफी समय बीत जाने के कारण वे अब याद नहीं रहे। उस समय रात्रि के दस बज चुके थे। श्री महाराज जी प्रेमियों को फ़रमाने लगे, ''जाओ प्रेमियों! अब आराम करो।'' पता नहीं वहाँ कौन सी कशिश थी कि मन वहाँ से उठने ही नहीं देता था। सर्दी कड़ाके की पड़ रही थी। उस बुज़ुर्ग प्रेमी ने श्री महाराज जी की टाँगें दबानी शुरू कर दीं। उस समय श्री महाराज जी फ़रमाने लगे, ''प्रेमी! इन सूखी लकड़ियों को दबाकर क्या लेते हो?''

दास ने भी डरते-डरते श्री महाराज जी की कमर दबानी आरम्भ कर दी। किसी प्रकार अचानक ही मेरा कान उनकी कमर को छू गया। उस समय कान में शंख, मृदंग, घड़ियाल घण्टे जैसी आवाज़ें सुनाई पड़ने लगी। जब भी वह दृश्य मुझको याद आता है मेरे मन में आनन्द की एक लहर सी दौड़ जाती है। परन्तु उस अनुभव का वर्णन करने की लेखनी में क्षमता नहीं। यह सब जो कुछ भी हुआ मनुष्य की बुद्धि उसको नहीं सोच सकती। ऐसा पढ़ा हुआ था कि योगियों के रोम-रोम में नाद की गुंजार होती रहती है, परन्तु गुरुदेव की कृपा से उसका प्रत्यक्ष अनुभव भी हो गया। दास इस कृपा के लिए आजन्म आभारी रहेगा।

22 दिसम्बर, 1953 के दिन श्री महाराज जी मलोट में पधारे हुए थे। मैंने सायँकाल के समय श्री महाराज जी के दरबार में पहुँचकर प्रार्थना की, 'महाराज जी! आप मुझे अब और अधिक न तड़पाएं, अब मैं अधिक देर तक

प्रतीक्षा नहीं कर सकता।' उसी समय श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''तेरी कोई ज़मानत देने वाला है?''

मेरे इस गम्भीर मामले में भगत बनारसी दास जी ने सहायता की और कहा, 'हजूर! यह वज़ीर चन्द जी का छोटा भाई है, मेहर कर दीजिए।' श्री गुरु श्री महाराज जी ने उसी समय मुझे आदेश दिया कि प्रातः चार बजे नहा कर आ जाना।

बस फिर क्या था, मुझे उस रात नींद ही नहीं आई। प्रातः तीन बजे उठकर नहा-धो कर ठीक चार बजे श्री महाराज जी के दरबार में उपस्थित हो गया। उस समय मेरे मालिक ने मुझ पर जो कृपा की उसको भुलाया नहीं जा सकता। जो खैरात मुझको मालिक के दरबार से मिली उसमें इतनी शक्ति और सच्चाई है कि तमाम दुनिया उसके सामने तुच्छ सी दिखाई देती है। यही संतों की विशेष कृपा होती है जो बहुत पुण्य व भाग्य से प्राप्त होती है।

23

श्री रतन चन्द्र अग्रवाल, अम्बाला

(1) हिन्दू समाज का कल्याण समता की शिक्षा से

मेरे मन में सन्तों के प्रति गलत धारणा बैठी हुई थी। मैं समझता था कि यह लोग समाज पर बोझ हैं। सन् 1953 का नवम्बर मास था। एक दिन महात्मा मंगतराम जी के शिष्य पं. जगन्नाथ जी, जो कि कोहाला (पाकिस्तान) के रहने वाले थे, मेरे पास आए। उन्होंने मुझसे कहा कि एक बहुत ही उच्च कोटि के परम संत आपके नगर में पधारे हुए हैं। उनके ठहरने का प्रबन्ध शहर के नए बाँस के मरघट के आगे नौराता राम की बगीची में टैन्ट लगाकर किया गया है, क्योंकि वे आबादी से दूर रहना पसन्द करते हैं। आप उनके दर्शन करके शुभ विचारों से जीवन का लाभ प्राप्त करो।

यह बात सुनकर मन में उनके दर्शन करने की जिज्ञासा पैदा हुई। एक दिन मैं वहाँ गया। वहाँ जाकर देखा कि शहर से बहुत से लोग वहाँ पहुँचे हुए थे। बहुत ही शाँत वातावरण था। मैं टैन्ट में एक तरफ़ जाकर बैठ गया। कई प्रेमी श्री महाराज जी से अपने प्रश्नों के उत्तर पूछ रहे थे। उनके उत्तर बड़े की तर्कपूर्ण और संक्षिप्त थे। उसी समय किसी प्रेमी ने हिन्दू समाज की परिस्थिति के बारे में प्रश्न किया। श्री महाराज जी ने उत्तर दिया, ''यह समता की तालीम ईश्वर आज्ञा से प्रकट हुई है। हिन्दू समाज की बिखरी हुई हालत को टाँका इसी तालीम से लगेगा।''

उसी समय श्री महाराज जी ने मेरी ओर देखकर मुझसे कहा, ''प्रेमी! कोई विचार करो।'' मैंने उस समय श्री महाराज जी से प्रश्न किया, 'महाराज जी! कोई भी समाज जैसे कि जैन, सिक्ख, आर्य समाज तथा अन्य अपने आप को हिन्दू नहीं कहते, फिर हिन्दू समाज का क्या बनेगा?' श्री महाराज जी ने

फ़रमाया, ''यह सब लोग इसी समता के प्लेटफ़ार्म पर इक्ट्ठे होंगे।'' उस दिन और प्रेमियों ने भी प्रश्न किए थे परन्तु काफी समय बीत जाने के कारण स्मरण नहीं रहे। मेरा मन वहाँ इतना लगा कि वहाँ से उठने को जी नहीं चाहता था।

अगले दिन फिर मैं श्री महाराज जी के दर्शन करने गया। श्री महाराज जी उस समय टैन्ट में अकेले विराजमान थे। उनको दूर से ही प्रमाण करके मैं बैठ गया। उसी समय उन्होंने मुझसे कहा, ''प्रेमी! कोई विचार करो।'' दास ने तुरन्त श्री महाराज जी से निवेदन किया, 'महाराज जी! कृपया मुझको भी अपनी शरण में ले लीजिए।' उसी क्षण श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! सुबह आ जाओ।'' मैं अगले दिन सुबह निश्चित समय पर श्री महाराज जी के चरणों में पहुँचा। उन्होंने दास को अपनी विशेष कृपा से निहाल कर दिया।

यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं मन में लेश मात्र भी दीक्षा लेने का विचार रखकर वहाँ नहीं गया था। बाद में मैं यही सोचता रहा कि वह कौन सी परम शक्ति थी जिसने मुझसे दीक्षा के लिए श्री महाराज जी से प्रार्थना करवा दी। परन्तु आज मैं यह सोचता हूँ कि यह मेरे पूर्व जन्म के पुण्य कर्म थे जिस कारण मेरे जैसे साधारण प्राणी पर भी उन सत्पुरुष की विशेष कृपा हो गयी। दास तो अपने आप को इस योग्य नहीं समझता था। सन्तों की महिमा अपरम्पार है, उनकी महानता को तुच्छ बुद्धि कैसे समझ सकती है।

24

श्री कृष्ण लाल शर्मा, दिल्ली

(1) आन्तरिक स्थिति गुप्त रखनी चाहिए

बालपन से रिवाज़ी धर्म की ओर रुचि थी। वास्तविक धर्म से अनभिज्ञ था। कालेज में अध्ययन काल के दौरान पुस्तकालय में स्वामी रामतीर्थ की जीवनी, लेख एवं उपदेश पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साथ ही महाराष्ट्र के महान संत ज्ञानेश्वर द्वारा रचित गीता का हिन्दी अनुवाद भी पढ़ा करता था। धीरे-धीरे सोचने का ढंग बदला। रिवाज़ी धर्म के स्थान पर वास्तविक धर्म की ओर मन मुड़ने लगा। इन्हीं दिनों उर्दू में छपा हुआ **'ग्रन्थ श्री समता विलास'** और गुरुदेव की अमर वाणी का एक अंग **'समदर्शन योग'** कहीं से प्राप्त हो गया। अधिकतर समय इन्हीं पुस्तकों के अध्ययन में कटने लगा। बैंक कार्यालय में भी जब समय मिलता तो **'समदर्शन योग'** पढ़ने लगता। इसको अनेक बार पढ़ा। अन्ततः मन में तीव्र इच्छा जगी कि जिस सत्पुरुष की यह वाणी है उनके दर्शन अवश्य करने चाहिए।

नवम्बर 1945 की बात है। दास लाहौर बैंक के मुख्यालय में कार्यरत था। पता चला कि एक महात्मा जी चौबुर्जी में **'मार्तण्ड'** नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक श्री रामलाल वर्मा 'परमार्थी' जी के घर पधारे हैं और सायंकाल प्रतिदिन वहाँ सत्संग होता है। अगले दिन परमार्थी जी के घर पहुँचा। सोचता था कि महात्मा जी भगवा वस्त्र-धारी होंगे। गर्दन फूल मालाओं से लदी होगी। ऊँचे आसन पर विराजमान होंगे। जब कमरे में पहुँचा वहाँ ऐसा कोई महात्मा दिखाई नहीं दिया। एक कोने में सफेद वस्त्र-धारी दुबले-पतले व्यक्ति दिखाई दिए। उनका शरीर कमज़ोर था परन्तु मुख-मण्डल पर तेज़ था। सभी लोग प्रणाम करके बैठ रहे थे। महात्मा जी के हाथ जुड़े हुए थे तथा लोगों के प्रणाम करने से पहले ही वे स्वयं उनको प्रणाम कर लेते थे। संत ज्ञानेश्वर ने ऐसे सत्पुरुष के लक्षण ज्ञानेश्वरी गीता के छठे अध्याय में वर्णन किये हैं। वे

सारे लक्षण इन महात्मा जी पर पूरे उतरते थे।

सत्संग आरम्भ हुआ। जब वाणी उच्चारण होने लगी तब वह दृश्य ऐसा लगा मानो कबीर और गुरु नानक के सम्मुख बैठकर वाणी श्रवण का रहे हों। मन में संकल्प आया कि तेरा कल्याण इन्हीं के द्वारा सम्भव है। सत्संग सम्पन्न हुआ, लोग जाने लगे। दास धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए रोज़ गुरुदेव के चरणों के पास पहुँच जाता और प्रणाम करके रात्रि को घर वापस लौट आता था। एक सप्ताह तक नियमित रूप से प्रतिदिन सत्संग सुना। अन्त में भगत बनारसी दास जी से प्रार्थना की कि श्री महाराज जी से मार्ग-दर्शन प्राप्त हो जाए तो बहुत अच्छा हो। बनारसी दास जी बोले, 'स्वयं प्रार्थना करो।'

अगले दिन सत्संग समाप्ति के पश्चात् धीरे-धीरे लोगों के जाने से रिक्त स्थान की ओर आगे बढ़ते हुए श्री चरणों में पहुँचा। उनसे प्रार्थना की, 'प्रभु! मार्ग-दर्शन की कृपा करें।' गुरुदेव बोले, ''कठिन मार्ग है।'' दास ने प्रार्थना की, 'प्रभु! यदि मार्ग है तो चलने के लिए है, कठिन है तब भी तथा सरल है तब भी।'

गुरुदेव ने पूछा, ''मांस, शराब का सेवन करते हो?'' दास ने कहा, 'नहीं श्री महाराज!' फिर उन्होंने पूछा, ''सिगरेट?'' दास ने कहा, 'नहीं श्री महाराज!' गुरुदेव ने फिर पूछा, ''सिनेमा?'' दास ने कहा, 'शौक नहीं, कभी-कभार देख लेता हूँ।' इस वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने प्रातः आठ बजे आने के लिए मुझको आज्ञा दी। प्रणाम करके मैं घर के लिए लौट पड़ा। लगभग चार किलोमीटर की दूरी साइकिल पर अजीब मस्ती में तय हुई। एक ही धुन थी कि दिन निकले और श्री चरणों में उपस्थित हो जाऊँ।

दिन निकला। उठकर स्नान किया। साइकिल पर सवार होकर चल पड़ा गुरु दीक्षा के लिए। गुरु दीक्षा के लिए भेंट-पूजा के कुछ नियम हैं, उनका पता न था। श्री चरणों में खाली हाथ पहुँच गया। गुरुदेव ने कृपा करके साधना की युक्ति समझायी। चरणामृत प्रसाद दिया। दास प्रणाम करके कार्यालय चला गया। दो दिन पश्चात् गुरुदेव कहीं और प्रस्थान कर गए। संगत के प्रेमियों ने

मुझसे पूछा, 'दीक्षा मिलने पर क्या भेंट किया?' यह सुनकर मैं चौंका। सोचने लगा कि लोग दीक्षा लेकर कुछ भेंट भी करते हैं, मुझसे बड़ी भूल हुई। लेकिन मेरे पास था क्या जो भेंट करता। इसी उधेड़-बुन में गुरुदेव को पत्र लिखा। अपनी भूल प्रकट की ओर क्षमा माँगी। गुरुदेव ने उत्तर दिया, ''तुम रुपये, पगड़ी, बताशे ले भी आते तो बताशे प्रसाद में बँट जाते तथा रुपये एवं पगडी हम लौटा देते। गुरु दक्षिणा यही है कि गुरु के मार्गदर्शन को अपनाओ और अपना जीवन सफल करो।'' गुरुदेव, आप धन्य हैं। आजकल के गुरुओं की दशा देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जो कहते हैं - तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण करो।

देश का विभाजन हुआ। लाहौर से दिल्ली आ गया। गुरु कृपा से संगत भी अच्छी मिल गई। 'ओम' पत्रिका के सम्पादक स्वर्गीय श्री गोरखनाथ देश के बँटवारे से पहले लाहौर से दिल्ली आ गए थे। तीन महीने उनके साथ कमला नगर में रहा और गुरु आज्ञा अनुसार साधना भी करता रहा। आन्तरिक स्थिति बदलने लगी। सत्गुरु कृपा का अन्दर प्रत्यक्ष अनुभव होने लगा।

रविवार को साप्ताहिक सत्संग कटरा रियोड़ी, सब्जी मण्डी में परमार्थी जी के घर में होता था। एक दिन सत्संग में परमार्थी जी से साधारण बातचीत के दौरान मैंने उनसे कहा, 'गुरुदेव की वाणी में आता है -

स्वास सुरत और नाम का बन्ध। गुरुमुख खोले बिखमी सन्ध।।

कृपया इसको विस्तार से समझाएं।' इसकी उन्होंने जो व्याख्या की वह यथार्थ के विपरीत थी। मैंने अनुभव के आधार पर सही बात स्पष्ट की। अन्दर के गुप्त हालात प्रकट करने से मन में विक्षिप्तता आई। दुर्भाग्यवश आन्तरिक स्थिति बिगड़ी। सारी स्थिति को गुरुदेव को पत्र द्वारा सूचित किया। निम्न पत्र द्वारा गुरुदेव की अच्छी डाँट पड़ी।

''प्रेमी जी! घबराने की ज़रूरत नहीं। फिर कोशिश सही करते रहें। प्रभु शायद दयालु होकर फिर अन्त:करण को रोशन कर देवें इसमें जोर किसी का नहीं चलता। उसी की दया होनी है। तुमको पहले जब यह समझा दिया

गया था, मगर फिर तुमने महफ़िल लगानी शुरू की, तो अब पछताने के बजाय अपनी लगन को दृढ़ करते जावें। प्रभु की कृपा जरूरी होवेगी। छोटी अकल हाजमा कहाँ से लाए। अब अपनी ग़लती को समझकर आइन्दा ज़्यादा अभ्यास में प्रेम धारण करें, और ज़बान पर मोहर लगा देवें ग़ैब के हालात (गुप्त हालात) बताने की। तब ही प्रभु जी क्षमा करके फिर सत् शाँति की झलक शायद अपनी अपार दया से दिखलाएं। ईश्वर सत्विश्वास देवें। प्रेमी जी, बासमझ होकर पूर्ण ज़ब्त (संयम) से इस मार्ग पर चलें, तब ही सत् शाँति को हासिल कर सकोगे। ईश्वर नित ही रक्षक होवे।''

किस मुख से सत्गुरु उपमा की जा सकती है। आज के समय में ऐसे सत्पुरुष का संग कहाँ प्राप्त हो सकता है। पूर्व जन्म के सत्कर्मों के फलस्वरूप ही हमको पूर्ण पुरुष के चरणों की शरण प्राप्त हो सकी। हर क्षण उनकी परम कृपा प्राप्त करने की चेष्टा है और यह ही गुरुदेव से प्रार्थना है।

(2) प्रेमियों से अपेक्षा

(दिल्ली कड़ेखां के बाग में सितम्बर व अक्टूबर 1952) में जब श्री महाराज जी वहाँ पधारे तो प्रेमी उलफतराय जी ग्रोवर वहाँ दर्शनार्थ आये, उस समय उनके बगल में अखबार थी।

श्री महाराज जी ने प्रेमी से पूछा, ''यह आपकी बगल में क्या है।'' इस पर प्रेमी ने कहा - महाराज जी यह आज की अखबार है।

इस पर श्री महाराज जी ने प्रेमी से पूछा कि क्या कोई नई खबर है। श्री उलफतराय जी ने कहा कि महाराज जी लन्दन से महात्मा बुद्ध के दो शिष्यों की अस्थियाँ यानि भिक्षुओं की अस्थियाँ भारत लाई गई हैं। इस पर श्री महाराज जी ने एकदम फ़रमाया, ''ओह! बुद्ध को तो दो भिक्षु मिल गये थे यहाँ तो एक भी नहीं मिला।''

(3) संगत ही मालिक है

जगाधरी अक्टूबर मास 1953 में श्री महाराज जी के पास समता योगाश्रम जगाधरी में आये। उस समय श्री लक्षमणदास वकील ने निम्न प्रश्न श्री महाराज जी से किया और इसका उत्तर जो श्री महाराज ने दिया वह भी निम्न है।

प्रेमी - श्री महाराज जी, आपने तो यह इतना बड़ा फैलाओ संगत का किया है। आपके पश्चात् इस गद्दी का मालिक कौन होगा और यह आश्रम जायदाद किसके नाम होंगे?

गुरुदेव- ''आश्रम जायदाद की संगत मालिक है। इसमें फ़कीरों का कोई ताल्लुक (सम्बन्ध) नहीं है। यहाँ कोई गद्दी वग़ैरा नहीं होगी। इन मठ और गद्दियों ने तो भारत को पहले ही नाश किया हुआ है। जब सूरज चढ़ेगा तो वह खुद-ब-खुद (स्वयं) रोशनी देगा और उसकी कशिश से लोग खुद-ब-खुद खिंचे चले आवेंगे।''

25

श्री ओम कपूर, देहरादून

(1) शिष्यों का कल्याण करनी से

मई 1953 की बात है, श्री सत्गुरुदेव देहरादून के निकट राजपुर में बरसाती नदी के किनारे स्थित केलाघाट में, जिसको तुलतुलिया घाट भी कहते हैं, एकान्तवास कर रहे थे। वहाँ कोई मकान नहीं था। गुरु श्री महाराज टैन्ट में ही विराजमान रहते थे। उन्हीं दिनों गुरदासपुर और दिल्ली से कुछ प्रेमी श्री महाराज जी के दर्शन हेतु आए हुए थे। उनमें से कुछ प्रेमी जब भी टैन्ट के अन्दर आते थे या टैन्ट से बाहर जाते थे, प्रत्येक बार श्री महाराज जी को साष्टाँग प्रणाम करते थे, परन्तु उस दौरान गुरुदेव अधिकतर समाधिस्थ रहते थे। मैं वहाँ निकट ही बैठा हुआ था। उस दृश्य को देखकर मैं हैरान हो रहा था और सोच रहा था कि आखिर यह मामला क्या है, बार-बार इस प्रकार प्रणाम करने का क्या लाभ है। मन ही मन में विचार किया कि शायद गुरुदेव की ऐसी आज्ञा होगी।

कुछ समय पश्चात् जब गुरुदेव की समाधि टूटी तो दास ने गुरुदेव से पूछा, 'गुरुदेव! क्या आपकी ऐसी आज्ञा है कि जितनी बार आपके सामने आया-जाया जावे उतनी बार आपको झुककर प्रणाम या नमस्कार किया जाना चाहिए' गुरुदेव ने फ़रमाया, ''प्रेमी जी! इनकी तरफ़ से कोई पाबन्दी नहीं है और न ही समता में इस तरह से कोई नियम लागू है। बुज़ुर्गों को नमस्कार करना और आशीर्वाद लेना यह प्राचीन काल से भारत में एक संस्कार पड़ा हुआ है। बाकी यह लोग जो तुमने अभी देखे हैं कायर बुद्धि लोग हैं, जो गुरु को बार-बार नमस्कार करके ही कल्याण चाहते हैं। इनका कुछ बनना-बनाना नहीं, यह रास्ता करनी करने वालों का है। प्रेमी! इनको तो ऐसे शिष्य चाहिए जो ऐसे बाहोश बुद्धि वाले हों कि अगर कभी गुरु भी गलत मार्ग पर चलने लगे

तो उसको भी दुरुरूत कर दें।

प्रेमी! कबीर परम संत थे, उन्होंने कोई गुरु धारण नहीं किया हुआ था। बनारस के लोगों ने उनको निगुरा कहना शुरू कर दिया था। तब उन्होंने सोचा कि इस वक्त आत्मदर्शी गुरु धारण कर लिया जावे। ऐसा विचार करके उन्होंने उस जमाने के प्रसिद्ध सन्त रामानन्द जी की शरण में जाने का निश्चय कर लिया। आगे तुम्हें पता ही है कि कबीर जुलाहा थे और रामानन्द किसी निम्न जाति के व्यक्ति को शिष्य बनाना नहीं चाहते थे। परन्तु बाद में उन्होंने कबीर को लंगरशाला में केवल पानी भरने की सेवा दी। कबीर अन्दर से फक्कड़ सन्त थे, किसी भी पाखण्ड को अपने सामने टिकने नहीं देते थे। लंगर में पानी का इस्तेमाल बड़ा खुलकर होता था। कबीर ने पता लगाया कि आखिर इतना पानी कैसे खर्च होता है। सुबह से शाम तक पानी सिर पर लाते रहने से भी लंगर का पूरा नहीं पड़ता। कबीर ने खोज की तो पता चला कि दिन में सात-सात बार लंगरशाला धोई जाती है, लकड़ियाँ भी धुलकर अन्दर जाती हैं। बर्तन कई बार मिट्टी से माँजकर धोए जाते हैं। इन सबके पीछे जो बात पता लगी वह यह थी कि अपवित्रता को पानी से पवित्र किया जाता था। एक मर्यादा तक लंगरशाला तथा बर्तनों की सफाई करना ठीक है, लेकिन यह जो पाखण्ड कबीर ने देखा उसको देखकर उनसे रहा न गया। उन्होंने उन लोगों को सबक (शिक्षा) देने के लिए एक दिन लंगरखाने में कई जगह गंदगी फैला दी और पानी लाना बंद कर दिया। शिष्यों ने जाकर गुरु जी से शिकायत की। तब रामानन्द ने कबीर को बुलाकर पूछा, 'कबीर तुमने ऐसा क्यों किया?' तब कबीर ने फ़रमाया, 'क्या पानी डाल-डालकर पवित्रता हासिल की जा रही है। मर्यादा में हर कार्य ठीक हुआ करता है।' इस पर रामानन्द ने सोचा कि बात तो कबीर की ठीक है। सब शिष्यों को समझा-बुझाकर वापस भेज दिया तथा भविष्य के लिए एक मर्यादा बाँध दी। कबीर से कहा, 'आगे से तुम लंगर में पानी की सेवा मत करना। पितरों के तर्पण के वास्ते सुबह दूध ले आया करो।'

दूसरे दिन कबीर दूध लेने के लिए चले गए। शहर के बाहर जाकर

मरे हुए जानवरों की हड्डियों पर लोटा रखकर बैठ गए। उधर तर्पण का समय होने वाला था। कबीर के न पहुँचने पर शिष्यों ने गुरु रामानन्द से जाकर प्रार्थना की, 'महाराज! कबीर अभी तक दूध लेकर नहीं आया है।' उन्होंने फ़रमाया, 'जाओ! जाकर उसे तलाश करके लाओ।' हुकम पाकर शिष्य कबीर की तलाश में निकल पड़े। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शहर से बाहर हड्डियों के ढेर के पास कबीर को बैठा पाया। वापस लौटकर गुरु रामानन्द को सारी बात बता दी। रामानन्द जी शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ कबीर जी समाधि लगाए हड्डियों के ढेर के पास बैठे थे।

गुरु जी ने कहा, 'कबीर क्या कर रहे हो?' कबीर जी ने कहा, 'इनसे दूध माँग रहा हूँ, ये दे नहीं रही है।' रामानन्द जी बोले, 'क्या तेरी बुद्धि खराब हो हुई है, यह मरे हुए जानवर कैसे दूध दे सकते हैं?' कबीर जी ने कहा, महाराज! जब हड्डियाँ दूध नहीं दे सकतीं तो ग्रहण कैसे कर सकती हैं। रोज़ाना जो पितरों के प्रति तर्पण किया जाता है, वह कैसे उन तक पहुँच सकता है। यह केवल पाखण्ड बना रखा है।'

तेरे चौदह सौ चौरासी चेला, उन मध्ये हम नाहीं।
हम तो लेवें सत का सौदा, पाखण्ड पूजें नाहीं।।
जो तैं जाना पारब्रह्म, वह हम जानी माया।
अलख पुरख को भजे कबीरा, भेद किसे नहीं पाया।।

इस पर रामानन्द जी ने सब शिष्यों से कह दिया कि कबीर पर किसी प्रकार की कोई पाबन्दी नहीं है, जैसे इसकी इच्छा हो विचरे। प्रेमी इनको ऐसे शिष्य चाहिएं जैसे कबीर था।''

साधारणत: संसारियों का यह विश्वास है कि सन्तों, महात्माओं के दर्शन करने और उनके चरणों में बार-बार साष्टाँग प्रणाम करने से ही जीव का कल्याण हो जाता है, परन्तु सन्त मत ऐसा नहीं बतलाता। सत्पुरुषों का फ़रमान है कि जब तक जीव इस जीवन में उनके बताए हुए रास्ते पर चलने के लिए सत् करनी नहीं करता, उनके उपदेशों को जीवन में नहीं अपनाता, तब तक केवल

दर्शन–भेंट और दण्डवत प्रणाम करने से कल्याण नहीं हो सकता। इस बात का स्पष्ट निर्णय उपरोक्त घटना में मिलता है।

26

श्री रामलाल नारंग, देहरादून

(1) तपोभूमि का चयन

परम पावन भागीरथी और कालिन्दी के मध्य स्थित इस दून की साफ धुली सी हरी-भरी घाटी को उत्तराखण्ड तापस भूमि का एक श्रेष्ठ भाग ही कह सकते हैं, जिसके एक ओर हिमालय के बर्फ़ानी शिखर और दूसरी तरफ़ शिवालिक की हरियाली युक्त पहाड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यहाँ के परम्परागत विश्वास के अनुसार इस पुण्य भूमि को आचार्य द्रोण के आश्रम से सम्बन्धित बताया जाता है।

गुरु नानक देव जी की परम्परा से सम्बन्धित गुरु रामराय जी ने भी इसे तपस्या के लिए चुना और यहाँ गुरुद्वारे की स्थापना की। अब तो इसके दामन में और भी अनेक नामधारी आश्रमों की बाढ़ सी आ गई है।

इन सबके होते हुए भी दैववश अप्रैल 1953 में देहरादून शहर से सात मील दूर उत्तर में रिस्पना नदी के तट पर पूज्य श्री मंगतराम जी श्री महाराज का तम्बू लगा। इन नामधारी आश्रमों को देखकर न जाने इस अनोखे फ़कीर को क्या सूझी। श्री महाराज जी ने कहा कि कल प्रातः आठ बजे तपोभूमि का स्थान देखने चलेंगे। दूसरे दिन प्रातः आठ बजकर तीन मिनट हुए थे, संयोगवश देहरादून से प्रेमियों के आने में देर हो गयी। श्री महाराज जी उठ खड़े हुए और चलने को कहा। मैं और अन्य प्रेमी थैला इत्यादि उठा ही रहे थे कि देखते ही देखते गुरुदेव फरलाँग भर आगे निकल गए। उनके पतले-दुबले शरीर की तेज़ी देखकर हम सब हैरान थे। रास्ते में वर्षा की वेग भरी रिस्पना नदी पार करनी थी। कई बार वृद्ध प्रेमियों को कन्धे पर उठाकर ले जाना पड़ा। युवक लाइन बाँधकर एक दूसरे को हाथ पकड़कर पार जा रहे थे। हम सब प्रेमी नदी किनारे पहुँचे ही थे कि वह फ़कीर तेज़ जल के बहाव को चीरता हुआ आसानी से पार निकल गया।

एकदम उनके पिछले दिन के वचन ध्यान में आ गए। उन्होंने कहा था कि जिसका मन स्वस्थ नहीं और इन्द्रियाँ सबल हैं वह जीव किस काम का। यह डेढ़ मील की यात्रा जो नदी को पार करते हुए एक घंटा ले लेती थी। केवल 25 मिनट में ही समाप्त हो गई। तपस्या भूमि की वाटिका को देखकर हम सब प्रेमी स्तब्ध रह गए। ऐसे लगा मानो प्रकृति माँ ने वर्षों पहले यह उपहार बनाना आरम्भ कर दिया था। पचास के करीब ऊँचे-ऊँचे आम के वृक्ष खड़े थे। इसमें चार जगह मीठे जल के चश्मे बह रहे थे। मसूरी की चढ़ाई आरम्भ होते ही नदी के दामन में पहाड़ों से घिरी कितनी गम्भीर और शाँत थी यह वाटिका। धरती के मूक सेवा रूप के साथ गहरा विचार इस स्थान पर उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। श्री महाराज जी स्वाभाविक रूप से बोले, ''देखो, यह पीपल का पेड़ रुण्ड-मुण्ड कर दिया है। अजाड़ियों (चरवाहों) ने पत्तों से नँगा कर दिया है, टहनियाँ तोड़ डाली हैं। जब इसकी रक्षा होगी तो यह इस रियाज़तगाह (तपस्या भूमि) को और भी ऊँचा कर देगा।''

बड़ी दूर की बात थी वह। हम मूर्ख समझे थे कि श्री महाराज जी अब केलाघाट छोड़कर यहाँ अपनी रिहायश रखेंगे। यह तय हुआ कि कमरा कहाँ बनेगा और लँगर कहाँ। मुँह उनका पूर्व की ओर रहेगा और उनमें शीशे इत्यादि नहीं लगेंगे।

हमको केलाघाट वापस पहुँचने में उतना समय भी न लगा जितना जाने में लगा था। उस साधु शरीर में तो थकान का नाम ही न था। एक प्रेमी ने विचार पेश किया, 'महाराज जी! आश्रम बन जाने के बाद तो हर वर्ष आप देहरादून आया ही करेंगे?' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! फ़कीरों को तुम ऐसा फंदा डालकर बाँध नहीं सकते। यह आश्रम तो तुम्हारे लिए है।''

'आश्रम हमारे लिए! श्री महाराज जी, यहाँ तो आश्रमों की भरमार है।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! यह आश्रम इसलिए चाहिए क्योंकि वे आश्रम नाम मात्र के रह गए हैं। वास्तव में वे तफ़रीगाह और

अय्याशघर बन गए हैं। आदर्श आश्रम तो रियाज़तगाह का नाम है।''

एक प्रेमी ने पूछा, 'महाराज जी! निन्दा का क्या स्वरूप है?' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''सोने को किसी भय से पीतल कहना और पीतल को सोना कहना निन्दा है। सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करना निन्दा नहीं हैं। सब न्यायालयों में, सत्संगों में और सन्तों के पास तुमको सत्य-असत्य का निर्णय मिलेगा, उसे निन्दा नहीं कहा जा सकता।''

प्रेमी ने कहा, 'कटु सत्य भी तो श्री महाराज जी, बुरा कहा जाता है।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! सत्य कटु ही होता है, चाहे कितना ही हेर-फेर से कह लो। हाँ! सबसे बड़ी बात यह है कि झूठ के सामने अपना सच्चा आदर्श पेश करो। तपोभूमि के बारे में तुम्हारी संगत से ऐसी ही आशा की जाती है कि तुम इसका आदर्श पेश करोगे।''

27

श्री हेमराज गेरा, देहरादून

(1) अन्त समय 'राम' का जाप

सितम्बर का महीना था। सायंकाल चार बजे का समय होगा। अचानक एक परिचित प्रेमी मेरे पास आए और कहने लगे, 'यदि तुम चीथड़ों में अपने आप को छिपाए एक महान विभूति के दर्शन करना चाहते हो तो मेरे साथ चलो। परन्तु समय हो गया है इसलिए शीघ्र ही चलना चाहिए।' मैंने चलने के लिए इच्छा प्रकट की और हम दोनों 15 मिनट में ही शहर के बाहर एक बग़ीचे में जा पहुँचे।

उद्यान के एक खस्ता से टीनपोश के नीचे अकेले मकान के बरामदे में कई नर-नारी जमा थे। उनके सामने कमज़ोर काया वाले पगडी ओढ़े एक बुज़ुर्ग सफेद और नितान्त सादे कपड़ों में धरती पर बिछी चादर पर ही विराजमान थे। चेहरा कुछ पीला सा परन्तु गम्भीर, आँखों में चमक के साथ लाली भी दिखाई पड़ रही थी। उनके नज़दीक ही हम एक तरफ़ बैठ गए। हमारे आने और बैठने को उन्होंने बड़ी गौर से देखा, फिर तुरन्त ही आँखें बन्द करके गहरी मुद्रा में चले गए ऐसा प्रतीत हुआ, जिसको मेरे लिए उस वक्त समझना मुश्किल रहा।

उस समय सत्संग हो रहा था और सेवक भगत बनारसी दास एक पुस्तक से वाणी का पाठ कर रहे थे। वाणी पद्य में थी किन्तु सरल थी और गूढ़ विषयों को अपने अन्दर छिपाए हुए थी। आरती के पश्चात् प्रसाद वितरण हुआ और थोड़ी देर में करीब-करीब सभी लोग चले गए, केवल हमारे सहित 4-5 व्यक्ति शेष रहे होंगे। वह दुबला-पतला बुज़ुर्ग बरामदे में उसी आसन पर बैठा रहा।

एक तरफ़ बैठे चुस्त प्रकृति के नौजवान ने प्रश्न किया, 'महाराज जी!

क्या पेड़ और पौधों में भी महसूसात की शक्ति होती है।' श्री महाराज जी ने कहा, ''हाँ, है। परन्तु मनुष्य के मुकाबले में बहुत ही कम।'' इसके बाद उसने और भी कई प्रश्न पूछे और उत्तर मिलने पर वह व्यक्ति उनका मिलान कभी-कभी पुस्तक से भी करता हुआ देखा गया। वह बुज़ुर्ग प्रश्नों का उत्तर केवल दो-चार शब्दों में ही तुरन्त दे देते थे। इसी तरह एक दूसरा व्यक्ति बोला, 'महाराज! आपका स्वास्थ्य तो ठीक है? आप बीमार रहे प्रतीत होते हैं।' हल्की सी मुस्कान के साथ श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''काफी अरसे से यह ऐसे ही हैं। नई जगह लोग इन्हें मरीज़ समझ लेते हैं।''

पूछने वाला व्यक्ति चुप हो गया। कुछ देर बार एक तीसरे सज्जन ने प्रश्न किया, 'महाराज जी! अन्त समय में राम का भजन कैसे हो सकता है? इसकी कोई युक्ति आप बतलाएँ, क्योंकि शास्त्रों का कथन है - **अन्त मता सो गता।'**

श्री महाराज जी तुरन्त बोले, ''सुनो प्रेमी! जब मनुष्य का आखिरी समय करीब होता है तो प्रायः सगे सम्बन्धी उसके इर्द-गिर्द जमा हो जाते हैं और कई तरह के पाठ पढ़कर सुनाते हैं। बूढ़ा यदि बड़ी उम्र का हो तो यह भी कहते हैं कि कहो राम, राम-राम कहो। मतलब तुम्हारे वाला ही होता है।'' फिर एक हल्का सा कहकहा लगाया (मानो अन्तिम समय के भय से मुक्त हों।) फिर बोले, ''ओ पगलो! सारी उमर तो इसने तुम्हारा जाप किया, भला अब 'राम' कैसे कहे। जीवन भर तो इसकी वृत्तियाँ तुम्हारी ओर लगी रहीं, अब 'राम' का जाप कौन करे। प्रेमी, यदि चाहते हो कि तुम्हें सन्तोष मिले और अन्त सुखदाई हो तो अपने जीवनकाल में ही 'राम' का भजन करो।'' इतना कह कर वह चुप हो गए और सन्नाटा छा गया।

कुछ देर बाद वह उच्च हस्ती अपनी मस्ती में गुनगुनाने लगी और कई शबद बोले। उनमें से एक यह भी था -

तेरा कोई संगी ना साथी, नित साजन जायें अकेला।
'मंगत' उठ प्रभु नाम सिमर लो, यह झूठ जगत का मेला।।

28

डॉ. मदन मोहन, देहरादून

(1) सरलता की मिसाल

माह अप्रैल 1951 की बात है, मेरे मित्र श्री ओम कपूर ने सूचना दी कि वह फ़कीर आया हुआ है जिसके बारे में ज़िक्र किया था कि उनकी बोली समझ में नहीं आती। ये चकरौता रोड पर श्री दीपचन्द खजाँची के बाग़ में ठहरे हुए हैं।

बात कुछ इस तरह से थी कि एक दिन ओम कपूर जी के घर पर बैठे हम दो-चार मित्र सत्संग के बाद बातचीत कर रहे थे, उन सन्तों और मठों के बारे में जो आधुनिक काल में भारत में थे और जिनके बारे में हम लोगों का व्यक्तिगत अनुभव था।

एक महात्मा थे जो जाड़े के दिनों में केवल कोपीन ही पहनते थे और बर्फीले स्थानों में भी जाकर रहते थे। क्या इसी का नाम आध्यात्मिक प्रगति और ईश्वर भक्ति है? एक दूसरे थे जो चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध थे। उनके चेले-चाँटों ने अनर्थ मचा रखा था, परन्तु महात्मा जी उनसे कुछ कहते ही नहीं थे। तीसरे महात्मा भी थे जिनका दुनिया में खूब प्रचार चल रहा था परन्तु अपनी देह को संवारने में ही उनका काफी व्यय हो जाता था। इस प्रकार अनेक महात्माओं की विवेचना हो रही थी। इसी दौरान ओम कपूर जी ने जिस फ़कीर के बारे में सूचना दी थी वह समतावाद के प्रवर्तक महात्मा मंगतराम जी ही थे।

दोपहर बारह बजे यह सूचना मिली थी। साढ़े बारह बजे मेरे साथी डा. राम प्रकाश मेरे पास आ पहुँचे और कहा, 'भाई ! वह महात्मा जी आए हुए हैं।' मैंने कहा कि ओम जी मुझको बता गए हैं। उन्होंने पूछा, 'कब चलोगे?' तय हुआ कि खाना खाकर तुरन्त चला जाए, क्योंकि हम डाक्टरों के पास यही समय खाली सा होता है। इसलिए दोपहर दो बजे हम दोनों दीपचन्द खजाँची

के बाग़ में पहुँचे। वहाँ घुसते ही गेट के पास माली से पूछा तो पता लगा कि गेट के दूसरी ओर जो कच्ची सी छोटी सी बरामदे वाली कुटिया है उसी में वे महात्मा जी ठहरे हुए हैं। मैंने माली से पूछा, 'क्या हम इस समय उनसे मिल सकते हैं?' उसने कहा, 'जी हाँ! वे तो हर समय यहीं बैठे रहते हैं।'

मुझे एक-दो बार सन्तों के पास जाने का ऐसा अनुभव भी था, जबकि उनके साथ रहने वाले शिष्य या स्वामी इत्यादि कह देते हैं कि वे आराम में हैं या आज नहीं मिल सकते, बहुत काम में हैं, पर्ची पर नाम लिखकर भेजो इत्यादि; मानो सन्त दरबार में भी आदमी को देखकर आने की इजाज़त मिलती हो।

जैसे ही हम लोगों ने बरामदे के सामने साइकिलें खड़ी की, श्री महाराज जी लेटे थे, उठकर बैठ गए। पगड़ी सिर पर रख ली। हम लोगों के प्रणाम का जवाब उन्होंने ज़मीन के पास ही हाथ जोड़कर सरल स्वभाव से दे दिया। हमने देखा कि एक सीधा-सादा गाँव का सा आदमी एक पगड़ी, कुर्ता और तहमद पहने चटाई पर बिछे कम्बल पर बैठा है। बड़ी सादगी है उसके व्यवहार में। सन्तों वाले बड़प्पन का कोई सवाल ही नहीं है। उनमें कोई ऐसी चीज़ दिखाई नहीं पड़ी जिससे ऐसा भाव प्रतीत होता हो कि मैं बड़ा हूँ, बड़ा भारी ज्ञानवान हूँ अथवा जो लोग मेरे पास आए हैं उनसे मैं ऊँचा हूँ। पहले 3-4 मिनट का मानसिक विश्लेषण यही था।

नाम पता पूछने के बाद श्री महाराज जी ने कहा, ''प्रेमी जी! कुछ सत्विचार करो।'' हमने कहा, 'महाराज जी! हम क्या सत्विचार करें, आप ही कुछ बताइये। हम तो इसीलिए आपके पास आए हैं।' फिर क्या बात चली, किस प्रकार चली ठीक से कुछ याद नहीं है। बातचीत होते-होते श्री महाराज जी ने बतलाया कि सायंकाल इस समय सत्संग होता है, आया करो। उस दिन सायंकाल को हम लोग सत्संग में सम्मिलित हुए और बड़े खुश होकर घर लौटे। फिर तो नित्य का यह नियम बन गया कि दो बजे श्री महाराज जी के चरणों में हाज़िर हो जाना और सत्संग समाप्त होने के बाद सायंकाल 6 बजे से

6:30 बजे के बीच अस्पताल काम पर वापस पहुँच जाना।

एक धार्मिक परिवार में जन्म लेने के नाते बचपन से ही सत्संग, स्वाध्याय व सन्तों के सम्पर्क का बहुत अवसर मिला था। अनेकों सन्त देखे थे, परन्तु ऐसा एक भी न मिला था जो अपने साथ बराबर वाले की तरह मिला हो। सब में ही कुछ ऊँचेपन का भाव था। हर मनुष्य के साथ प्रेम करना, निजी जीवन में सादगी, समस्त भोग सामिग्रियों से रहित जीवन, हर घड़ी दूसरों की सेवा में तत्पर, हर समय दूसरों के कल्याण का भाव तो अन्य किसी सन्त के जीवन में देखने को मिला ही नहीं। बाहर के रहन-सहन और व्यवहार को देखकर आजकल के सन्तों जैसा आडम्बर और बड़प्पन का आभास तक नहीं होता था। इस सादे व्यक्तित्व में ये ही महापुरुष था जो संसार में अपनी प्रभुता और आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी उच्च स्थिति को छिपाए हुए, झुलसे हुए प्राणियों को शीतलता पहुँचाने में संलग्न था।

प्रथम मिलन में ही ऐसा लगा मानो मेरे मन की साध मिल गई हो। मेरे मन का आदर्श पुरुष मिल गया और मिल गया मेरी बाँह पकड़कर पार लगाने वाला। किन्तु क्या श्री महाराज जी मुझ जैसे पामर को इस लायक समझेंगे कि मेरी बाँह पकड़कर मुझे भी रास्ते पर चलाते-चलाते अपनी जैसी स्थिति प्राप्त करा दें, जहाँ हर समय आनन्द ही आनन्द, समता, समस्त सांसारिक भोगों और सुखों से उपरसता, यहाँ तक कि अपने शरीर से भी उपरामता हो?

अन्त में यह कहता हूँ कि आज तो श्री महाराज जी के पास बैठकर बीती हुई वे घड़ियाँ, आपस का वह व्यवहार और बातचीत, गुरुदेव की वह सारी बातें और उनके निजी जीवन का वह आदर्श ही है जो हम जैसे झुलसे हुए हृदयों को एक मात्र अपनी याद के दो आँसुओं से शीतल कर देता है। हृदय एकदम शीतलता महसूस करता है। मेरे मालिक की याद एक बार फिर यह ढाढंस बँधाती है कि घबराओ नहीं, हम तुम्हारे साथ हैं, पर चलो तो सही। कितना भाग्यशाली कहूँ मैं अपने आप को जिसने ऐसा लामिसाल मुर्शिद पाया।

29

श्री वज़ीर चन्द लूथरा, श्रीगंगानगर (राजस्थान)

(1) सच्ची श्रद्धा ही असली भेंट

यह घटना सितम्बर 1951 की है। श्री महाराज जी अबोहर में पधारे हुए थे। प्रेमियों ने उनके ठहरने का प्रबन्ध जौहड़ी मन्दिर में किया हुआ था।

एक सज्जन ने मुझे सूचना दी कि एक बड़े उच्च कोटि के महात्मा जौहड़ी मन्दिर में ठहरे हुए हैं। प्रतिदिन वहाँ सत्संग भी होता है। दास ने वहाँ जाकर उनके दर्शन करने का निश्चय कर लिया। पहले मैं यह बताना ठीक समझता हूँ कि श्री महाराज जी के पास जाने से पहले मैं एक अन्य गुरु से दीक्षा ले चुका था। उसका पूरा हवाला देना मैं उचित नहीं समझता क्योंकि श्री महाराज जी से मिलने के पश्चात् उस दरबार को मैं पूरी तिलाँजली दे चुका था। वहाँ पूरी तरह गुरुडम फैला हुआ था, यहाँ तक कि सोने-चाँदी तक भेंट वहाँ देनी पड़ती थी। अँधेरे का पता मनुष्य को तभी लगता है जब चाँदनी का अनुभव होता है।

जब मैंने श्री महाराज जी के प्रथम बार दर्शन किए तो उनका सादा पहनावा देखकर और उनके तर्कपूर्ण प्रश्नों के उत्तर सुनकर मन उनके चरणों में समर्पित हो गया। ऐसा प्रवचन दास ने इससे पहले कभी नहीं सुना था। मैं दर्शन करने से पहले श्री महाराज जी के लिए एक ऊनी जुराब (मोजा) घर से बनवाकर ले गया था, यह सोचकर कि श्री श्री महाराज जी के दरबार में कुछ भेंट तो अवश्य ले जानी चाहिए। खाली हाथ जाना ठीक नहीं है।

जब वह छोटी सी भेंट परम शिष्य भक्त बनारसी दास जी के द्वारा श्री महाराज जी के आगे प्रस्तुत की गई तो उन्होंने फ़रमाया, ''प्रेमी! इन्होंने जुराब आज तक नहीं पहनी। इसे वापस ले जाओ, तुम्हारे काम आएगी। तुम्हारी सच्ची श्रद्धा की भेंट ही इस दरबार में काफी है।'' इन शब्दों से मेरे मन पर

बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और मुझे झंझोड़ कर रख दिया। उसी समय मन में यह विचार आया कि यही वह सच्चा दरबार है जहाँ तेरा कल्याण होगा। आज प्रभु की तेरे ऊपर विशेष कृपा हुई है कि गुरुडम से तू बच गया है। उसी दिन से मैंने भी जुराब न पहनने का निश्चय कर लिया तथा फिर हमेशा-हमेशा के लिए गुरु श्री महाराज जी के चरणों का दास बन गया।

30

श्री जोगिन्दर पाल ग्रोवर, गोराया (पंजाब)

(1) गुरु कृपा से विकार से मुक्ति

हमारा परिवार काहनूवान, ज़िला गुरदासपुर में रहता था। श्री महाराज जी की विशेष कृपा से हमारे दादा श्री निरंजन दास जी, पिता श्री हकूमत राय जी, चाचा श्री जसवन्त राय व हकीम खिदमत राय जी, बड़े भ्राता श्री किशोरी लाल व ओम प्रकाश जी सभी को उनसे दीक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एक वृत्तान्त हमारे दादा श्री निरंजन दास जी के बारे में वर्णन करना चाहता हूँ। जब वह दीक्षा लेने हेतु श्री श्री महाराज जी के चरणों में हाज़िर हुए तो श्री महाराज जी ने उनको आहार, व्यवहार व शुद्ध जीवन यापन के बारे में हिदायतें फ़रमाई। दादा जी श्वास रोग से पीड़ित थे और वह नियमित रूप से दवा के रूप में मदिरा का सेवन करते थे। उन्होंने श्री महाराज जी को अपने रोग के बारे में बतलाया और मदिरा सेवन को अपनी मजबूरी बताकर इसके लिए कुछ छूट माँगी, श्री महाराज जी ने फिर हिदायत दी कि इसकी आज्ञा तो बिल्कुल नहीं दी जा सकती। आगे कहा, ''प्रेमी! जो कारण आप बता रहे हो उसके वास्ते शायद प्रभु कृपा से ज़रूरत ही न पड़े।''

इसके पश्चात् दादा जी का एक नया जीवन प्रारम्भ हुआ जो कि पूर्णत: सात्विक व प्रभु परायण था। उनका स्वास्थ्य भी ठीक हो गया। दो वर्ष व्यतीत होने के बाद एक रात दादा जी अचानक बीमार हो गए। उनको फिर श्वास रोग ने आ घेरा। तकलीफ़ बढ़ने लगी। घर में दोनों चाचा हकीम थे। पिता जी व स्वयं दादा जी भी हिकमत जानते थे। सभी सम्भव उपचार किये गए, परन्तु दादा जी की हालत बिगड़ती ही गई। रोग का वेग इतना तीव्र होता देखकर सभी लाचारी महसूस कर रहे थे। रात के दो बजे के लगभग सभी को लगने लगा कि शायद इनका अब अन्तिम समय आ गया है। महामन्त्र का

उच्चारण आरम्भ किया गया। दादा जी बोल नहीं पा रहे थे, परन्तु कुछ कहना चाहते थे। बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा कि श्री महाराज जी को दिया वचन तोड़ने की सज़ा उनको मिली है। उन्होंने यह भी बताया कि सांयकाल उनका घनिष्ठ मित्र सरदार बेला सिंह अपने पौत्र के जन्म का समाचार देने उनके पास आया था। साथ में वह मदिरा भी लाया था। बहुत आग्रह करके उसने थोड़ी सी मदिरा का सेवन उनको भी करवा दिया था।

तत्पश्चात् उन्होंने श्री महाराज जी से क्षमा याचना हेतु प्रार्थना करने की इच्छा प्रकट की। फिर परिवार सहित श्री श्री महाराज जी से क्षमा करने के लिए प्रार्थना की गई और साथ ही महामन्त्र का जाप भी किया गया। सच्चे मन से की गई प्रार्थना स्वीकार हुई और दादा जी धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे। इस घटना के बाद उन्होंने कभी भी मदिरा का सेवन नहीं किया। श्री महाराज जी के बताए गए मार्ग पर चलते हुए 97 वर्ष की दीर्घ आयु में उन्होंने देह का त्याग किया।

31

श्री किशोरी लाल महंगी, जम्मू

(1) सिमरन के लिए दिशा की पाबन्दी नहीं

एक बार श्री श्री महाराज जी जम्मू में ठहरे हुए थे। मैं उनके दर्शनों के वास्ते गया। श्री महाराज जी के पास बैठने पर उन्होंने मुझसे कहा, ''प्रेमी! कोई सवाल करो।'' उस समय मैंने निम्नलिखित प्रश्न उनसे किया।

प्रश्न – हिन्दू लोग संध्या करने के लिए प्रातः काल सूर्योदय की ओर और सायँकाल सूर्यास्त दिशा की ओर मुँह करके संध्या करते हैं। आपने भी सुबह व सायँकाल सत् सिमरण के लिए आज्ञा दी है। क्या संगत समतावाद में भी किसी विशेष तरफ़ मुँह करके सत् सिमरण करने की पाबन्दी है?

उत्तर – प्रेमी जी! सत् सिमरण करने के लिए कोई पाबन्दी नहीं है। जब ईश्वर सर्व-व्यापक हैं और सम स्वरूप में हर जगह मौजूद हैं तो किसी खास तरफ़ मुँह करके सिमरण करने की पाबन्दी क्यों? इसलिए, आप किसी भी तरफ़ मुँह करके सिमरण कर सकते हैं।

32

श्री राम जी फोतेदार, दिल्ली

(1) निर्मल खुराक से धर्म मार्ग में प्रगति

मैं मटन (काश्मीर) का रहने वाला हूँ। सत्गुरुदेव महात्मा मंगतराम जी के पवित्र दर्शन पहली बार जून 1940 में हुए, जबकि वे पहली बार जलमादा, कोहाला आदि होते हुए चिनारी (अब पाकिस्तान में) पधारे थे। रात्रि मन्दिर की धर्मशाला में व्यतीत करके भगत बनारसी दास जी के साथ मेरे डेरे पर आए। उनके प्रथम दर्शन से ही मैं अति प्रभावित हुआ और ऐसा अनुभव हुआ मानो साक्षात् ईश्वर ही साकार रूप में मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कर रहे हों। इसी कारण मुझे वहाँ के हर प्रकार के हालात की जानकारी थी। दो-तीन दिन महाराज जी मेरे पास ही ठहरे। वे रात्रि को अपने नित्य प्रोग्राम के अनुसार नदी किनारे जाया करते थे। दास की प्रार्थना स्वीकार करते हुए उन्होंने वहाँ ही दूसरे दिन मुझे मन्त्र-दीक्षा देकर कृतार्थ कर दिया।

उनकी महानता के बारे में सुनकर चिनारी के लोगों में उनके प्रति श्रद्धा और सद्भावना जागृत हुई। बाज़ार के बीच चौबारे में महाराज जी के ठहरने का प्रबन्ध किया गया। रोज़ाना सत्संग होने लगा। काफी जनता उनके सत्संग से लाभान्वित होती रही। रात्रि को महाराज जी श्री गोकुलचन्द महाजन के चौबारे में, जो कि जेहलम नदी के किनारे पर था, अपनी तपस्या में लीन रहते थे।

महाराज जी के वचनों के प्रभाव के कारण वहाँ की जनता के विचारों तथा भावनाओं में परिवर्तन आने लगा। दैवयोग से मेरे घरेलू हालात में परिवर्तन आया। मेरे पिता जी तथा भरजाई जी का देहान्त हो गया और विवश होकर मुझे अक्टूबर माह, सन् 1941 में वापस मटन जाना पड़ा। घर की सारी व्यवस्था को मुझे ही संभालना पड़ा। इस प्रकार मैं चिनारी संगत से अलग हो गया।

सत्गुरुदेव जब काश्मीर पधारे तो पुनः उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् 1947 में महाराज जी के मटन में हमारे घर पर पधारने की प्रार्थना स्वीकार की। अनन्तनाग में श्री रघुनाथ भट्ट ने, जो कि उस इलाके के डिप्टी कमिश्नर थे, अपने यहाँ ठहरने की प्रार्थना की, परन्तु महाराज जी ने कहा कि इनको तो अपने प्रेमी के पास मटन ही जाना है। गुरुदेव की मेरे ऊपर यह बड़ी कृपा दृष्टि थी। इसके पश्चात् श्री रघुनाथ भट्ट अपने अन्य दो साथियों सहित, महाराज जी के दर्शनार्थ दास के गृह पर पधारे। कई घण्टों तक उनके सत्संग का लाभ उठाते रहे। महाराज जी की सादगी, सच्चाई, नियमित जीवन और सबके प्रति सद्भावना का लोगों के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

एक दिन महाराज जी ने काश्मीरी पंडितों को समझाया कि आप लोग माँस का सेवन बन्द करें, यह ऋषि भूमि है। काश्मीर कश्यप ऋषि की तपोभूमि है। यद्यपि आप लोगों का आपस में प्रेम, मोहब्बत व सलूक है लेकिन अगर निर्मल खुराक हो तो बहुत कुछ धर्म के मार्ग में आप लोग आगे उन्नति कर सकते हो। उन्हें चेतावनी भी देते रहे कि तूफान से बचाने वाले जीव के अपने कर्म ही हैं। कई बार इस भूमि पर तूफान आए पर आप लोग बचते रहे हो, अब भी हालात बिगड़ रहे हैं। इसलिए बाहोश हो जाओ और पुरातन ऋषियों की शिक्षा को ग्रहण करो। तुम्हारे शुभ कर्म ही तुम्हारी रक्षा करने वाले हैं।

श्री महाराज जी बातों ही बातों में आने वाली घड़ी के बारे में सब कुछ बता रहे थे, परन्तु विश्वास किसको आता है। महाराज जी तो अंतर्यामी थे, सब कुछ जानते हुए भी इस बात को किसी को महसूस नहीं होने देते थे। महाराज जी के सामने कोई भी विचार रखा जाता था तो वे थोड़े से शब्दों में उसका समाधान पेश कर देते थे। प्रश्नकर्ता भी अपने प्रश्न का तर्कपूर्ण उत्तर सुनकर निरुतर हो जाता था। उनका ज्ञान, अनुभव और वाणी का प्रवाह आश्चर्यजनक था। पता नहीं कौन से शुभ कर्मों के फलस्वरूप हमें उनका सम्पर्क मिला। मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि चाहे हमको कितने ही जन्म धारण करने पड़े, परन्तु वे हमको जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य की प्राप्ति अवश्य करवाएंगे।

33

महन्त रतन दास जी, अहमदाबाद

(1) गुरुदेव के प्रथम शिष्य

सन् 1929 की बात है। भादों का महीना था। गुरुदेव रावलपिंडी में पधारे हुए थे। उन ही दिनों में सत् के जिज्ञासु श्री रतन दास जी, जो कि अहमदाबाद की कबीर गद्दी के महंत थे, किसी पूर्ण गुरु की तलाश में देश के कोने-कोने में फिरते हुए तथा मशहूर तीर्थों जैसे कि रामेश्वरम्, ऋषिकेश, बद्रीनारायण आदि का भ्रमण करते हुए पंजाब की तरफ़ पहुंच गए। कहीं कोई पूर्ण सन्त न मिलने के कारण काफी निराश थे। इसी हालत में रावलपिंडी शहर से कुछ दूर लई नदी के किनारे पहुँचे। एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए यह विचार मन में चल रहे थे कि क्या वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास जैसे ऋषियों को पैदा करने वाली यह भूमि सत्पुरुषों से खाली हो चुकी है, अब ऐसी हस्ती नज़र नहीं आती जो मन के अन्धकार को दूर कर सके।

श्री महाराज जी एकान्तवास के लिए लई नदी की ओर निकल जाया करते थे। एक दिन उन्होंने एक साधू को पेड़ के नीचे बैठे हुए देखा। गुरुदेव उनके पास जाकर खड़े हो गए। उस समय वे लिखने में व्यस्त थे, इसलिए गुरुदेव के आवगमन का उनको आभास नहीं हो सका। यह साधू कोई और नहीं बल्कि रतनदास जी ही थे। श्री महाराज जी अचानक बोलने लगे, ''महाराज! मन की कल्पना नित ही भटकाती रहती है। समझ में नहीं आता क्या करूँ। क्या ऋषियों-मुनियों की यह भूमि सत्पुरुषों से खाली हो चुकी है? क्या मन की अज्ञानता के अन्धकार को दूर करने वाला कोई नहीं रहा?''

महन्त रतन दास जी को जब यह शब्द सुनाई पड़े तो सामने सफेद खद्दर के कपड़ों में एक दुबले-पतले पुरुष को खड़े पाया। मन में सोचने लगे कि यह संशय तो मेरे मन के ही हैं। यह कोई साधारण पुरुष नहीं हो सकते। महन्त जी ने तुरन्त उठकर एक कपड़ा बिछाकर श्री महाराज जी से बैठने का

आग्रह किया। बैठने के पश्चात् महन्त जी ने कहा, 'महाराज जी! आपने जो प्रश्न किए हैं वह तो मेरे ही मन की शंकाएं हैं। इसलिए मेरा मन कह रहा है कि आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकते। कृपया मेरी परीक्षा न लीजिए। दास तो समझा था कि यह धरती सत्पुरुषों से खाली हो चुकी है, परन्तु आपके दर्शन से दिल को तसल्ली मिली है। आप सत्पुरुष दिखाई देते हैं।'

बातचीत के पश्चात् श्री महाराज जी के मुखारबिंद से वाणी का प्रवाह प्रारम्भ हो गया। वाणी सुनकर महन्त जी को ऐसा लगा मानो कबीर साहब स्वयं साखी सुना रहे हों। उन्होंने वहीं श्री महाराज जी से दीक्षा के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने कृपा करके उनकी प्रार्थना स्वीकार की। उनको वहीं पर दीक्षित किया गया। इस प्रकार महन्त रतन दास जी को श्री महाराज जी का प्रथम शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दीक्षा के पश्चात् महन्त जी ने गुरुदेव के चरणों में रहने के लिए प्रार्थना की, परन्तु श्री महाराज जी ने कहा कि अभी यह किसी को साथ नहीं ले जा सकते। फिर उन्होंने गुरुदेव से अहमदाबाद साथ चलने के लिए प्रार्थना की, परन्तु श्री महाराज जी ने साथ चलने के लिए भी मना कर दिया। इसके पश्चात् महन्त जी की प्रार्थना पर गुरुदेव ने गंगोठियाँ का पता बताकर सात दिन बाद आने की आज्ञा दे दी।

दीक्षा मिलने के पश्चात् श्री महाराज जी की कृपा से महन्त जी पर चार-पाँच दिन तक मस्ती सी छाई रही। परन्तु धीरे-धीरे वह मस्ती समाप्त हो गयी। नाम-जप के पश्चात् भी वह मस्ती वापस नहीं लौटी। बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा के सात दिन पूरे हुए। गर्मी का मौसम था, धूप काफी तेज़ थी। सफ़र भी काफी लम्बा था, परन्तु शाँति प्राप्ति की इच्छा लिए हुए गंगोठियाँ के लिए चल पड़े। काफी यात्रा आपको पैदल भी तय करनी पड़ी। गंगोठियाँ पहुँचने पर आपको पता चला कि गुरुदेव जंगल की तरफ़ गए हुए हैं। महन्त जी गाँव के बाहर ही एक पेड़ के नीचे प्रतीक्षा में बैठ गए। तेज़ गर्मी में पैदल चलने के कारण प्यास लगी हुई थी, परन्तु फिर भी किसी से पानी तक नहीं माँगा। जब श्री महाराज जी जंगल से वापस लौटे तो महन्त जी को वहाँ प्रतीक्षा करते पाया

उनकी श्रद्धा और तड़प को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और प्रेम पूर्वक उनको अपने साथ घर ले गए। वहाँ पहले उनको जलपान करवाया, फिर भोजन करवाया गया।

गंगोठियाँ में महन्त जी ने श्री महाराज जी से अनेक प्रश्न पूछकर अपने संशयों की निवृत्ति की। उनके प्रश्नों के उत्तर के रूप में वाणी का भी प्रवाह चलता रहा। उनकी सारी बौद्धिक शंकाओं का निवारण हो गया। अन्त में उन्होंने श्री महाराज जी से अपनी खोई हुई मस्ती को पुनः प्राप्त करवाने के लिए प्रार्थना की, परन्तु श्री महाराज जी ने कहा कि प्रेमी! प्रभु आज्ञा से जो कृपा होनी थी वह हो चुकी, अब स्वयं मेहनत करके उस मौज को प्राप्त करने की कोशिश करो। इन्हें हर समय हृदय में देखें और आशीर्वाद नित अंगसंग जानें। ये शब्द सुनकर महन्त जी ने जेब से घड़ी निकालकर श्री महाराज जी से गुरु-दक्षिणा के रूप में उसको स्वीकार करने के लिए प्रार्थना की। परन्तु श्री महाराज जी ने कहा कि तुम्हारी सत्श्रद्धा ही गुरु-दक्षिणा है। यह घड़ी तुम्हारे काम आएगी। आशीर्वाद पाकर महन्त जी वापस अहमदाबाद लौट गए।

अक्टूबर 1938 के वार्षिक सम्मेलन के पश्चात् अहमदाबाद आने के लिए महन्त जी ने पत्र द्वारा गुरुदेव से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके आप सम्मेलन के पश्चात् माघ माह में अहमदाबाद पहुँच गए। कुछ दिन आप महन्त जी के साथ कबीर मन्दिर में ही रहे। उसके पश्चात् महन्त जी श्री महाराज की इच्छानुसार शहर से 3-4 मील दूर एकान्त स्थान में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया। महन्त जी स्वयं ही गुरु चरणों में साथ रहकर उनकी सेवा करते रहे। यहीं पर '**चिरंजीव गोष्ठ**' और '**योग चिंतामणि**' नामक वाणी प्रकट हुई जिसको महन्त जी ने स्वयं लिपिबद्ध किया। अब यह वाणी ग्रन्थ श्री समता प्रकाश में उपलब्ध है। फरवरी 1939 में गुरुदेव वापस पंजाब पहुँच गए।

34

बाबू अमोलक राम मेहता, काला गुजराँ (पाकिस्तान)

(1) सत्पुरुष सर्वदृष्टा

(क)

सन् 1939 की बात है। सर्दी समाप्त हो चुकी थी। सत्गुरुदेव काला गुजराँ, ज़िला जेहलम में मेहता अमोलक राम जी के घर पधारे। वहाँ सत् विचारों से कस्बा निवासियों को तृप्त किया। एक दिन बाबू अमोलक राम जी गुरुदेव के चरणों में बैठे थे, साथ में एक अन्य प्रेमी राम प्रकाश दत्त भी बैठे थे। श्री महाराज जी फ़रमाने लगे, ''छलाँग लगाकर छत पर चढ़ना बहुत मुश्किल है। गिरोगे, टाँगें टूट जाएंगी। सीधे होकर चलो। जो साधन का तरीका बताया गया है उसके अनुसार चलो। सीधे रास्ते चलकर ही मंज़िल पर पहुँचा जा सकता है। मन को एकाग्र करने का सरल साधन है- सत् सिमरन का जो तरीका बतलाया गया है, जब तक उसका अभ्यास पक्का न हो जावे तब तक मन एकाग्र नहीं होता। इसलिए सत् सिमरन लाज़मी है, फिर मन स्वयं शाँत हो जाता है और ध्यान व समाधि अवस्था प्राप्त होती है। पहले ही आँखों को दबाने और कानों को बन्द करके जो ब्रह्म को देखना चाहते हैं वे नादान हैं। मन को एकाग्र करना अधिक ज़रूरी है। इसलिए अपूर्ण और अधूरे साधन को छोड़कर जो दीक्षा तुमको दी गई है उसे धारण करो।''

बाबू जी ने राधा स्वामी मत की दीक्षा पहले ली हुई थी। इसके बाद श्री महाराज जी से भी सत् साधन प्राप्त कर लिया था। मगर साधना अपनी पहली दीक्षा के अनुसार ही करते चले आ रहे थे। सत्पुरुषों से अन्दर की बात नहीं छुपी रह सकती। श्री महाराज जी ने बाबू जी को सही रास्ते पर लाने के लिए कृपा करते हुए स्वयं ही चेतावनी दे दी और आगाह कर दिया कि सही रास्ते पर चलकर ही सफलता मिल सकती है। सत्पुरुष फ़रमाया करते थे कि

फ़कीर चाहे हजारों कोस दूर बैठे हों परन्तु अपने शिष्यों पर हमेशा निगाह रखते हैं।

(ख)

यह उन दिनों की बात है जब श्री महाराज जी अन्न का आहार सूक्ष्म रूप में ग्रहण करते थे। उस समय उनकी भाभी जी आपका भोजन तैयार किया करती थीं, क्योंकि माता जी का स्वर्गवास हो चुका था। एक दिन जब आप तप के पश्चात् पीर ख़्वाजा जंगल से वापस लौटे तो भोजन तैयार होने पर आपकी भाभी जी ने थाली में परोसकर कमरे में रख दिया और कहा कि भोजन ग्रहण कर लें। आपने कहा कि अभी ठहर जाओ। थोड़ी देर के पश्चात् उन्होंने श्री महाराज जी से पुन भोजन ग्रहण करने के लिए आग्रह किया। आपने फिर थोड़ा ठहरने के लिए कहा।

इसके कुछ देर पश्चात् एक सज्जन आ गए और श्री महाराज जी को प्रणाम करके बैठ गए। श्री महाराज जी ने उनसे रोटी खाने के लिए आग्रह किया। उन्होंने जवाब दिया कि वह मन्दिर से खाना खाकर चले हैं। इस पर श्री महाराज जी ने पुनः कहा कि आठ-नौ मील का सफ़र पैदल तय किया है, भूख लग गई होगी। परन्तु उन्होंने कहा कि नहीं, भूख नहीं लगी है। इसके पश्चात् गुरुदेव ने अन्दर जाकर भोजन ग्रहण किया। भोजन कर लेने के पश्चात् जब गुरुदेव वापस लौटे तब उन सज्जन ने कहा कि वह दवाई लेने आया है। इस पर श्री महाराज जी ने उससे कहा कि अन्दर जाकर सन्दूकची से दवाई निकाल लेवें। दवाई लाकर उन्होंने दिखलाई। श्री महाराज जी ने उनको कहा कि इसको ले जाओ। थोड़ी देर बाद वह दवाई लेकर वापस चला गया।

जब वह दवा की बोतल लेकर चला गया तो अमोलक राम जी ने श्री महाराज जी से पूछा, 'महाराज जी! इस व्यक्ति को क्या बीमारी है जिसकी दवा लेने वह आया था?' इस पर आपने फ़रमाया, ''कुछ अर्सा हुआ यह रावलपिंडी में अपने भाई के घर पर ठहरे हुए थे। पड़ोस में एक व्यक्ति सख़्त

बीमार पड़ा हुआ था। इनके वहाँ पहुँचने की सूचना मिलने पर उसके रिश्तेदारों ने इनको बुलाया। जाकर उसको देखा गया। उसके सारे शरीर में पाक पड़ी हुई थी। दवाई बनाकर इस्तेमाल करवाई गई। दवाई से उसको आराम आ गया। मगर उसने पूरी सावधानी नहीं रखी इसलिए कभी-कभी फिर उस बीमारी का असर हो जाता है।'' फिर बाबू जी ने पूछा की पूरी बोतल उसको क्यों दे दी तो आपने फ़रमाया कि सारी दवाई ले जाने के लिए इसलिए कहा ताकि वह फिर न आवे।

बाबू जी ने पुनः श्री महाराज जी से अर्ज़ की कि उसको दवा का नुस्खा बताने की कृपा कर देते ताकि अगर फिर ज़रूरत पड़ती तो स्वयं बना लेता। इस पर श्री महाराज जी ने फ़रमाया कि अगर वह खुद दवा तैयार करेगा तो अन्धा हो जाएगा, इसलिए उसको नुस्खा नहीं बतलाया गया। उपरोक्त घटना से यह पता चलता है कि सत्पुरुष सर्व ज्ञाता और सर्व समर्थ होते हैं।

(2) सही इन्सान बनो

काश्मीर के इलाके में सराये सालहा शहर से थोड़ी दूर नहर के किनारे एक छोटा सा मन्दिर था। इससे ऊपर की ओर एक जंगल सा था जिसमें पेड़ों के बीच दो-तीन कुटियाँ चटाइयों की बनवाई गई थीं। यहाँ श्री महाराज जी को ठहराया गया था।

इस जगह पर मुसलमान पीर सैयद रिंदशाह दरवेश थे। वह कई बार दर्शनों के लिए आए। जब भी आते सजदा (प्रणाम) करके कई तरह से प्रश्न पूछकर अपने दिल को तसल्ली दिया करते थे। सत्पुरुष ने पीर साहब को सजदा करने से मना किया, परन्तु वह नहीं माने। उन्होंने अपना भूतपूर्व जीवन श्री महाराज जी के सामने खोलकर बयान कर दिया। श्री महाराज जी के बारे में उन्होंने कहा, 'मेरे पास एक शब्द नहीं है जिनके ज़रिए आपकी तारीफ़ कर सकूँ। आप चौदह तबक (लोक) के मालिक हैं। आपकी एक निगाह ही हमें बड़ी तसल्ली दे रही है। बेवकूफ लोग तास्सुब (धर्मान्धता) की वजह से

आपकी पहचान नहीं कर सकते। आप जैसे ला-मज़हब (मज़हब रहित) ही पैग़म्बर हुआ करते हैं। हमारे मज़हब में यह शब्द कहना जाइज़ नहीं, लेकिन यह कहे बग़ैर मैं रुक नहीं सकता। आपका यह गुलाम अंग्रेज़ सरकार का खास बन्दा है, जो काफी अर्से तक खुफिया महकमे में काम करता रहा है। हर मज़हब के अच्छे-अच्छे आदमियों से वास्ता रहा है। आपस में लड़ाइयाँ करवाना और फूट डालना हमारा काम रहा है। वास्तव में नेक बन्दा कहीं देखने में नहीं आया। काबुल, कंधार, काश्मीर, गिलगित यह सब इलाका मेरे ही हल्के में था। कोई भी अच्छा-बुरा काम ऐसा नहीं जो हमने न किया हो। अब आपको देखकर तबियत को चैन आया है। वली अल्लाह लोगों से दुनिया खाली नहीं है, यह यकीन अब हुआ है। मेरे लिए जो हुक्म हो करने के लिए तैयार हूँ। अगर हुक्म हो तो हिन्दू बन जाऊँ।'

पीर साहब के विचार सुनकर आपने फ़रमाया, ''हिन्दू, मुसलमान मत बनो। सही इन्सान बनो। मज़हब (धर्म) की तबदीली (परिवर्तन) में सच्ची खुशी नहीं है। हर एक रूह को सुख देने से दिल को राहत मिलती है। आराम चाहते हो तो दूसरों को आराम दो। तास्सुब छोड़ दो। जिस तरह वली अल्लाह (प्रभु परायण) हस्तियों ने दिल की शाँति हासिल की है वह ही तरीका अपनाओ। आहिस्ता-आहिस्ता रंग लग जावेगा। खुदा आपको अक्ले सलीम (श्रेष्ठ बुद्धि) बख़्शे।''

(3) मूर्ति पूजा और पुनर्जन्म

कप्तान यूसुफ खाँ एक दिन गंगोठियाँ में श्री महाराज जी के दर्शन हेतु सेवा में हाज़िर हुए। आप उस समय सत्संग हाल के बरामदे में विराजमान थे। बाबू अमोलक राम भी उनके साथ बैठे हुए थे। कप्तान साहब कुछ समय पहले ही मिलिट्री से रिटायर हुए थे। उनका श्री महाराज जी के साथ निम्नलिखित वार्तालाप हुआ।

कप्तान साहब - बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) के बारे में आपका क्या

ख़्याल है?

श्री महाराज जी - कप्तान साहब! रात-दिन जिस्म के ही बनाव श्रृंगार में लगे रहते हो या नहीं। क्या यह बुत-परस्ती नहीं। इसके अलावा जिस हस्ती का बुत है अगर तू उस हस्ती की तालीम पर अमल करता है तो यह वहदत परस्ती (ईश्वर परायणता) हुई, अन्यथा सब बुत-परस्ती है।

कप्तान साहब - हज़रत! तकबीर के बारे में आपका क्या ख़्याल है?

श्री महाराज जी - कप्तान साहब! कुरान शरीफ में यह दिया हुआ है कि नहीं कि ख़्वाहिश और ग़ज़ब (क्रोध) से मुबर्रा (मुक्त) होकर तकबीर पढ़?

कप्तान साहब - जी हाँ, दिया हुआ है।

श्री महाराज जी - तो यह बताओ कि यह लोग जो गायों और बकरियों के गले पर छुरी चलाते हैं क्या यह ख़्वाहिश और ग़ज़ब से मुबर्रा हैं?

कप्तान साहब - नहीं।

श्री महाराज जी - तो बताओ, यह क्या तकबीर हुई। तकबीर तो हज़रत इब्राहिम ने पढ़ी थी जिसने अपने लड़के के गले पर छुरी चलाई थी। वह ख़्वाहिश और ग़ज़ब से मुबर्रा थे।

कप्तान साहब - तनासख (पुनर्जन्म) के बारे में आपका क्या फ़रमान है?

श्री महाराज जी - कप्तान साहब! कुरान शरीफ में दिया हुआ है कि नहीं कि आकबत (प्रलय) के दिन रूहें उठेंगी और उनके अहमाल (कर्म) के मुताबिक दोज़ख (नर्क) या बहिश्त (स्वर्ग) मिलेगा?

कप्तान साहब - जी हाँ, दिया हुआ है।

श्री महाराज जी - एक व्यक्ति जिसके कर्म बहुत अच्छे हैं मगर जिस्म उसका खराब है। वह लूला-लंगड़ा है, काना है, और कई नुक्स हैं। उसे बहिश्त मिलेगा या नहीं?

कप्तान साहब - जी हाँ, मिलेगा।

श्री महाराज जी – अब बताओ, बहिश्त किस शरीर में मिलेगा? अगर वही जिस्म मिलता है तो उसको क्या बहिश्त मिला और अगर नया जिस्म मिलता है तो यही तनासख (पुनर्जन्म) है।

(4) फ़कीरों की निगाह में सब एक समान

(क)

27 अगस्त, 1946 को श्री महाराज जी मिलखानवाला से चलकर कालागुजराँ पधारे। दिन के समय गाँव से बाहर एक सुन्दर स्थान बनी बादयाँ जाकर पेड़ों के नीचे विराजमान रहते थे। सायँकाल के समय गाँव में वापस आ जाते थे। एक दिन जब आप बनी बादयाँ में बैठे थे तो एक गाँव का चौधरी नम्बरदार आपके पास आया और फ़रमाया, 'पीर जी! यह खादिम आपके रोज़ाना दीदार करता है। जिस ज़मीन पर रात को आप बैठते हैं वह ज़मीन इसी गुलाम की है। आप यदि हुक्म देवें तो इसमें से एक-दो बीघा में आपको बैठने के लिए तकिया (गद्दी) बनवा दिया जाए, आप वहीं ठहरें।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! तेरी बड़ी मेहरबानी जो तूने ऐसी पेशकश की है। ख़ुदा तुम्हें यकीने पाक बख़्शे जो कि इस कदर फ़कीरों के लिए नेक ख़्याल बनाया है। फ़कीर तकियों के हक में नहीं हैं। सारी दुनिया ही इनका तकिया है। फ़कीर एक जगह नहीं बैठा करते, न ही किसी जगह की पाबन्दी में आने वाले हैं। हिन्दू, मुसलमान सब ही इनके लिए एक जैसे हैं। किसी को किसी भेद दृष्टि से नहीं देखते। ज़ाते आला (ईश्वर सत्ता) सबमें एक जैसा है, यद्यपि जिस्म नाशवान हैं। सब को दिल की राहत की ज़रूरत है। वह कलबी सकून फ़कीरों के पास बैठने से मिलता है। उनकी अमली ज़िन्दगी सबको खुशी देने वाली होती है। सब ही एक ख़ुदा के बन्दे हैं। यह अलेहदगी खुदगर्ज़ लोग यानी भाई-मुल्ला डालते आए हैं। कमज़ोर अक्ल वाले लोग उनके पीछे चलकर खुदा की हस्ती को भूल जाते हैं। न कोई बुरा है, न अच्छा।

फ़कीरों के लिए बादशाह, ग़रीब, अमीर सब एक जैसे हैं। खुदा जाने, यह बढ़ता हुआ तास्सुब (धर्मान्धता) आगे क्या रंग लाएगा।''

नम्बरदार ने कहा, 'पीर जी! आपकी खरी-खरी बातें दिल पर बड़ा गहरा असर डाल रही है। फ़कीर किसी का लिहाज़ नहीं करते। आपकी दुआ ही आने वाली आफ़त से बचाए तो बचाए, वरना हालात बहुत नाज़ुक होते जा रहे हैं।'

गुरुदेव ने फ़रमाया, ''प्रेमी! तुम अपने दिल को साफ करो। सारी दुनिया ठीक नहीं हुआ करती।''

(ख)

जंगल फैलाँ में एकान्तवास के दौरान एक दिन एक मुसलमान मौलवी भी आपके दर्शन के वास्ते आए। शाम को लंगर के समय सभी उपस्थित व्यक्तियों को एक साथ लंगर खिलाया गया। दूसरे प्रेमियों को यह उचित नहीं लगा कि एक मुसलमान को हमारे साथ इन्हीं बर्तनों में खाना खिलाया गया है। उनमें से एक प्रेमी ने श्री महाराज जी से प्रश्न किया, 'महाराज जी! यह तरीका ठीक नहीं। उन्हीं बर्तनों में यह लोग खाएं और हम भी।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! फ़कीरों के दरबार में अलेहदगी नहीं हो सकती। इस जगह सब एक ही हैं। यह तुम्हारे अपने मामले हैं। घरों में जैसी मर्ज़ी हो करो। यहाँ भी यदि अलेहदापन होने लगा तो आपस में प्रेम कैसे बढ़ेगा। एक थाल में न खाओ, अलग-अलग खाने में तुमको क्या होता है? क्या तुमने इसको नीच समझा हुआ है? तुम्हारी ऐसी तंग ख़्याली ने कहाँ तक नौबत पहुँचा दी है। अपना ऐसा विशाल हृदय बनाओ कि यह लोग तुम्हारे समाज में ही जज़्ब (लय) हो जाएं। खैर, अब तो सूरत और ही बन रही है। ईश्वर ही मालिक है।''

आपके सत् उपदेश किसी विशेष मज़हब या फिरका के लिए नहीं

हुआ करते थे और न ही आपके दरबार में किसी प्रकार की पाबन्दी थी। आपका दरबार बिना मज़हबी भेदभाव के हर एक प्राणी के लिए खुला था। आपने लगभग दो माह तक इस जंगल में निवास किया था।

35

भगत बनारसी दास जी, कोहाला

(1) गुरु चरणों का मिलाप

सन् 1938, ज्येष्ठ मास की संक्रांत का दिन था। प्रात:काल के समय मैं और ठाकुर दीवान सिंह मन्दिर में बैठे थे। कथा हो रही थी। कथा समाप्त होने पर एक प्रेमी सज्जन ने उठकर सूचना दी कि जलमादा गाँव में एक महात्मा ने तप समाप्त किया है और 4 ज्येष्ठ को वहाँ एक भारी यज्ञ किया जायेगा। सब माई-भाई से प्रार्थना है कि इस शुभ मौके पर दर्शन देकर लाभ प्राप्त करें। यह सूचना सुनते ही मन में प्रसन्नता की लहरें ठाठें मारने लगीं। एकदम ठाकुर दीवान सिंह जी से कहा, 'चलो भाई, दर्शन कर आवें।' ठाकुर जी ने कहा, 'सायंकाल चार बजे चलेंगे।' यह फैसला करके अपने-अपने घर को चले गये। सारा दिन मन में खटपट लगी रही कि कब चार बजें, हम महात्मा जी के दर्शनों के लिए चलें। महापुरुषों का कहना है कि जिस बात की मन में सच्ची कामना हो उसका समय भी कभी आ ही जाया करता है। ज्यों-ज्यों करते दोपहर ढल गई और बेचैनी बढ़ने लगी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कोई चीज़ आपकी तरफ़ खींच रही है। इस धुन में दुकान में बैठा ही था कि दूर से आते हुए ठाकुर जी ने आवाज़ दी, 'चलो प्रेमी जी, अब चार बज गये हैं।' यकायक दुकान बन्द की और दोनों चल दिये। तकरीबन डेढ़ मील की चढ़ाई का रास्ता तय करने के पश्चात् हम उस कुटिया के पास पहुँचे जहाँ श्री महाराज जी ठहरे हुए थे। कुटिया के बाहर एक कटे हुए वृक्ष के तने की ओट में श्री महाराज जी को सफेद कपड़ों में समाधि अवस्था में विराजमान पाया। श्री महाराज जी का शरीर छोटे बच्चों की तरह बड़ा ही कोमल था। उनको प्रणाम करके पास बैठ गये। थोड़ी देर पश्चात् श्री महाराज जी ने आँखें खोलीं और आहिस्ता-आहिस्ता धीमी आवाज में फ़रमाया, ''प्रेमी जी! किधर से आये हैं?'' ठाकुर जी चुप रहे। दास ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'महात्मा जी! कोई

पता नहीं कहाँ से आये हैं।' यह सुनते ही श्री महाराज जी थोड़ा मुस्कराये और फिर आँखें बन्द कर लीं। हम समझे कि घोर तप के कारण कमज़ोरी से ज़्यादा बोल नहीं सकते हैं। हमें पता चल चुका था कि श्री महाराज जी 35 दिन लगातार तप में रहे हैं और इस दौरान केवल आधा सेर गाय का दूध एक समय ही लेते रहे। पहली बार अन्न का त्याग कर दिया था। तप के दौरान किसी को श्री महाराज जी के पास जाने की आज्ञा नहीं थी, केवल दूध की सेवा करने वाले प्रेमी का समय निश्चित था।

श्री महाराज जी के दर्शन करने पर उनके चेहरे से ऐसा दिखाई पड़ा जैसे कि उन्होंने कई दिनों से कोई चीज़ ग्रहण न की हो। शरीर इतना कमज़ोर था कि तमाम नाड़ियाँ और हड्डियाँ स्पष्ट नज़र आ रही थीं। श्री महाराज जी के अन्दर ऐसा खिंचाव था कि वहाँ से उठने को जी नहीं चाहता था। अन्तः करण से यह आवाज़ आ रही थी कि ऐ बनारसी! यही तेरा मुकाम है। यहाँ से ही तेरा असली मार्ग आरम्भ होगा। मन वहाँ शान्ति अनुभव कर रहा था। जब श्री महाराज जी ने समाधि से आँखें खोलीं तो ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं। फ़रमाने लगे, ''प्रेमियों! जाओ वक्त ज़्यादा हो गया है।'' इतना कहकर आप फिर समाधि में लीन हो गये। थोड़ा-थोड़ा अन्धेरा होना आरम्भ हो गया था। श्री महाराज जी ने दोबारा जाने के लिए कहा। हमने नमस्कार कर दिया और चल दिये। श्री महाराज जी ने हमें बड़ी प्रेमभरी दृष्टि से देखा। इस प्रकार हमारा वहाँ आना-जाना आरम्भ हो गया। 4 ज्येष्ठ को वहाँ यज्ञ हुआ। बड़ी भारी संख्या में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई हर पन्थ व मज़हब के लोग वहाँ पधारे हुए थे।

अखण्ड पाठ हो रहे थे। हवन व कीर्तन भी हो रहे थे। सब अपना-अपना राग अलाप रहे थे। किसी के मन में तनिक भी द्वेष भाव दिखाई नहीं देता था। यह सब उस सत्पुरुष की लीला थी। दोपहर 3 बजे के करीब तमाम पधारी हुई जनता को अपने अनमोल वचनों द्वारा कृतार्थ किया। इतनी कमज़ोरी के बावजूद आपकी आवाज़ बड़ी ऊँची थी। सब प्रेमी वहाँ इस बात

से चकित थे। प्रवचन के पश्चात् लंगर का प्रसाद बाँटा गया। श्री महाराज जी प्रेमियों को अटूट प्रेम देखकर अति प्रसन्न हुए। बाकी प्रेमी तो अपने-अपने घर को चले गये परन्तु हम कुछ प्रेमियों सहित रात को श्री चरणों में ठहर गये। श्री महाराज जी अन्य सन्तों कबीर, नानक, दादू आदि की वाणी सुना-सुनाकर प्रेमियों को निहाल कर रहे थे। रात्रि 12 बजे तक यह प्रवाह चलता रहा। प्रेमी तो निद्रा की गोद में चले गये, श्री महाराज जी लोटा, अँगोछा उठाकर बाहर चले गये। काफी दूर जाकर आसन लगाकर समाधि में स्थित हो गये। इसके पश्चात् दास भी सो गया। सुबह जब श्री महाराज जी वापस आये, हम नमस्कार करके अपने घर कोहाला चले गये। इस प्रकार वहाँ हमारा रोज़ाना जाने का कार्यक्रम चलता रहा। बड़ा एकान्त समय हमें मिलता। हमने अपनी शंकाओं का भली भाँति समाधान किया। श्री महाराज जी बड़े प्रेम से समझाते और हमारे प्रश्नों के उत्तर जो वह देते थे, तर्कयुक्त होते थे।

एक दिन दास ने अर्ज़ की, 'महाराज जी! हमको कुछ अभ्यास के बारे में समझाएँ।' श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी! अभी तुम्हारी उमर नहीं है। अभी बच्चे हो, समय आएगा कोई न कोई समझावेगा। हम गुरु नहीं हैं।'' इसी प्रकार टाल-मटोल में पन्द्रह दिन निकल गये। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते बेचैनी बढ़ती जाती थी। एक दिन फिर प्रार्थना की, 'महाराज जी! दास पर कृपा करें।' फ़रमाने लगे, ''अभी अंधेरा पक्ष है अर्थात् कृष्णपक्ष है, जब चाँदना पक्ष आवेगा अर्थात शुक्ल पक्ष आवेगा तो फिर समय दिया जायेगा।'' इन्हीं हालात में दस दिन और व्यतीत हो गये। श्री महाराज जी ने एक दिन दास से कहा, ''तुम्हारी ज़मानत कौन देगा?'' इसका कोई उत्तर न बन पड़ा। इस प्रकार चार दिन और व्यतीत हो गये। अन्त में दास ने श्री महाराज जी से कहा, 'महाराज जी! हमारी ज़मानत तो आप ही हैं। बिगाड़ो तो आप, सँवारों तो आप।' हम दोनों ने ज़ोरदार प्रार्थना की। अन्त में श्री महाराज जी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। फ़रमाने लगे, ''प्रेमियों! सुबह बताया जाएगा।'' यह सुनकर हम दोनों गद्-गद् हो गये। अधिक प्रसन्नता के कारण रात भर नींद

नहीं आई, इसी विचार में कि कब प्रातः हो कि हम श्री महाराज जी के चरणों में उपस्थित हों। प्रातः जब श्री महाराज जी बाहर से आये तो फ़रमाया, ''प्रेमियों! पूर्णमासी वाले दिन आप सुबह स्नान करके, सिर पर पगड़ी रखकर सत्श्रद्धा और विश्वास लेकर आना।'' यह सुनकर अति प्रसन्नता हुई और पूर्णमासी के दिन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे।

पूर्णमासी का दिन था। प्रभात के समय हम नहा-धोकर सामिग्री सहित श्री चरणों में पधारे। हमारे अलावा और चार प्रेमी भी सत् मार्ग के साथी बनने वाले थे। श्री गुरुदेव जी ने बड़े प्रेम से समझा-समझा कर हर एक बात भली प्रकार दृढ़ करवाई। अभ्यास का तरीका बताया गया। यह भी बताया कि किस प्रकार सिमरण से भजन, ध्यान और समाधि को जीव प्राप्त होकर परम आनन्द को पा सकता है। फिर उनके चरणों का अमृत पान किया। श्री महाराज जी ने अपने हाथ से प्रसाद देकर आशीर्वाद दी। सत्शिक्षा पाकर मन बड़ा प्रसन्न हुआ। दिल ने कहा कि अगर तुम ज़िन्दगी की वास्तविक मौज लेना चाहो तो श्री गुरु चरणों की सेवा में रहकर जीवन यात्रा को सफल बनाओ।

(2) श्रीनगर में एक ब्रह्मचारी से भेंट

एक दिन अहमदाबाद से आए मास्टर मनीराम जी एक बाल ब्रह्मचारी को साथ ले आए, जो कि उन दिनों गोपी तीर्थ में एकान्तवास में समय गुज़ार रहे थे। आते ही प्रणाम करके बैठे तो गुरुदेव ने फ़रमाया :

गुरुदेव - क्यों प्रेमी, किसके आधार पर खड़े हो या खाली शौक पूरा कर रहे हो?

ब्रह्मचारी - श्री महाराज जी! आधार तो एक नारायण का है। बचपन से ऐसा शौक रहता था, वनों में जाकर तप करूँ, सन्तों का संग व सत्संग सुनूँ। एक महात्मा मिल गये थे। उन्होंने बतलाया कि यह साधन करके पहले सूर्य भगवान को प्रसन्न कर लो फिर आगे के लोकों का तुम्हें पता लग जावेगा। इस तरह एक समय खिचड़ी बनाकर सेवन कर लेता हूँ। जहाँ आप किसी समय

निवास कर चुके हैं वहाँ ठहरा हुआ हूँ। लक्षमण जी ने दूध, चावलों का प्रबन्ध कर दिया है। आप भी कृपा करके कोई शिक्षा दें।

गुरुदेव – प्रेमी, ठीक है जो कुछ प्रेम से कर रहे हो। सत् विश्वास से लगे रहो। रोज़ –रोज़ नई सिखया नहीं लेनी चाहिए। कभी समय मिला तो इतवार के समय सत्संग में आ जाया करो। अच्छा है जैसे भी लगे हुए हो। मगर मान और माया से बचना मुश्किल है।

गृहस्थी हो तो भगति कर, ना तो कर बैराग।
बैरागी होए बंधन पड़े, ताके बड़े अभाग।।
तब लग जोगी जगत गुरु, जब लग रहे निरास।
जब जोगी आशा करे, तो जग गुरु जोगी दास।।
मुए को प्रभु देत है, लकड़ी कपड़ा आग।
जीवत जो चिन्ता करे, तिस का बड़ा अभाग।।

प्रेमी, यह उमर अभी बाल अवस्था है, बगैर सोचे–समझे ही घर से निकल पड़े हो। अब डटकर साधन करो। जिज्ञासु को पहले गुरु भक्ति, सेवा में लगना चाहिए। फिर जिस योग क्रिया में लगा दें उसी में प्रभु परायण होकर जब प्रयत्न करेगा, तब जाकर किसी समय अन्तर–विखे रोशनी होगी। तुम्हारी बातें समझदारी वाली नहीं। किसी कामिल गुरु की पहले तलाश करो। सूरज, चन्द्रमा, राहू, केतु, ब्रह्मा, विष्णु सब तेरे अन्दर हैं। शौक ज़रूर है मगर तुम अभी बच्चे हो। प्रेम से लगे रहो। लगन पूरी रही तो आप ही नारायण किसी भेष में समझाने आ जायेंगे। तप करते–करते नया खून जल जायेगा, फिर असली सूरज के दर्शन होंगे।

मास्टर जी – श्री महाराज जी, इस पर कृपा कर दो, पूरा जिज्ञासु है।

गुरुदेव – प्रेमी, अभी तो यह गुरु खुद बन रहा है। जिज्ञासु इस प्रकार की बातें नहीं किया करते। जब तक यह खुद न अपनी कमी को समझे और जो कर रहा है ग़लत न जाने, तब तक दूसरा रास्ता पकड़ना फ़जूल है। हठ से कुछ हासिल नहीं होता। कश्मीरी ब्राह्मण बातों में बड़े चतुर होते हैं। किसी समय

शायद इसे होश आवे, जो कर रहा हूँ यह ठीक नहीं, फिर कोशिश करके पूछे, तब कुछ असर होगा। जिसने कुछ सीखना होता है वह और जीव होते हैं। अच्छा है, जो कर रहा है। जब तक शरीर गाले नहीं तब तक कुछ हासिल नहीं होता। मास्टर जी, यह बच्चों का खेल नहीं है। ऐसे लोगों के वास्ते बड़ा सख़्त इम्तहान है। हर किसी को प्रेरणा न किया करो। पता देना तुम्हारा फ़र्ज़ है, आगे खुद अपने आप विचार करें। जो जिज्ञासु होगा खुद-ब-खुद खिंचा चला आयेगा। इसके दिमाग में केवल सूरज की पूजा बैठी हुई है।

अच्छा प्रेमी, जाओ सूरज के तेज को प्रगट करो। पहले यह शरीर की लाली ख़त्म होगी तब वह दूसरा भानु प्रगट होगा। ब्रह्मचारी के जाने के बाद गुरुदेव ने कहा, ''जैसा किसी ने दिमाग में बिठा दिया उसी तरह चल दिया, यही बचपना होता है। इस मार्ग के वास्ते बड़े खोज की ज़रूरत है। आसान थोड़ा ही है। बड़े भाग हों तो गुरु मिलें।''

(3) थट्टा में गुरुदेव से वार्तालाप

श्री महाराज जी थट्टा नामक स्थान में विराजमान थे। एक दिन रात को '**निष्काम कर्म साधन**' का प्रसंग उच्चारण फ़रमाया। दूसरे दिन दास ने प्रातः श्री महाराज से पूछा, 'महाराज जी! निष्काम कर्म और सकाम कर्म में क्या भेद है?'

गुरुदेव - प्रेमी! एक कर्म कर के जीव बंधन में पड़ता है और एक कर्म करके छुटकारा पाता है। एक पलक भी कर्म क्रीड़ा से छूट नहीं सकता। मन में फल की आशा रखकर जो कर्म किया जाता है उसको सकाम कर्म कहते हैं। सकाम कर्म ही इसको आवागवन के चक्कर में ले जाते हैं। भाग्य से सत्पुरुषों की संगत द्वारा सोझी पाकर निष्काम कर्म के भेद को जानकर सत्मार्ग में दृढ़ होता है। सिर्फ इधरों पुटना ते उधर लगाना है, यानि वृत्ति को संसार की तरफ़ से हटाकर करतार की तरफ़ लगाना है, जो भी कर्म इससे बन आवे, सबको ईश्वर आज्ञा में समझते हुए, फल की आशा न रखकर करता

जावे। तब बुद्धि निर्मल होते-होते असली तत्त (तत्व) को जानने लगेगी। असली निष्कामता उस समय अन्दर आती है जब नाद स्वरूप परमेश्वर को अपने घट के अन्दर प्रगट देखता है। सकाम कर्म की भावना उस समय नष्ट हो जाती है। आकारमयी बुद्धि निराकार में तबदील हो जाती है। सब कुछ प्रभु आज्ञा में विचारने लगता है। प्रेमी, तू बता किस धारणा को मन में रखकर सेवा कर रहा है?

मैंने श्री महाराज जी से कहा, 'मैं नहीं समझा कि आपने क्या फ़रमाया।'

गुरुदेव - प्रेमी, किस धन, दौलत, बड़ाई और संसारी पदार्थों की ख़्वाहिश (इच्छा) रखकर सेवा कर रहा है?

मैंने श्री महाराज जी से कहा, 'दास तो किसी दुनियावी पदार्थ की ख़्वाहिश (इच्छा) रखकर शरण में नहीं आया है, बल्कि उस शान्ति की तलाश में आया है जिस शान्ति को पाकर राम, कृष्ण, बुद्ध, कबीर आदि अवतार कहलाए। इसके सिवाय और कोई विचार नहीं। इसके लिए जो ज़रूरी आज्ञा हो करें।'

गुरुदेव - प्रेमी! विचार तो तुमने बहुत ऊँचा धारण कर रखा है। हाँ, कोई गोल (निशाना) जब तक सामने न रखा जाए तब तक मन उधर नहीं जाता। ऐसी ख़्वाहिश के वास्ते बड़ी कुर्बानी (त्याग) की ज़रूरत है। बाकी इधर से जो कृपा करनी थी, कर दी गई है। अब तुम्हारी अपनी मेहनत है। यह सेवा वग़ैरा भी इस सत् मार्ग में सहायक होती है। पहुँचाने वाली अपनी अभ्यास की कमाई होती है। इस तरह से चलते रहो। खुद (स्वयं) ही मालिक सब सबब (कारण) बना देता है।

जे साहिब कुछ करनी लोड़े। सौ सबब इक पल विच जोड़े।।

'तूँ कर्ता, सत् तेरी आज्ञा', इस पवित्र निश्चय को दृढ़ करो। इसी से शुरू (आरम्भ) होना है, इसी में ख़त्म होना है। ऐसा सत् भाव चिरकाल के बाद समझ आता है और फिर दृढ़ होता है। पूछने से बेहतर है कि मन में विचार

बिठाओ।

(4) बुत-परस्ती का निर्णय

अगस्त, 1950 में एक दिन प्रातः काल जब आप बाहर से वापस स्थान पर आ रहे थे तो शालीमार बाग़ के बीच से होकर आते हुए रास्ते में पश्चिम की ओर इशारा (संकेत) करके दास से फ़रमाया, ''उस पार डल के किनारे हज़रत बल की जगह है, बहुत सुन्दर स्थान है। इस जगह हज़रत मुहम्मद साहिब के दो-चार बाल रखे हुए हैं।''

दास - श्री महाराज जी, इन मुसलमानों में तो बुत-परस्ती करना मना है। बालों को रख कर क्या करते हैं?

गुरुदेव - प्रेमी, जो बीमारियाँ, तोहमात परस्ती (अंधविश्वास) वग़ैरा हिन्दुओं में है, उसका दूसरा रूप इन्होंने इख़्तियार (धारण) कर लिया है। जो ब्राह्मण-हिन्दू मुसलमान हो गए हैं उन्होंने वहाँ भी जाकर दूसरे रूप में धन्धा शुरू कर दिया है। हिन्दू समाधियों पर प्रदक्षिणा करते हैं। यह कब्रों पर जाकर दुआएं करते हैं, दिये जलाते हैं। हिन्दू मढ़ी-मसानों को पूजते हैं। फ़र्क क्या है? नानक जी ने कहा है -

हिन्दू अन्ना तुरकू काणा

सार बात को कोई आरिफ़ (सिद्ध पुरुष) ही जानते हैं। मुहम्मद की तालीम खुदा परस्ती यानि केवल एक ईश्वर की याद और ख़लकत (जीवों) की खिदमत यानि सेवा बतलाती है। आप पूरा ही आरिफ़ हुआ है। मशरक से मग़रब (पूरव से पश्चिम) तक जिधर चले जाओ एक ही असूल उठने-बैठने का पाओगे। बाद में कई तरह के तरीके स्वार्थी लोगों ने रायज़ (प्रचलित)कर लिये हैं। तालीम हमेशा सिदक (शौक) दिल लोगों से फैलती है। विश्वास, यकीन वाले लोगों के नक्शे-कदम पर चलने से दूसरे लोग सबक हासिल करते हैं। समय-समय पर कोई न कोई महापुरुष धरती पर आते रहते हैं। नये रूप में कुदरती तालीम का आरम्भ कर जाते हैं। ख़लकत (जनता) फ़कीरों को नहीं

बनाती, फ़कीर ही जनता को सुधार का रास्ता बताते आए हैं। समता तो अभी नई तालीम के रूप में है। जब सोटा चलेगा, कतलो-ग़ारत के बाद जब दुनिया ठंडी हो जाती है, तब फ़कीरों को ढूँढ़ते हैं। ग्रन्थों को फ़रोलते हैं, महात्मा लोग क्या लिख गए हैं। उस समय सन्तों के वचन चित को ठण्डा करते हैं। अब गाते हैं -

धन्न बाबा नानक, जिस जग तारया

जब मौजूद थे तब कुराइया करके पुकारते थे। खासकर कश्मीर की धरती ऐसी मोहनी रूप है, हज़ारों दफा कुश्तो-खून (रक्तपात) करवा चुकी है। जब तक दुनिया है, दुनिया वाले अपने रंग पर चलते रहते हैं। फ़कीर (महात्मा) अपना-अपना काम करके चले जाते हैं। हमेशा उनके नाम-लेवा उनका सिमरण करते हैं। डंडे मार राजाओं को कौन याद करता है? जिस जगह जाओ वहाँ देख-भाल कर, कुछ सबक पिछली तारीख से भी लेना चाहिए।

(5) टेक्सला म्यूज़ियम का भ्रमण

9 भादों को जलमादा से चलकर कोहाला, नथीया गली, हतगतोड़, नवां शहर (ज़िला एबटाबाद, पाकिस्तान) से होते हुए गुरुदेव टेक्सला पहुँचे। टेक्सला में जब आपने प्राचीन सामान व चीज़ें देखीं तो फ़रमाने लगे -

''किधर गये वह साज व सामान बनाने वाले। किसी समय यह चीज़ें बड़ी मेहनत से बनाई गयी थीं। न बनाने वाले रहे और न उनके इस्तेमाल करने वाले रहे। न ही यह किसी समय रहेंगी। वाह! आश्चर्यजनक प्रभु की लीला है।''

जब आप म्यूज़ियम से बाहर निकले तो एक चपरासी खड़ा था। आपने उससे पूछा, ''कितनी तनख्वाह (वेतन) लेते हो?''

चपरासी - खुदा के फ़ज़ल से 22 रुपये मिलते हैं।

श्री महाराज जी - गुज़ारा किस तरह करते हो?

चपरासी - (ऊपर हाथ उठाकर) अल्लाह राज़क (पालन कर्ता) है।

श्री महाराज जी ने प्रसन्न होकर दास से दो रुपये उसको दिलवाये। टेक्सला स्टेशन पर पहुँच कर देखा कि मेरा चेहरा लाल हो रहा है और पूछा :

श्री महाराज जी – बनारसी, मुँह क्यों लाल हो गया?

दास – बिस्तरा उठाने की वजह से लाल हो गया है।

श्री महाराज जी – (थोड़ी देर खामोश रहने के बाद) बच्चू, प्रभु तुझे सुमति देवें। भगवान के दरबार में तेरा नाम लिखा गया है। अब चाहे चूं कर चाहे चां कर, जाना पड़ेगा। फ़कीरों की सेवा खाली नहीं जाती। दिल में तंगी महसूस न किया कर। खुले दिल हर समय हर हालत में गुज़ारने की कोशिश करो।

रंग लागत लागत लागत है। भ्रम भागत भागत भागत है।।

श्री महाराज जी के वचन सुनकर दास ने प्रार्थना की कि दास सेवा का सही स्वरूप को नहीं जानता और न ही समझ सका कि किस प्रकार और किस जगह नाम लिखा गया है।

आपने मौज में आकर चंद शबद उच्चारण फ़रमाये जिनको सुनकर मेरे आँसू निकल आये।

फिर आपने दास की पीठ पर हाथ फेरा और फ़रमाने लगे, ''रोने से काम नहीं बनता। विचार की आँखें खोलो। संसार क्या है? किधर से आये हैं? तुम्हारे माता-पिता किधर गये, जिन्होंने तुझे पैदा किया?''

जब पंजा साहब जाने वाली गाड़ी में सवार हुए तो फ़रमाया, ''यही हिसाब है सत्मार्ग का भी। नाम रूपी टिकट संभाल कर रखने में सहूलियत रहती है। निर्भयता से सफ़र तय हो जाता है। ठिकाने पर कभी न कभी पहुँच जाता है।''

(6) गुरु वशिष्ठ का राम को उपदेश

एक दिन प्रातः चरणों में बैठकर आपके सेवक भगत बनारसी दास जी योग वशिष्ठ पढ़ रहे थे। आपको जब पता लगा तो फ़रमायाः

गुरुदेव – प्रेमी ! क्या पढ़ रहे हो?

दास – श्री महाराज जी ! प्राण–अपान योग का प्रसंग पढ़ रहा हूँ। बहुत सुन्दर चीज़ लिखी हुई है।

गुरुदेव – ज़रा ऊँचा पढ़कर सुनाओ।

दास ने योग वशिष्ठ का छटा प्रकरण, सर्ग इक्कसीवाँ – प्राण–अपान योग, जब वशिष्ठ जी काग भुसुन्ड के पास गए, यह प्रसंग पढ़ा। सुनने के बाद भगत जी से फ़रमाया –

गुरुदेव – सुना प्रेमी ! तुमने यह क्या पढ़ा है?

दास – श्री महाराज जी ! समान भाव में जो शुभ गुण प्रगट होते हैं वह तो मोटे–मोटे समझ आ गए हैं। मगर सन्तों की बोली में जो गुह्य (गहरा) भेद वर्णन हुआ है, यह तो बिना अन्तर्विखे स्थिति के कैसे बयान किया जा सकता है?

गुरुदेव – प्रेमी बनारसी दास ! इस गुह्य भेद को समझते–समझते फ़कीरों के खून खुश्क हो जाते हैं। केवल हड्डियों का ढांचा रह जाता है, तब जाकर बोध हो पाता है। वशिष्ठ ने वह ऊँची स्थिति बयान की है, जिसको राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक, कबीर ही जानने वाले हुए हैं। प्रेमी, मामूली बात नहीं। अभी तक किसी पंडित, ज्ञानी, शास्त्री ने इसका अर्थ उल्टा–सुल्टा नहीं किया। ज्यों का त्यों ही श्लोकों का अर्थ कर रखा है। यह पढ़े–लिखे आचार्य लोग भी ऐसे उच्च भाव बयान नहीं कर सकते। वशिष्ठ का राम को दिया हुआ यह असली उपदेश है। ये पंडित लोग क्यों नहीं इसको खोल कर मन्दिरों में लोगों को समझाते। असली तालीम (उपदेश) राम की यही है। कोई भेद छुपा के नहीं रखा। बिल्कुल खोल के वर्णन कर दिया है। सिर्फ सामने बैठकर समझने वाली बात फिर भी छुपा कर रख ली है। ये ऐसे प्रसंग चित के अन्दर उत्साह, विचार पैदा करने वाले होते हैं। योग विद्या की कोई थाह नहीं। जिस तरह सागर की तह का पता नहीं लगता, इसी तरह यह आत्म बोध की स्थिति है। कौन जाने किस स्थिति के ऋषि मालिक थे। हज़ारों वर्ष तक ध्यानमग्न होकर

घास की झोपड़ियों में गुज़ार देते थे। यह भी प्राण विद्या लाखों वर्ष पहले की चली आयी है। आइन्दा भी इस भेद को जानने वाले ही मोक्ष पावेंगे। नेहकर्म अवस्था बगैर इस साधन के कभी प्राप्त नहीं हो सकती। राम, कृष्ण के इतिहास तो सुना देते हैं, मगर इस कथा को कभी किसी ने नहीं सुनाया। वैसे इस योग वशिष्ठ के योग को पढ़कर बहुत से ज़बानी ब्रह्मवादी बन रहे हैं। इस मरने वाले भेद को कोई नहीं पढ़ता। साधन भी पास हो और ऐसे ग्रन्थों का स्वाध्याय भी हो, यह यत्न-प्रयत्न में बहुत सहायक हुआ करता है। जब समय मिले ऐसे ग्रन्थ पढ़ते रहा करो। वाकई कागभुसुण्ड की लम्बी आयु करने वाला यह ही योग था। योग मार्ग में कई साधन शारीरिक, देह कायमी के वास्ते भी थे। भोगों के वास्ते शारीरिक आयु नहीं बढ़ाया करते थे। केवल चिरकाल तक आत्म-आनन्द में लीन होने के वास्ते देर तक शरीर रखने का इरादा हुआ करता था। भाग्य से आत्म-अनुभवी अवस्था हो भी जाए, स्थिति और फिर लीनताई के वास्ते तो बहुत ही यत्न करना पड़ता है। लीनताई के बाद जब मर्ज़ी हुई योगी शरीर छोड़ दे या छूट जाए। वह तद्रूप हो चुके होते हैं। राम, कृष्ण कोई मामूली हस्तियाँ न थीं, जिन्होंने दोनों तरफ़ समय दिया। उनकी रीस (नकल) करके बहुत लोग अपने आप को ग़र्क कर लेते हैं। योग और भोग दोनों चलते रहे, ऐसा कई संसारी चाहते हैं। तीव्र त्याग के धारण करने से ही योग में कामयाबी हुआ करती है। इन संसारी प्रेमियों की तरफ़ देखकर किसी समय हँसी आती है, कब चलेंगे और कब अन्दर की मंज़िल पूरी होगी। इधर जो आकर हाथ जोड़ता है, उसे कुछ समझाना पड़ता है। किसी से इन्होंने भेद-भाव नहीं रखा हुआ। किस कदर मेहनत करके ऐसी अवस्था आई, तुम क्या जानो! पकी-पकाई पर आ बैठे हो। जब मेहनत करोगे तब ही कुछ समझ सकोगे। देखो, वशिष्ठ जी ने राम को बार-बार कई तरह से समझाने की कोशिश की है। उनका वनों की तरफ़ जाने का और क्या मतलब था? तीर्थ यात्रा के बाद झट ही गुरु ने उपदेश समझा दिया। फिर जल्द ही ऐसा कारण बन गया, बहाना मिलते ही राजगृह को छोड़कर चल दिये। चित्रकूट के जंगलों में उनके

तप, त्याग को किसने देखा है? अवतार कोई आसानी से नहीं कहलाए। फिर मिट्टी के साथ मिट्टी होना पड़ता है।

(7) अंग्रेज भगत का सेवा भाव

23 सितम्बर, 1949 को रात के समय गुरुदेव और दास विचार कर रहे थे। पड़ोस में एक अंग्रेज़ फ़कीर रहता था। उसको पता लगा कि महात्मा जी की सेहत ठीक नहीं है। वह गुरुदेव को देखने आया। आकर दरवाजा खटखटाया।

दास ने जब दरवाजा खोला तो उसने पूछा - बनारसी दास, अभी तक तुम जाग रहे हो? महात्मा जी तबीयत ठीक है? बोलो, हम कोई खिदमत कर सकते हैं।

गुरुदेव - साहिब, सब ठीक है, फ़िक्र वाली बात नहीं।

गुरुदेव की बात सुनकर वह वापस लौट गया। बाद में गुरुदेव ने दास से फ़रमाया।

''प्रेमी! इसको इस समय क्या सूझा! बड़ा ही साबर और संतोषी प्रेमी है। असली खुदा-परस्त है। किस तरह का निर्भय जीवन बना रखा है। कुदरत आप ही रास्ता हर जीव को दिखाती है। जो भी उसकी राह पर चलने वाले हैं, अपनी निज़ात (मुक्ति) का शौक रखते हैं, उसकी हर समय मदद होती रहती है। किसी के मोहताज नहीं होते। अब इसे किसने फ़कीरी जीवन का सबक सिखलाया है। मगर अन्तर से हर एक उस लाजवाल (हमेशा रहने वाली) खुशी की चाहत में है, चाहे किसी देश का रहने वाला क्यों न हो। उसके सामने अपने पैग़म्बर ईसा की ज़िन्दगी मौजूद है। जो-जो भी गुरुमुख जीव अपने बुज़ुर्गों का जीवन प्रेम से विचार करता है, कुछ न कुछ असर ज़रूर जीवन पर पड़ता है। ईसा की ज़िन्दगी की इबादते इलाही (ईश्वर चिंतन),त्याग और खिदमत (सेवा) का आला से आला (महान) सबक दे रही है। महापुरुषों का जीवन जुगा-जुगा तक असर अन्दाज़ रहता है। वैसे हर

एक महापुरुष का पर-उपकारी जीवन हुआ करता है, चाहे मशरक (पूरब) में हो चाहे मग़रब (पश्चिम)। इससे तुमको अभी क्या सबक मिला है?''

दास ने कहा, 'महाराज जी! पड़ोसी क्या, कोई भी दुखी हो, उसकी हर समय खबर लेनी फर्ज़ है। न वोह इस समय आकर कुछ दे गया है, न और तरह की सेवा की। केवल इसका प्रेम से पूछना ही मन के अन्दर प्रसन्नता ला रहा है। जी चाहता है, जाकर उसके पाँव दबाये जावें।'

गुरुदेव ने कहा, ''हाँ प्रेमी, ऐसा भाव चित में हर समय बनाए रखने में असली खुशी (प्रसन्नता) मिलती है। अच्छा, अब आराम करो। सुबह इसकी कुछ सेवा कर देना।''

(8) फ़कीरों से प्रभु भक्ति माँगी जाती है

19 सावन के करीब आप निखेत्र पहाड़ से उतर कर निखेत्र गाँव में पधारे। रास्ते में आपको वह मुसलमान प्रेमी मिला जो आपके तप के दौरान रोज़ाना दूध पहुँचाया करता था। उसने झुक कर सलाम किया।

श्री महाराज जी - क्या चाहते हो?

मुसलमान प्रेमी - पीर जी, दुआ करें खुदा ईमान बख़्शे।

श्री महाराज जी - (जवाब सुनकर प्रसन्न हुए और फ़रमाया) दुनिया की दौलत और बाल-बच्चे क्यों नहीं माँगते।

मुसलमान प्रेमी - खुदा के तफ़ैल (कृपा) वक्त गुज़र रहा है। दुनिया की चीज़े फ़कीरों से नहीं माँगनी चाहिए। ईमान मिला तो सब कुछ मिल जावेगा।

श्री महाराज जी - (मुस्कुरा कर) खुदा यकीने पाक (ईश्वर विश्वास) देवे। फिर दास को इशारा करते हुए कहा, ''बनारसी! इसको दो रुपये दे दो बच्चों के वास्ते।''

मुसलमान प्रेमी - (रुपये लेकर) मैं हर चीज़ से माला-माल हो गया हूँ।

इस वार्तालाप से कितनी महान् शिक्षा मिलती है। अगर सन्तों के दरबार से माँगना हो तो माँगें प्रभु भक्ति।

(9) गुरु आज्ञा पालन

मार्च 1944 में लाहौर में गुरुदेव मार्तण्ड भवन, चौबुर्जी में ठहरे थे। एक दिन रात तीन बजे जब बाहर तशरीफ ले गए तो दास भी साथ था। रास्ते में एक जगह मुझे बिठाकर आगे काफ़ी दूर आप चले गए। थोड़ी देर के पश्चात् ही बड़े ज़ोर से बारिश आ गई। आगे-पीछे कोई बचाव का अनुकूल स्थान न होने के कारण दास उसी जगह बैठा बारिश में भीगता रहा। बारिश बन्द होने पर जब गुरुदेव वापस आए तो दास को भीगे हुए देखकर फ़रमाया, ''प्रेमी! घर चले जाना था। क्यों ख़्वाह-म-ख़्वाह भीगते रहे?''

भगत जी - श्री महाराज जी, आपको भी तो बारिश ने भिगो दिया होगा।

गुरुदेव - प्रेमी, इनका तो रोज़ाना यही हाल है। नमक थोड़ा ही है जो गल जाएगा। तप इसी को कहते हैं। जहाँ बैठे वहाँ बैठ गए। सर्दी, गर्मी, बारिश, आँधी के वेगों को सहन करना, यही तपस्या है। दिल को मज़बूत रखा करो। ये चीजें कुछ नहीं बिगाड़तीं। मुसीबत बर्दाश्त करने की इसी तरह शक्ति आती है। हर एक चीज़ से विचार लेना चाहिए। साथ ही गुरु आज्ञा पालन करने का तूने सबूत दिया है। जिस जगह कहा वहाँ ही बैठा रहा। इसी तरह हर आज्ञा का पालन करना ही श्रद्धा और विश्वास को बढ़ाता है।

(10) समता दृष्टि

एक दिन एक मुसलमान प्रेमी चरणों में हाज़िर हुआ। बड़े प्रेम से काफी समय तक वह परम भक्तिनी 'राबया' के जीवन के हालात सुनाता रहा। गुरुदेव बड़े ध्यान से सब हालात को सुन रहे थे। जब वह पूरा प्रसंग सुना चुका

तो आज्ञा लेकर सजदा करके वापस चला गया। उसके जाने के बाद गुरुदेव ने दास को यह आदेश दिया।

''देख प्रेमी! किस कदर सत् विश्वास यानि यकीने-पाक वाले लोग हैं। बुज़ुर्गों के इतिहास को किस तरह प्रेम से वर्णन करता रहा है। जिस 'राबया' का प्रसंग उसने सुनाया है वो उस शून्य अवस्था में स्थित थीं, जिस अवस्था को पाकर फिर और कुछ पाना बाकी नहीं रहता। सबसे बड़ी बन्दगी प्रभु भाने में यानि खुदा की रज़ा में रहना ही है। आज उस प्रसंग को तू भी लिख रहा है जिसमें अल्लाह वाले लोग मोजज़न (तल्लीन) रहते हैं। खुद खुदा यानि ब्रह्ममयी वो हो जाते हैं। वहाँ यह कहना ही नहीं रहता कि मैं खुदा हूँ, ब्रह्म हूँ। सम अवस्था इसी का नाम है। इस तरह के प्रसंग कभी-कभी सुनने में आया करते हैं। ऐसे प्रसंग चित्त में बैठाने की कोशिश किया करो। ये विचार कभी मन में न लाना कि यह हिन्दू है, यह मुसलमान है, यह पारसी है, सबको अपनी आत्मा जानो। मशरक, मग़रब (पूर्व पश्चिम) में जो भी प्रभु परायणता वाले जीव हुए हैं, सब ही नमस्कार योग्य हैं।''

(11) मृग-तृष्णा

एक दिन गुरुदेव जब बाहर एकान्त में गए हुए थे तो एक हिरनों के डार को खेतों के दरम्यान एक बग़ीचे में देखा। वापस लौटने पर मुझसे फ़रमाया -

गुरुदेव - प्रेमी तुमने कभी हिरनों के डार देखे हैं?

दास - नहीं श्री महाराज जी, मुझे ऐसा मौका कभी नहीं मिला।

गुरुदेव - प्रेमी, सुबह बाहर बैठे हुए थे। पास ही एक हिरनों का डार चुपके से आकर खड़ा हो गया। सर-सराहट की आवाज़ आई। आँख खुली तो देखा, बहुत से हिरन छोटे-बड़े खड़े हैं। उनके पास आगे एक बड़ा हिरन खड़ा है। कितनी देर बड़े प्रेम से खड़े देखते रहे। बड़े हिरन ने एकदम कोई आवाज़ की, जिसके सुनते ही सब दौड़ पड़े, जहाँ वह खड़ा होता, सब खड़े हो जाते।

हर जानदार, हैवान, इन्सान में सरदार भी दरम्याने भी और छोटे भी, बच्चे, बूढ़े सब होते हैं। नर, मादा अपनी-अपनी जोड़ी अलग-अलग बनाकर चलते हैं। प्रभु की विचित्र माया में सब गिरफ़्तार हैं। अति मोह इन पशुओं में होता है। यह ही तमोगुण का रूप है।

मोह और अज्ञान ही जीवों को नीच से नीच गति की तरफ़ ले जाता है। कितनी भटकना, चंचलता, तेज़ी इनके अन्दर पायी जाती है। दौड़ते-दौड़ते मीलों निकल जाते हैं। रेगिस्तान के अन्दर इनकी बड़ी दुर्गति होती है। पानी के वास्ते तड़पते हैं। सूरज के चमक से रेत के ज़राअत (कण) चमकते दिखाई देते हैं। ऐसे नज़र आता है जैसे पानी होगा। ज्यों-ज्यों दौड़ते जाते हैं, पानी नहीं पाते। इसी तृखा में कई मर जाते हैं। इसकी मिसाल (दृष्टान्त) ज्यादातर सन्यासी लोग देते हैं।

मृग-तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। लाखों किस्म के संसारी सुख मिल कर भी फिर वैसी की वैसी भोगों की चाहना बनी रहती है। जन्म-जन्मांतर बीत जाते हैं, मनुष्य इस बीमारी को नहीं समझता। देख भी रहा है, नाना जंगम-अस्थावर जीव दु:खी हालत में विचर रहे हैं। ये क्यों ऐसी हालत में पड़े हैं, ऐसी सज़ाएँ क्यों मिलती हैं, जिन शरीरों में ज्ञान-विचार पैदा ही नहीं हो सकता। ऐसा न हो, इन हालात में विचरना पड़े। प्रेमी, दुनिया की जिस चीज़ की तरफ़ देखो, उसी से सत् विचार मिल जाता है। देखो, इस हिरन की नाभि में कस्तूरी का नाफ़ा रहता है। जिसकी खुशबू सूँघ कर ये समझता है कि किसी और जगह से आ रही है। इसी तरह ये जीव भी नहीं समझता कि परमात्मा की सत्ता मेरे अन्दर-विखे है। यह बाहर जंगलों, पहाड़ों, मन्दिरों, मस्जिदों में ढूँढ़ता है। इसी को अज्ञान कहते हैं। जब तक कोई समझाता नहीं तब तक इसे सत् सोझी नहीं हो पाती। हिरन की आँखें बड़ी मस्ती वाली होती हैं। गाना सुनने का बड़ा शौकीन होता है। प्रभु की माया ने सब चराचर जीवों को मोहित कर रखा है। बहुत डरपोक पशु है। कभी इधर-उधर निकल जाना, देखना कैसे मिल कर चलता है।

(12) हरिजनों के साथ प्रेम की नीति

शाहपुर पहुँचने पर रोज़ाना शाम को सत्संग का प्रोग्राम प्रेमियों ने निश्चित कर दिया और शाहपुर कंडी निवासी प्रेमी ने छुआछूत पर सत्पुरुष के विचार लेने के लिए निम्नलिखित अर्ज़ की :

प्रेमी - श्री महाराज जी, हरिजनों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये? हम उनसे दान वग़ैरा ले लेते हैं लेकिन ब्याह-शादियों के समय उनके साथ बरतने से परहेज़ करते हैं।

श्री महाराज जी - इस बात ने तो हिन्दुस्तान का बेड़ा ही डुबा दिया। इसलिए जो भी बाहर के देश से आते हैं वह इस जगह के मालिक बनते जा रहे हैं। वह हरिजनों को अपने से मिलाते जा रहे हैं, हम धिक्कारते जा रहे हैं। बेटी-रोटी का परहेज़ रखो लेकिन और जो भी कार्य उनका हो, वह करो। उनके घर की रोटी न खाओ लेकिन मन्त्र पढ़ने में तुम्हारा क्या लगता है?

इस पर एक प्रेमी उठा, 'महाराज जी! आज एक शादी हो रही है। हरिजनों ने हमको बुलाया है कि आकर ब्याह पढ़ जाओ। हमारे बुज़ुर्ग जाने नहीं देते। आप हमें आज्ञा दें, क्या करें? वह कहते हैं - तुम नहीं आओगे तो हम मुल्ला, काज़ी को बुलाकर ब्याह कर देंगे। आप फ़रमायें क्या करना चाहिए?'

श्री महाराज जी - प्रेमी, एक मिनट भी देरी न करो। अगर इस काम को कर सकते हो तो फौरन जाओ। किसी की न सुनो। काम करके उनसे कुछ न लो। निष्काम भाव से सेवा करो। आपस में प्रेम बनाये रखो। आज काज़ी से ब्याह पढ़वा कर कल वह तुम्हारा साथ थोड़ा देंगे। मुसलमान बन जायेंगे। भक्ष-अभक्ष करने वाले हो जायेंगे। जो बिल्कुल शुद्ध भावना वाले हैं, राम-कृष्ण का नाम लेने वाले हैं, तुमने उनको बिल्कुल अलग कर रखा है। यह कहाँ की नीति है?

आपके सत् और अनोखे वचन सुनकर किसी को तर्क-वितर्क की

ज़रूरत न पड़ी, बल्कि सेवा कार्य के लिए दोनों जवान फौरन चल दिये। वहाँ पहुँचने पर पता चला कि शादी का कार्य वह किसी और जगह से पंडित बुलवाकर कर चुके हैं। इस पर उन नौजवानों ने हरिजनों के चंद खास आदमियों को पास बुलाकर अपने आने का सारा हाल सुनाया। इसका उन लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उनका तमाम गुस्सा ठंडा हो गया। यही नहीं बल्कि दूसरे दिन हरिजन काफी संख्या में श्री महाराज जी के दर्शनों के लिए पधारे। एक हरिजन ने हौंसला करके बात छेड़ी, 'महाराज! हमारा क्या कसूर है, जो हमको आप अपने पास बिठाने से परहेज़ करते हैं? क्या हम राम, कृष्ण के नाम लेवा नहीं? आज तक जितनी रक्षा हिन्दू कौम की हरिजनों ने की है, बड़ी-बड़ी जात-बिरादरी वालों ने नहीं की। जब गुरु गोबिन्द सिंह ने पाँच प्यारे बनाये तो उनमें कितने बड़ी जातों वाले थे?' उस वक्त गाँव के बड़े-बड़े पंडित भी आपके चरणों में बैठे थे।

प्रेमी के सब विचार सुनने के बाद पंडितों की तरफ़ दृष्टि करके आपने फ़रमाया, ''प्रेमियों! सुन रहे हो? जवाब दो'' सबको खामोश देखकर फ़रमाने लगे, ''प्रेमियों! अब ज़माना रोशनी का है। कुछ अंग्रेज़ों ने कृपा की, बहुत सारा झमेला साफ ही कर दिया। कुछ गाँधी बाबा भी आपके वास्ते मरणव्रत रखकर आपस में मिला रहे हैं। यह पाकिस्तान वाला झगड़ा तो जिन्ना ने खड़ा कर रखा है, कुछ अक्ल ठिकाने लायेगा।'' फिर गाँव के प्रसिद्ध पंडित दीनानाथ जी की ओर देखते हुए आपने फ़रमाया -

''इनको तसल्ली दो ताकि आईंदा यह आराम से समय काट सकें।''

पंडित जी ने आज्ञा पालन करते हुए सबसे अर्ज़ की कि आईंदा किसी को शिकायत का मौका नहीं दिया जायेगा। यह सुनकर हरिजन प्रेमियों को इतनी प्रसन्नता हुई कि वे खुशी-खुशी चरणों में प्रणाम करके लौट गये।

हरिजनों के चले जाने के बाद पंडितों की ओर देखते हुए फ़रमाया, ''देखो, कितना भयानक समय आ रहा है। जो कड़े बंधन तुमने डाल रखें हैं, कहाँ तक आपस में प्रेम संबंध बनने देंगे। यह लोग असल में सेवादार हैं। तुम

गुरु बनकर हलवे-मांडे खा रहे हो तो इनके सिरों पर। तुम्हें गुरु इसलिए बनाया गया था कि सत्-असत् का निर्णय करके क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को समझाओ, ताकि ये भी सही कर्म करें। तुम्हें तो तप में समय गुज़ारना चाहिए ताकि कोई रोटी पहुँचा जाये, कोई लक्कड़ पानी की सेवा कर जाये। दरिन्दों और दुश्मनों से रक्षा करने वाले क्षत्री थे। धन की सेवा करने वाले महाजन लोग थे। तुम्हारे आगे-पीछे छोटा-मोटा कार्य करने वाले यही हरिजन हैं। यह पाँव जो हर वक्त गंदी या अच्छी जगह चलने वाले हैं, शूद्र के समान हैं। इनको क्या अलग कर सकते हो? तुम महाजनों से भी नफ़रत करते हो। अजीब तुम्हारे हिसाब बने हुए हैं। पंडित जी, अब वह ज़माना नहीं है। आँखें खोलो। सबको मिलाने वाला सबक पढ़ाओ।''

(13) सनातन धर्म

गुरदासपुर में 26 दिसम्बर, 1950 को सत्संग में जब महामन्त्र व मंगलाचरण के बाद वाणी का पाठ हो चुका और श्री महाराज जी सत् उपदेश की अमृत वर्षा करने लगे थे कि एक प्रेमी ने फूल लाकर भेंट किया और नमस्कार करके मुड़ने को था कि आपने झट ही दोहा उच्चारण फ़रमाया।

मूल ब्रह्मा डाल विष्णु, फूल शंकर देव रे।
तीनों देव तूँ प्रत्यक्ष तोड़ें, करें किसकी सेव रे।।

''प्रेमी! जिस जगह यह लगा हुआ था उस जगह अच्छा लगता था। क्यों तुमने तोड़कर इसे रख दिया? आईंदा ऐसा न करना। यह एक कायदा बना हुआ चला आ रहा है कि सन्तों के पास जावें तो कुछ सेवा में भेंट ज़रूर लेकर जावें, मगर यहाँ अपने पापों को भेंट करें और अच्छे विचार ले जावें।'' इसके बाद सत् उपदेश वर्षा फरमाई।

उसके बाद आपने फ़रमाया, ''प्रेमी! कोई विचार करो।'' एक प्रेमी ने झट अर्ज़ की, 'महाराज जी! आपने फूल की भेंट को स्वीकार क्यों नहीं किया, हालांकि सब महात्मा-जन अच्छी तरह गले में हार डलवाते हैं?'

श्री महाराज जी ने बड़े प्रेम से फ़रमाया, ''लाल जी! तुम हिन्दू लोग फूल-पत्र सन्तों के आगे रखकर, जल में स्नान से और गऊ माता को आटे का पेड़ा देने से ही छुटकारा चाहते हो, और चाहते हो कि और कुछ न करना-धरना पडे। प्रेमी, छुटकारा शरीर भेंट से भी नहीं होता। इनमें कोई कल्याण नहीं, न कोई असलियत है। मड़ियाँ, कबरें पूज लीं, दरख़्तों के आगे मत्थे रगड़ लिए, साल के बाद या कभी-कभी गंगा स्नान कर लिया और इसी में कल्याण समझ लिया या गाय-बच्छी वैतरणी पार करने के लिए दान कर दी, यह सब वहम, तोहमात कहाँ तक तुम्हारी बुद्धि को निर्मल कर सकते हैं। आँखें खोलो, अब वह ज़माना नहीं रहा। बाल की खाल निकालने वाली आईंदा नस्लें आ रही हैं। सनातन धर्म यह नहीं है। पुराना सनातन धर्म क्या था, इसका विचार करें। ऋषियों, मुनियों का धर्म था- उपकार, निष्काम कर्म, दुखियों की सेवा, हर जीव मात्र में अपनी आत्मा का विचार करना। किसी को मन, वचन, कर्म करके दु:ख न देना, सदा एक प्रभु की आराधना करनी, जो कुछ धन, सम्पत्ति, परिवार प्राप्त है, बल्कि अपना शरीर भी सब प्रभु की दात समझनी, भिन्न-भेद से रहित होना, हर पदार्थ व जीव मात्र में उस समस्वरूप परमात्मा को देखना। आज क्या हालत है, **चूल्हे दी तेरी तवे दी मेरी, या दग़ा तेरा आसरा।** क्या आहार पवित्र है? व्यवहार में कितनी सफाई, पवित्रता रखी हुई है? प्रेमी, यह फ़कीर खाली मत्था टिकाने वालों में से नहीं है। यह तुम लोगों को समझाने आए हैं। समाँ मिले दो घड़ी के लिए आया करो। जाओ, अब कुछ दुनिया का कारज करो।''

अच्छे-अच्छे अमीर, पढ़े-लिखे प्रेमी बैठे थे। एक प्रेमी ने कहा, 'महाराज जी! सारी पोथी खोल दी है। ऐसा ही हमारा जीवन है। बड़े-बड़े सन्त आते हैं, कथा श्रवण करने के बाद सब प्रणाम, भेंट कर देते हैं। कौन इस तरह खोल कर समझाता है। वाकई सन्तों की महिमा अपार है।'

(14) सत्पुरुषों की निर्लेपता

चाँदनी रात का समय था। श्री महाराज जी तम्बू में विराजमान थे। प्रेमियों से तीन तापों के विषय में चर्चा चल रही थी। एक प्रेमी ने अर्ज़ की, 'महाराज जी! तीन तापों का निर्णय करके समझाने की कृपा करें।'

श्री महाराज जी - शोक, मोह, लोभ इत्यादि द्वारा उत्पन्न दु:ख आध्यात्मिक यानि आधि दु:ख कहलाते हैं। शारीरिक बीमारियों से पैदा हुए दु:ख को व्याधि दु:ख कहते हैं। तूफान, आँधी, बारिश, बिजली, सर्दी, गर्मी द्वारा जो दु:ख प्राप्त होता है उनको उपाधि विकार करके कहा गया है। इस तरह सुख भी तीन तरह के हैं। अपनी प्रिय वस्तुओं की याद, शारीरिक बल, शारीरिक सुन्दरता, अपनी अक्लमंदी, बुद्धिमता के अभिमान का सुख, कर्त्तव्य यानि गुणों का अभिमान, घमण्ड द्वारा जो सुख महसूस होता है यह आध्यात्मिक सुख कहलाता है। स्त्री, पुत्र, पति, भाई, दोस्तों के संजोग और अनेक वस्तुओं के मिलने से जो सुख मिलता है आधिभौतिक सुख कहलाता है। इस तरह ठण्डी-ठण्डी शीतल वायु के स्पर्श, बरसात के फौहारें ओर नदी, नालों, पहाड़ों, बाग़ों और कई तरह के सुन्दर दृश्यों से जो सुख महसूस होता है, यह आधिदैविक सुख कहलाता है। इस समय को ही देखो किस कदर यमुना का वेग ठाठें मार रहा है। चाँदनी रात कितना मन प्रसन्न कर रही है। एकान्त में और भी अधिक आनन्द आ रहा है। देख कर मन प्रसन्न हो रहा है। यह आधिदैविक सुख है।

प्रेमी जी, जिसका मन इन्द्रियों के सुख-दु:ख की प्राप्ति व अप्राप्ति में चलायमान नहीं होता और जो अन्तर से राग, भय, कामना, क्रोध से रहित है, वह ही अक्ले-सलीम (श्रेष्ठतम बुद्धि) वाला, स्थिरचित है। उसका पता तुमको पूरी तरह नहीं लग सकेगा, जब तक तुम खुद ऐसी स्थिति को प्राप्त न कर लो। जरा-जरा सी बात में मन संशययुक्त हो जाता है। हर एक के मन की ऐसी ही हालत है। कृष्ण सदा ही जती और दुर्वासा सब कुछ खा-पीकर कह

रहा है, ''जाओ देवियो! जमुना माई से कहना दुर्वासा निराहारी है तो रास्ता दे दे।''

श्री महाराज जी - प्रेमी, सत्पुरुषों के जीवन को समझना बढ़ा मुश्किल है। वह अपनी ज्ञान अवस्था में कँवल की तरह निर्लेप रहते हैं। चाहे वह बातें कर रहे हों, चाहे लेटे हुए हों, चाहे दुनिया का ब्यौहार कर रहे हों, वह कर्म के बन्धन में नहीं पड़ते। दुनिया की निगाह में वह कर्म कर रहे होते हैं। ज्ञान दीपक उनके हृदय में हर समय प्रकाश करता रहता है, जिस करके उनको कर्त्तापन सताता ही नहीं।

एक समय किसी गोपी ने जाकर कृष्ण के आगे प्रार्थना की कि श्री महाराज जी कृपा करें, पुत्र का सुख प्राप्त कर सकूं। इस पर कृष्ण ने फ़रमाया कि जाकर दुर्वासा से यह प्रार्थना करो। गोपी ने अर्ज़ की, 'महाराज जी! दुर्वासा यमुना पार रहते हैं, कैसे पार जा सकती हूँ।' कृष्ण ने फ़रमाया, 'जाकर यमुना माई से प्रार्थना करो, अगर कृष्ण सदा जती हैं तो रास्ता दे दो।' गोपी मन ही मन में इस विचार को सुनकर हैरान हुई कि श्री महाराज जी ने यह क्या बात कही है। किस तरह एतबार किया जावे। मगर उनकी आज्ञा पाकर मीठे भोग पदार्थ लेकर सहेलियों के साथ चल पडी। यमुना के किनारे जाकर उसी तरह प्रार्थना की। यमुना ने रास्ता दे दिया। जब गोपियां उस पार दुर्वासा ऋषि के पास पहुँची, पदार्थ रखकर प्रणाम करके अपनी कामना ऋषि से बयान की। दुर्वासा ऋषि ने सब पकवान खा लिए और गोपी को आशीर्वाद दी और तथास्तु कहकर फ़रमाया, 'जाओ।'

गोपी ने अर्ज़ की, 'महाराज जी! अब इधर से यमुना कैसे पार की जावे?' तो दुर्वासा ऋषि ने कहा कि यमुना जी से जाकर इस तरह कहो कि अगर दुर्वासा ऋषि निराहारी हैं तो रास्ता दे दो। यह विचार सुनकर गोपी को और भी हैरानी हुई, क्योंकि ऋषि ने उनके सामने सब कुछ खा लिया था। गोपियों ने यमुना के किनारे जाकर कहा कि माई, अगर दुर्वासा ऋषि निराहारी हैं तो रास्ता दे दो। यमुना ने रास्ता दे दिया और सब पार हो गईं।

फिर भगवान कृष्ण के पास जाकर दण्डवत प्रणाम करके पूछा कि महाराज जी, हमें इन बातों का भेद बताने की कृपा करें कि आप कैसे जती हैं और ऋषि दुर्वासा कैसे निराहारी हैं।

कृष्ण जी ने उत्तर दिया कि वह इन्द्रियों के विषय-भोग मन की ख़्वाहिश से नहीं करते और इसी तरह दुर्वासा ऋषि ने आहार मन की ख़्वाहिश को पूरा करने की ख़ातिर नहीं किया है।

महापुरुषों के करने और न करने की तरफ़ ध्यान न दिया करो। फ़कीर सिर्फ चाय पीते हैं, अगर तुम भी नकल करोगे तो नष्ट हो जाओगे। पहले ऐसी स्थिति पैदा करो। फ़कीरों के सामने कई किस्म के पदार्थ फल वगैरा आते हैं, क्या यह उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते? दरअसल इनके अन्दर चेष्टा ही नहीं होती।

जैसे जल में कँवल निरालम, मुरग़ाबी निशानिये।
सुरत शब्द भव सागर तरिए, नानक नाम बखानिए।।

यह सब नाम की महिमा है। तेरे सामने रहनी वाले सन्त मौजूद हैं। जब तक ऐसी तेरी भी रहनी, सहनी नहीं बनती तब तक मंज़िले मकसूद तक पहुँचना मुहाल (कठिन) है। ऐसा करने के लिए जीते जी मरना है। जब ऐसी मौत को कबूल करोगे तब असली ज़िन्दगी मिलेगी। कबीर ने कहा :-

जिस मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये, पूरण परमानन्द।।

(15) भेष बनाने की मनाही

गुरुदेव किसी किस्म का भेष नहीं चाहते थे। न स्वयं उन्होंने कोई सन्तों वाला भेष बनाया हुआ था। साधारण वस्त्र ही पहना करते थे। न वह चाहते थे कि कोई प्रेमी भेष बनाए। एक दिन सत्संग शुरू होने के वक्त दास ने सिर पर बजाए पगड़ी बांधने के एक कपड़ा रख लिया और ग्रन्थ पढ़ना शुरू कर दिया। गुरुदेव ने इस बात को पसन्द न किया। जब सत्संग समाप्त हो गया,

काफी संगत चली गई, तो दास को पास बुलाकर फ़रमाया –

गुरुदेव – प्रेमी आज तूने यह क्या स्वाँग बनाया हुआ है। टाकी (टुकड़ा) सिर पर बाँध रक्खी है। खबरदार, आईन्दा कोई नमूना बनने की कोशिश की तो। पगड़ी किसी को दे दी है? जिस बात को अच्छा नहीं समझते वह ही शुरू कर देता है। जो लिबास धारण कर रक्खा है उसी में रहो। बेईमान नई-नई खोजें निकालता है। उस समय तुमको कुछ नहीं कह सके। ऐसा तरीका धारण करना चाहिये, जो हमेशा चलता रहे। जब भेष बनाने का समय आएगा, देखी जावेगी। सुना क्या समझा है?

भगत जी – श्री महाराज जी, आईन्दा ऐसी बात नहीं करूंगा।

गुरुदेव – बनारसी, जिस पाखण्ड को खंडन करते हैं, उसी को तुम धारण कर लेते हो। जब इस भेष की ज़रूरत समझेंगे, देखी जावेगी। मुहम्मद साहिब के चार यार (दोस्त) थे। अभी इधर और कुछ साथी बना लोगे, फिर सोचना। साधारण जिस तरह चल रहे हो, उसी में रहना ठीक है। आखिर में ज़ाहरी भेष ही धर्म का स्वरूप बन जाता है। असल में मन के स्वभाव को तबदील करना है। अच्छा यह बताओ, जो बूढ़ा साधु आता है, इसका क्या रंग है? तेरे साथ बड़ी बातें करता है।

भगत जी – श्री महाराज जी, इसकी यह प्रार्थना है कि मेरे पर श्री महाराज जी कृपा दृष्टि करें।

गुरुदेव – (मुस्कराकर) पहले इससे यह पूछ, यह जो भेष बनाया हुआ है, लाल कपड़े उतारेगा। ये लोग यह चाहते हैं कि इनसे कुछ सीख लिया जावे। फिर दूसरों के अच्छी तरह गुरु बन सकें। ये लोग अपना सुधार नहीं चाहते। जब इनका यह भेष व्यवहार बन चुका है, किसी ठीक रास्ते को नहीं पकड़ सकते। इन साधुओं, पंडितों और ज्ञानियों से बच कर ही रहना चाहिए। ये लोग ज़बानी जमा-खर्च करने वाले होते हैं। महदूद अकल (सीमित बुद्धि) वाले बन जाते हैं। अपनी बेहतरी नहीं सोचते। सिर्फ पैसा बटोरना काम हो जाता है। सेवा करने के बजाए कराने वाले बन जाते हैं। इस वास्ते सेवा करनी

इनके वास्ते मुश्किल हो जाती है। जिस रास्ते को पकड़ रखा है ठीक है। इधर सेवा करने वालों की ज़रूरत है, करवाने वालों की ज़रूरत नहीं। अब तो उधर ही जाएं, जिधर से सिर मुंडवा रक्खा है। कुछ आप भी समझा करो। अच्छा जाओ, आए हुए प्रेमियों की सेवा करो।

(16) सच्चा साधु कभी नहीं सोता

एक दिन दोपहर को जब दास सो कर उठा तो देखा कि गुरुदेव समाधि में थे। कुछ पत्र लिखने के बाद जब गुरु चरणों में आकर बैठे तो गुरुदेव ने किसी काम के बारे में पूछा कि वोह कर दिया है।

दास - श्री महाराज जी, आप सोये हुए थे। दास ने जगाना मुनासिब नहीं समझा। ख़्याल आया, जब उठोगे तब पूछकर कर लूँगा।

गुरुदेव - बच्चू! साधु, सर्प, शेर और कुत्ता कभी नहीं सोते। अन्तर से हर समय जागते रहते हैं। असली साधु को तो तीन काल निन्द्रा नहीं आती। योग निन्द्रा में लवलीन रहते हैं। इनको सोया यानि लेटा हुआ कभी न समझो। उठते, बैठते, लेटे, चलते, हर समय अपनी मस्ती में मग्न रहते हैं और जीवों की नज़र में बेशक चलते, बैठते, लेटे दिखाई देंगे। हर बात उनकी मशीन के तेल देने के तुल होती है। इच्छा करके कोई कर्म नहीं करते, न सोचते हैं। सर्प, शेर, कुत्ते के अन्दर भी अपनी-अपनी मस्ती होती है। खेचरी मुद्रा इनसे खुद-ब-खुद बन जाती है। कर्म दण्ड भोगने की वजह से कुछ कह, सुन नहीं सकते। बाकी कुछ खुराक की खुमारी में जिस जगह पड़े हैं, वहाँ पड़े रहते हैं। जरा सी आहट लगने पर झट होशियार हो जाते हैं।

(17) संसारी मोह त्यागने का संदेश

संसारी लोग जिस स्थान पर कुछ दिन ठहर जाते हैं, कुदरती उस स्थान से मोह बना लेते हैं और यही मोह आगे चलकर बन्धन का कारण बन

जाया करता है, और इसी कारण वह दु:खी और अशांत रहते हैं। साधू संसार में सदा निर्लेप रहते हैं, इसलिए ये बरसों तक एक स्थान पर बैठे भी रहें तो भी उनको उस स्थान से लगाव नहीं होता और वह हर समय समभाव में विचरते रहते हैं।

रियासत कश्मीर के ऊँचे पहाड़ पर, जिसका नाम सरूपा जंगल था और जो समुद्र से लगभग 8,000 फुट ऊँचाई पर था, श्री सत्गुरुदेव मंगतराम जी श्री महाराज जून 1945 में एकान्तवास और तप के वास्ते ठहरे हुए थे। इस एकान्तवास से वापसी पर जब आप कुछ शिष्यों और दास के साथ वापस नीचे मैदानों की तरफ़ आ रहे थे तो दास मुड़-मुड़ कर जंगलों और पहाड़ों के दृश्य देख रहा था, मानों डेढ़ माह इस जगह पर गुज़ारने के बाद उनका लगाव पहाड़ के सुन्दर दृश्यों में अटक कर रह गया हो। ऐसा प्रतीत होता था कि वह इस जगह को छोड़ते हुए मन में दु:ख प्रतीत कर रहे हैं। गुरुदेव अपने सेवक की मोहग्रस्त अवस्था को भाँप गये और आपने फ़रमाया।

गुरुदेव - प्रेमी, पीछे मुड़-मुड़ कर क्या देखते हो?

दास - श्री महाराज जी, यह पहाड़ी दृश्य इतने सुन्दर और रमणीक हैं कि मन चाहता है कि बार-बार इनको देखता रहूँ। छोड़ने का मन नहीं चाहता।

इस पर गुरुदेव ने फ़रमाया -

आवत हर्ष न होई, जावत सोग न मनाइये जी।
ऐसी रहनी जब होवे, तब समता भाव लखाइये जी।।

मोह बन्धन का कारण है। संसार की किसी वस्तु से मोह न लगाओ। मोह करके जो आसक्ति के भाव में मन फंस जाता है, इस करके न जाने कब और किस योनि में इधर आना पड़ जाए। इसलिए चित्त में किसी वस्तु की प्रीति न रखो। प्रीति ही जन्म-मरण का कारण है। प्राप्त हो गया वाह-वाह, बिछड़ गया वाह-वाह।

12 अगस्त, 1944 को सुबह ही डोमेल से चलकर कोहाला होते हुए शाम को जलमादा पधारे और गाँव से बाहर कुछ दूरी पर बने स्थान पर डेरा

लगाकर सत् उपदेशों द्वारा उस इलाके की जनता को कृतार्थ करते रहे।

एक दिन दोपहर के समय जब दास आपकी सेवा में उपस्थित था, आपने मौज में आकर फ़रमाया –

''शेरों के स्थान पर शेर ही जाकर ठहरा करते हैं। कभी ये जेहलम इस स्थान के पास ही बहता था। ऋषि लोग आपस में यहाँ तत्त्व ज्ञान की बातें किया करते थे। जगह-जगह तप के स्थान बने हुए थे। जगह-जगह पानी के झरने थे। इसी वजह से इस का नाम जलमादा है। अब फिर वही सदियों के बाद देखने का मौका आया है।''

यह विचार सुनकर दास ने प्रश्न किया।

प्रश्न – श्री महाराज जी, हम भी इसी तरह जन्म-जन्मांतर से शरीरों को धारण करते चले आ रहे हैं?

उत्तर – प्रेमी यह लेखा अथाह है, कई जन्म मिले, फिर बिछड़े। बिछड़-बिछड़ कर लेखा पूरा करो ताकि छुटकारा मिले। कमी रह जाती है, तब ही संसार में बार-बार आना-जाना पड़ता है। जब जान लिया अपना आप तब फिर वेद, पुराण क्या। जिस रास्ते पर चल रहे हो, चलते चलो। अपने आप समझ आ जाएगी। यह कोई घोलकर पिलाने वाली चीज़ नहीं। प्रभु आज्ञा से सेवा का मौका मिला है। सेवा और सिमरण रूपी पदार्थ मिल जाए तो संसार में इससे दुर्लभ वस्तु और क्या है। हर वक्त निगाह सत्पुरुषों के जीवन पर रखो कि जिस तरीके से वह गये हैं, हमने भी वहीं जाना है। जिस आनन्द को हासिल करके वह सेहतयाब हुए हैं वह ही सेहत हमने पानी है। ऐसे सत्भाव ही ऊपर उठाने वाले होते हैं।

इतना फ़रमाने के बाद आपने मुझसे फ़रमाया, ''प्रेमी! दो घूंट पानी लाओ।''

पानी मिलने पर आपने इनमें से सिर्फ दो घूंट ही पिये और बाकी पानी दास के हवाले करते हुए फ़रमाया –

''पी जाओ! बुद्धि निर्मल हो। मोह माया का चक्कर अथाह है, इससे

बचना ही शूरवीरों का काम है। प्रेमी, जतन करके ही जीव इस फन्दे से निकल सकता है।''

27 अगस्त, 1944 को इस कुटिया में एक विशाल सत्संग सम्मेलन हुआ, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब शामिल थे। उस समय आपने निम्नलिखित सत् उपदेश देकर हाज़िर संगत को निहाल किया –

''जहालत, तास्सुब, अज्ञानता, बादमुबाद तथा ख़ुदग़र्ज़ी सब सत्संग में आकर ही ख़त्म हो सकते है। जो खुशी और सुख एकता में है वह अलग-अलग होकर अपना राग अलापने में नहीं। जितने भी महापुरुष, पीर, पैग़म्बर, अवतार और गुरु इस संसार में आये और आते रहेंगे, सबका शरीर इन पाँच तत्त्वों का ही था, चाहे कोई मशरिक में हुए चाहे मग़रिब में। सबका सन्देश एक ही ढंग का था। सबने ख़ुदा की खलकत की खिदमत पर ज़ोर दिया और एक ख़ुदा पर यकीन रखना समझाया। मुलकों के अलग-अलग स्वभाव और लिबास होने करके एकता यानि समता ख़त्म नहीं हो सकती। एकता को ख़त्म करने वाली ख़ुदग़र्ज़ी है। जिस जगह ख़ुदग़र्ज़ी ने ज़ोर मारा वहाँ ही फसाद, लड़ाई-झगड़े शुरू हो गये। फानी (नाशवान) दुनिया में आकर हर एक इन्सान ने अपनी आकबत का विचार करना है। किसी ने मस्जिद में बैठ कर किया तो किसी ने मन्दिर या गुरुद्वारे में। यह स्थान खुदा की बन्दगी, इबादत और नेक विचारों को विचारने के वास्ते बनाए गए हैं, न कि लड़ाई, फसाद की बातें सोचने के वास्ते। बार-बार इन्सानी चोला नहीं मिला करता। इस वास्ते जहाँ तक हो सके सादगी, जो देवताओं का असूल है, इसे धारण करना चाहिए सत्य, सच्चाई, खिदमत यानि सेवा और सत्संग यानि आपस में बैठकर खुदा की बातें सोचना, फिर जितना समय मिल सके सिमरण यानि खुदा की इबादत में गुज़ारना, यही भाव एकता पैदा करने वाले हैं। बाकी दुनिया की हवा इस समय खराब चल रही है। शायद इस तरफ़ यह फ़कीर फिर न आ सकें, इसलिए फ़कीरों के इन वचनों को याद रखना। आपस की मोहब्बत ही तुम सबको शाँति प्रदान कर सकेगी। ईश्वर सबको अक्लेसलीम (श्रेष्ठ बुद्धि)

बख़्शें।''

(18) हर प्रकार की सेवा के लिए प्रेरणा

10 फरवरी, 1946 को गुरुदेव तरनतारन शहर के बाहर एक बग़ीचे में विराजमान थे। एक दिन प्रातः जब स्नान करके आये तो निकट के एक पेड़ के नीचे धूप में बैठने के लिए गए। दास साथ था। क्या देखा कि उस दिन कोई उस जगह पर मल त्याग कर गया था। दास ने इस बात का ध्यान न किया। जब आसन बिछाने लगे तो गुरुदेव ने देख लिया और फ़रमाया, ''पहले इसे उठाकर फेंक आओ।'' मन में घृणा आई और विचार किया कि कोई टीन या कोई और चीज़ लाकर इसे उठाकर फेंक आऊँगा। इतना सोचकर दास बेलचा लेने चला गया। गुरुदेव यह सब देख रहे थे। मेरे जाने के बाद गुरुदेव ने स्वयं उस मल को हाथों से उठाया और दूर जाकर फेंक दिया। जब मैं वापस आया तो क्या देखा कि गुरुदेव हाथ धो रहे हैं, और मल वहाँ नहीं है। यह आश्चर्यजनक घटना देखकर मुझे शर्मिंदगी आई। खैर, आसन लगाया गया। गुरुदेव उस पर विराजमान हुए और मुझे फ़रमाया –

''प्रेमी! इस जगह कड़ाह प्रशाद या और कोई चीज़ रख जाता तो उसे उठाने के वास्ते बड़ी जल्दी इन हाथों से सेवा करता। बेईमान, इस मल के उठाने में दस बातें सोचीं तूने। गुरु के वचन पर ध्यान न दिया। शायद यह ही कुछ और बन जाता। जिस समय जिस बात के वास्ते आज्ञा हो, फौरन पालन करो। तुम्हारी बुद्धि का हर घड़ी ये इम्तहान लेते रहते हैं। सेवा करते हुए यह कभी ख़्याल न करो, यह खराब है, यह अच्छी है, यह ग़रीब है। हर जीव की तन, मन, वचन, कर्म से सेवा करने के वास्ते हर घड़ी तैयार रहो। यह खोटी बुद्धि नहीं होनी चाहिए, अगर निर्मलता लाना चाहते हो तो। अगर कोई कहे बर्तन साफ करो, पानी लाओ, टट्टी (मल) फेंक आओ और भी इससे तुच्छ सेवा का समय आ जाए तो खुले चित्त से करो। मन में ग्लानि आ जाये तो समझो मन बेईमान है। ज़बरदस्ती इस तरफ़ लगाओ। मन को सेवा की सार का कुछ

पता नहीं लगता। मन की मलिन को दूर करने के वास्ते केवल एक सेवा का मार्ग ही है। मन के रोगों से खुलासी पाने का वाहिद इलाज एक सेवा ही है और अन्दर नाम सिमरण से अन्त:करण शुद्ध होता है। इनके साथ रहना है तो सीधे होकर रहो।''

घर फूंका जिन आपना, लिया चौहाता हाथ।
अब फूंकेंगे तिसका, जो चले हमारे साथ।।

''तुम और प्रेमियों की तरफ़ न देखा करो। यहाँ तो सेवा करके फिर हाथ जोड़ो और कहो कि बड़ी कृपा की, दया की जो इस दास को सेवा का मौका बख़्शा है। इस तरह मन के अन्दर शील, सन्तोष, प्रेम, वैराग्य और अनुराग पैदा होते हैं। सब शरीरों को अपना शरीर समझो। जिस तरह अपने शरीर की गन्दगी साफ करते वक़्त मन में ग्लानि नहीं आती, इसी तरह ऐसा मौका मिलने पर मन को कभी मत मोड़ो। अमली जीवन हर तरह से होना चाहिए। गुरु दरबार में जब भी सेवा सामने आए, करते समय गुरु की सेवा समझो। ये मत ख़्याल करो कि दूसरे आदमी की सेवा कर रहा हूँ। सबको अपने से उच्च और गुरु का रूप जानो। तब जाकर मन द्वारा हर एक की सेवा बन सकती है। अच्छा! अब सुना, आगे तू किस तरह करेगा?''

दास - श्री महाराज जी, उठाने से इन्कारी तो न थी, सिर्फ विचार यह आया कि किसी और चीज़ से उठाकर फेंक दिया जावे ताकि हाथ खराब न होवें। ज़रा खराब चीज़ है।

गुरुदेव - क्या हाथ गल जाने थे? कोई आग थी? अभी तो ये तुम प्रेमियों का कोई इम्तिहान नहीं ले रहे। ऐसा समय आ जाए तो तुम सब ही भाग जाओ।

दास - (जरा हंस कर) श्री महाराज जी, आप जब इम्तहान लेंगे, बुद्धि भी ऐसे बख़्शना ताकि रह न जाएँ। यहाँ तो अक्ल ऐसी ही है। पल-पल में भरम जाती है। बड़ी कृपा है जो चरणों में मूढ़मती को जगह बख़्शी हुई है। जिस तरह भी बेअक्ली से जो कुछ बन पड़ता है, स्वीकार करें। इसी तरह

आहिस्ता-आहिस्ता सूझ आती है।

गुरुदेव - प्रेमी, इनके मुँह से निकले ही न, तुम खुद ही सेवा करने लग जाओ या करते जाओ- यह गुरमुखपना है। फिर कह कर सेवा करवानी मध्यम भाव है। जबरदस्ती सेवा करवानी तमोगुणी सेवा है। वैसे सेवादार के अन्दर खुद-ब-खुद ही प्रेरणा होती रहती है, अब ये इस तरह, ऐसे करना चाहिए। किसी समय ही हुक्म द्वारा कारज करने पड़ते हैं। जिस समय किसी बात की समझ न आए तो पूछ लो। हर समय इधर से तुम्हारे वास्ते दरबार खुला है।

(19) शिष्यों के लिए गुरुदेव की रात्रि में पैदल यात्रा

एक सप्ताह लाहौर ठहरकर और वहाँ के निवासियों को सत् उपदेश अमृत से निहाल करके आप 7 मार्च, 1944 को कुठाला तशरीफ़ ले आए। आप अभी लाहौर से रवाना नहीं हुए थे कि एक पार्सल प्रेमी हरबंस लाल, कोहाला निवासी ने भेजा। उसे खोलने पर उसमें एक चादर निकली। जब कुठाला आप पहुँचे तो प्रेमी को आपने निम्नलिखित शब्दों द्वारा पत्र लिखवाया।

ऐसी चादर दात करो, मैं ओढ़ूँ नगन शरीर।
जनम-जनम का मिटे संदेसा, काल चक्कर तकसीर।।
जत का ताना सत का पेटा, मत धीर जोलाहा बनावे।
प्रेम की नाली से बुनत करीजे, मन पवन की खींच लगावे।।
बुने अति गाढ़ा कपड़ा, वैराग की ठोक लगाई।
नाम ब्योपारी कपड़ा लेवे, नित विरह का माप कराई।।
कहन कथन विच आवे नाहीं, जो कपड़ा चमक दिखाई।
तीन लोक में ढूंढत फिरी, कोई विरला मोल चुकाई।।
हर जन साजन कपड़ा लेवे, त्रिवेनी घाट में धोवे।
तीन ताप की मैल को हरे, नित सत् यतन परोवे।।

सत्गुरु दरज़ी सीवे चादर, सुरत निरत दोऊ पाट मिलाई।
विवेक की सुई ध्यान का धागा, तप योग धरे कठिनाई।।
निर्वान शबद की अखंड चादर, कोई गुरमुख साजन ओढ़े।
'मंगत' तिसके कँवल में, नित-नित प्रीती जोड़े।।

यह पत्र लिखवाने के बाद आपने वह चादर दास को दे दी और आज्ञा दी कि प्रेमी हरबंस लाल को लिख दो आइन्दा इस तरह पार्सल न किया करें। भेंट हाज़िर होकर ही करनी चाहिये।

कुठाला में आपने राय बहादुर लाला केदारनाथ जी के बाग़ में ही कोठी के ऊपर छत पर निवास किया। इसी तरह एक बार आप शुभ स्थान से कोई बारह-चौदह मील के फासले पर किसी गाँव में तशरीफ़ ले गए थे कि पीछे दो प्रेमी बाहर से दर्शनों के लिए आ गए। पहुँचने पर जब उन्हें पता लगा कि श्री सत्गुरुदेव जी स्थान पर नहीं है, तो उन्होंने श्री महाराज जी को बुलाने के लिए गाँव से आदमी भेज दिया और खुद उस गाँव तक जाने की तकलीफ़ गंवारा न की। जब पैग़ाम लेकर सत्पुरुष के चरणों में शुभ स्थान-वासी पहुँचा तो शाम हो चुकी थी। संदेशा मिलते ही आपने चलने की तैयारी कर ली। इन विचारों की सूचना मिलने पर आपने फ़रमाया -

''राम नाम को मिलने वाला कोई प्रेमी आए तो सही, उसके वास्ते तो सिर के बल भी चलकर जाना बड़ी बात नहीं। यह आने वाले की नासमझी है। चाहिये तो यह था कि वह चलकर आते और यहाँ पहुँचते। खैर, कलयुग ने सबकी बुद्धि कमज़ोर कर रखी है।''

आप रात के दो बजे वहाँ से पैदल रवाना हो लिए और सुबह आठ बजे शुभ स्थान पहुँच गए। जब आए हुए प्रेमियों को पता लगा कि श्री महाराज जी पैदल चलकर आए हैं, तो उन्होंने बहुत दु:ख महसूस किया और हाथ जोड़कर माफी माँगी।

आपने फ़रमाया, ''प्रेमी, जिस तरह तुम दु:ख महसूस कर रहे हो अब सेवा, सिमरन करके प्रसन्न करो। बस माफ़ी हो जावेगी। क्या अभी तुम

बच्चे हो, यह समझ नहीं आई कि खुद ही पैदल चलकर जाना चाहिये। चलो अच्छा हो गया। अब पश्चाताप न करो। आइन्दा ख़्याल रखो, किसी का भला हो जाये और अंधमति जीव राहे रास्ते पर आ जाए।''

(20) हक की चीज़ ही ग्रहण करनी चाहिए

दिसम्बर 1946 का वृत्तान्त है। श्री सत्गुरुदेव महात्मा मंगतराम जी सुखो की मंडी में विराजमान थे। वैसे तो सत्पुरुष सिवाय दूध के कुछ नहीं ग्रहण करते थे, वह भी चौबीस घण्टे में एक बार लिया जाता था। कभी-कभी कोई प्रेमी सब्जी ले आता था तो अपनी मौज में एक नाम मात्र टुकड़ा ग्रहण कर लिया करते थे। एक दिन की बात है, प्रेमी साईं दास मूलियाँ ले आए और आपके सामने रख दीं। गुरुदेव सेवक के मन का भाव भाँप गये और फ़रमाया -

गुरुदेव - प्रेमी, कल तुम पूछ कर लाये थे इसलिए ले ली गई थी। परन्तु आज तू सवेरे-सवेरे किस की उखाड़ कर लाया है?

प्रेमी ने कहा - श्री महाराज जी! जमींदार तो वहाँ नहीं था, वैसे ले आया हूँ। पैसे बाद में दे दिए जायेंगे।

परन्तु गुरुदेव ने फ़रमाया - जाओ, जाकर कीमत दे के आओ। अपने गुरु को भी इस तरह का माल खिलाते हो। तुम्हारा पुराना स्वभाव जाता ही नहीं।

प्रेमी इतना सुनकर मूलियाँ वापस ले गया और जमींदार को पैसे देकर आया। जब फिर श्री गुरुदेव के चरणों में बैठा तो बड़े प्यार से गुरुदेव ने प्रेमी से कहा -

''प्रेमी! इस प्रकार बग़ैर पूछे और बिना दाम दिए लाने में क्या फ़ायदा। अगर जमींदार कुछ कह बैठता तो क्या इज़्ज़त रहती। अगर वहाँ वह मौजूद न था तो इन्तज़ार कर लेते। बेशक तुम्हारा वाकिफ़ होगा। इधर से सहज भाव से मुँह से निकल गया कि सवेरे-सवेरे किस की उखाड़ कर लाया है।''

(21) गुरु की दी हुई वस्तु का महत्त्व

30 दिसम्बर, 1946 को सुखो मण्डी से चलकर गुरुदेव तरनतारन पहुँचे। आमों के बाग़ में एक तम्बू में विराजमान हुए। सर्दी उन दिनों जोरों पर थी। दिन तो धूप में गुज़रा। रात को जब आराम करने लगे तो आपको ख़्याल आया अपने सेवक का, शायद उसको सर्दी लगेगी। तो आपने भगत जी से फ़रमाया –

गुरुदेव – प्रेमी! लोई में सर्दी तो नहीं लगेगी? साथ ही अपने आसन के नीचे से लोई निकाल कर दास की तरफ़ फेंक दी।

दास – श्री महाराज जी और चादर वग़ैरा साथ जोड़ लूँगा।

गुरुदेव – प्रेमी! फ़कीरों की दी हुई चीज़ को वापस नहीं करना चाहिए। प्रेमी! गुजरात में एक फ़कीर के पास एक समय औरंगजेब और उसके भाई दाराशिकोह को ज़्यारत करने का मौका मिला। फ़कीर ने एक चटाई अपने नीचे से निकाल कर आगे फेंक दी। इशारा किया, बैठ जाओ। दारा ने उस पर बैठना गुनाह समझा। औंरगज़ेब ने झट से चटाई उठाकर अपने नीचे बिछा ली। फ़कीर हँसने लगा। हँसी के बारे में पूछा गया। फ़रमाया – 'इसके लिए तख़्तशाही फेंका गया था, मगर तुम स्याने निकले। मुतबर्रक (पवित्र) जानकर और दात समझकर बैठ गए हो। खुदा के घर में बादशाही मंजूर हो गई है।'

प्रेमी, इन्कार कभी न किया करो। इधर नीचे एक लोई है। दो ऊपर हैं। एक सिराहना है, और तुम क्या चाहते हो। आधी घड़ी के बाद फिर उठ बैठना ही है। तुम आराम करो।

(22) गुरु सेवा का अनमोल फल

यह घटना कालागुजराँ (ज़िला जेहलम) की है। एक दिन आप बैठे हुए नाखून उतार रहे थे कि अचानक चाकू लग गया और खून बहने लगा।

फ़ौरन दास को आवाज़ दी। फ़रमाया –

''प्रेमी! कोई कपड़ा लाकर इसे बाँध दे।'' मैं इधर-उधर कपड़ा तलाश करने लगा और सोचने लगा कि किस कपड़े से टाकी फाड़ी जाये। इसी दौरान पास बैठे एक दूसरे प्रेमी ने अपनी पगड़ी उतार कर, फाड़ कर टाकी दे दी। जब वह कटी हुई जगह को बाँध चुका तो आपने फ़रमाया – ''वाह! तेरी बुद्धि पता नहीं कहाँ चली गई थी। ऐसे मौकों पर क्या सोचने का समय होता है? अब इस एक-एक तन्द का हिसाब देना पड़ेगा।''

दास – श्री महाराज जी, कैसे?

गुरुदेव – जिस तरह एक बार सती द्रोपदी ने भगवान कृष्ण की उंगली कट जाने पर एक दम अपनी कीमती साड़ी फाड़कर पेश कर दी थी, उसकी सेवा को देखकर कृष्ण ने खुश होकर फ़रमाया था, 'यह कर्जा किसी समय अदा कर दिया जावेगा।' समय आने पर एक-एक तन्द के बदले में कितने थान गुप्त रूप में प्रगट कर दिए, जब दुशासन साड़ी उतारते थक गया था। अन्त में सती के तपोबल से घबरा गया और शर्मिन्दा हुआ। प्रेमी, ऐसे समय में फ़कीरों की सेवा में तन-मन लगा देना ही अक्लमंदी होती है। तेरा क्या था जो सोच में पड़ गया था?

(23) तंग कपड़े पहनने की मनाही

श्रीनगर में अधिक सर्दी के कारण श्री महाराज जी बाहर तो तशरीफ़ नहीं ले जा सकते थे, बरामदे में ही टहल लिया करते थे। सर्दी बहुत हो जाने की वजह से दास ने श्री महाराज जी से कुर्ते के नीचे स्वेटर पहनने की प्रार्थना की। बड़ी मिन्नतें करने के बाद आपने पहन तो लिया, मगर रात को तीन बजे मुझे आवाज़ दी, ''बनारसी-बनारसी उठो।'' और फ़रमाया, ''पहले इसे उतारो, जिस तरह डाला है। निकम्मी ज़हमत है। इतने तंग कपड़े किस तरह पहनते हो? कितना वक्त ज़ाया किया है, जो कुछ किसी ने कहा गले में डाल लिया। बेचारे काश्मीरियों ने कब स्वेटर पहन रखे हैं। खुला कुर्ता, ऊपर लोई;

आरामदायक लिबास है। तंग कपड़े कभी भी प्रयोग नहीं करने चाहिए। एक तो फटते जल्दी हैं, दूसरे उठते-बैठते, लेटते और साँस लेने में तकलीफ़ होती है। ऐसा कपड़ो पहनो जो कुदरती हवा जिस्म से गुजरती रहे। इसे ले जाओ, तुम्हारी खुशी पूरी हो गई।''

(24) मुहम्मद साहब का आदर्श जीवन

एक दिन मुसलमान प्रेमी ने मुहम्मद साहिब के बारे में कुछ विचार विनिमय किया। उसके जाने के बाद एक प्रेमी ने मुहम्मद साहिब की शादियों के बारे में एतराज़ उठाया। उसका निर्णय तो गुरुदेव ने कर दिया, मगर रात को जब दास चरण सेवा कर रहा था तो फ़रमाया -

गुरुदेव - प्रेमी, मलिक को किसी समय क्या हो जाता है। वह नया प्रेमी नये विचार लेकर आया था। उसका चित्त प्रसन्न करने के लिए हालात बयान कर रहे थे ताकि वह भी समझे कि मुसलमानी धर्म और पैग़म्बरों के जीवन से वाकिफ़ हैं। मुहम्मद साहिब जैसा परहेज़गार कोई नहीं हो सकता। उसकी सच्चाई, सफाई, पक्के पाक-यकीन को देखकर लाखों लोग उसके मुरीद जीवन में ही हो गए थे। मामूली इन्सान न था, वाकयी पैग़म्बर कहलाने का हकदार था। इतने उजाड़ इलाके में एक खुदा की हस्ती को मनवाना कोई छोटा काम न था।

प्रेमी, इब्राहिम का तरजे गुफ़्तगू (बातचीत) का तरीका देखा - किस कदर अदब से ये लोग अपने बड़ों का नाम लेते हैं और पीर, मुर्शिद की इज़्ज़त करते हैं। जब तक बैठा रहा दो रानों होकर पीछे बैठा रहा। बैठने का, बोलने का आज़ज़ी भरा तरीका है। ये लोग जब किसी भी फ़कीर, पीर के सामने जाते हैं, मोम हो जाते हैं। हिन्दू धर्म बहुत पुरानी सभ्यता है। क्या इसके अन्दर चोर, डाकू, बुरे काम करने वाले नहीं। सब मज़हबों में अच्छे-बुरे विचारों के लोग हो जाते हैं। सबका मालिक प्रभु आप ही है। तुम चार आदमियों को तो हम-ख़्याल नहीं बना सके। इब्राहिम को पता नहीं किस तरह रंग लग गया है। हर

जगह प्रभु का प्यारा कोई न कोई मिल जाता है।

(25) गुरु नानक के स्वप्न में दर्शन

काहनूवान में निवास के दौरान एक दिन डाक्टर रोशन लाल जी ने अर्ज़ की, 'महाराज जी! जब हम पाकिस्तान से आए थे और कादियाँ में रह रहे थे, एक रात मुझे श्री गुरु नानक जी के साक्षात् दर्शन शारीरिक रूप में हुए। उस समय दिव्य प्रकाश को नमस्कार किया और प्रार्थना की- आपकी बड़ी कृपा है जो दर्शन दिए हैं। वह बोले - ज़लज़ला आने वाला है। मैंने अर्ज़ की - मेहर करो। उस घड़ी स्वप्न में क्या देखता हूँ - बहुत ज़ोर की आँधी आई। उन्होंने उंगली से इशारा किया, देखो ज़लज़ला आने वाला है। उसी इशारे के साथ ही एक शरारा (शोला) निकला। वह प्रकाश शरारा आकर उस जगह गिरा जहाँ आपके चरणों की भेंट हुई है। इस हालत के डेढ़ माह बाद आप आए हैं और इस कोठी में आप आकर विराजमान हुए हैं। आप उनका ही अवतार हैं। हम पर कृपा करने के वास्ते ही आए हैं। दास को आपने पहले ही चेतावनी द्वारा सूचित कर दिया। श्री महाराज जी, इसके बारे में आप बतायें कि इसमें क्या भेद है?'

श्री महाराज जी - प्रेमी, यह तुम्हारा अपना ही सत् विश्वास है। सन्त जिज्ञासुओं को ढूंढते रहते हैं। जिस तरह कबीर ने धर्मदास को नानक ने लहना को, इसी तरह यह खोज कर रहे हैं। मगर अभी तक -

ऐसा कोई न मिला जिस लगा कलेजे बाण।

प्रेमी सब चाहते हैं श्री महाराज कृपा कर देवें, हाथ पाँव न हिलाना पड़े। इन्होंने तो सही खोज में लगा दिया है।

जतन में ही रतन है, जो खोजे सो पावै।
लागी चोट शब्द की तन में। गृह नहीं चैन चैन नहीं बन में।।

जब जीव के अन्दर किसी पदार्थ की प्राप्ति की ख़्वाहिश उठती है, चाहे वह हिमालय की चोटी पर हो, वहाँ से मरते-मरते उतार लावेगा। जिनके

अन्दर संसार असली मायनों में असार नज़र आने लगता है और सच्ची खुशी के वास्ते चाह पैदा होती है, उनको न घर में आराम न जंगल में चैन, जब तक बुद्ध की तरह निर्वाण अवस्था को प्राप्त नहीं कर लेते।

प्रेमी डाक्टर रोशन लाल – श्री महाराज जी, कैसे विचार सत्संग का किया जावे?

ऐसा ज्ञान विचारे कोई। सो नर जीवन मुक्ता होई।।
बोलनहार कहाँ से हुआ। कैसे उपजा कैसे मुआ।।
पवन की गाँठ सहज बन आई। ताँ सों बंगला बनया भाई।।
खुल गई गाँठ खोज नहीं पाया। पवन का पुतला पवन समाया।।
जैसे बादल होत आकारा। तैसे दरसे यह संसारा।।
मिट गये बादल रहा आकाशा। ऐसे आतम को नहीं विनासा।।
इस बहुरंगी का पार नहीं पाया। कहैं कबीर गुरु भेद सिखाया।।

प्रेमी, गुरु गोसाईं मिले तब ही सत् का भेद लखावें। बिना गुरु के तरीके का विचार नहीं मिलता। बिना विचार के ज्ञान नहीं होता। जिस तरह संसार की भक्ति यानि प्राप्ति कठिन है, उसी तरह सत् की धारा पर चलना भी कठिन है।

चलो-चलो सब कोई कहे, बिरला पहुँचे कोए।
जाँ को सतगुरु साध मिले, ताँ घट सोझी होए।।

तरीका पाकर भी बड़ी भारी मेहनत की ज़रूरत है। तुमको अभी उस तरफ़ की क्या पड़ी है। तुमने अभी संसार को देखना है। प्रेमी, यह आशिकों का मार्ग भी अलग है और संसारियों का अलग।

गृही हो तो भक्ति कर, ना तो कर बैराग।
बैरागी बंधन पड़े, ताँ को बड़ा अभाग।।
तब लग जोगी जगत गुरु, जब लग है निरआस।
जब जोगी आशा करे, तो जग गुरु जोगी दास।।

बाहोश होकर बुद्धि खोलकर सुना कर। भाई का कड़ाह नहीं, जो जल्दी मुँह में

डाल लोगे। सत्संग में आया करो। इस तरह शौक बढ़ा करता है।

साध बड़े परमार्थी, धन जीवों के आए।
तपन बुझावे और की, अन्यों पारस लाए।।
नदिया बहती जात है, उठ धोइयो शताबी हाथ।
न जाने किस पलक में, नाथ से होवें अनाथ।।

प्रेमी, किसी के होके चलोगे तब कुछ न कुछ पा लोगे। मनमति जीव लोक-परलोक दोनों के सुख से महरूम (वंचित) रहता है।

(26) अभ्यास के लिए धरती कुदरती आसन

एक दिन रात को देर से सोने के कारण बाहर से आते ही कुर्सी पर बैठकर रसोई में अभ्यास करने लगा। अभ्यास क्या था, मुझे नींद आ गई। उधर गुरुदेव ने देखा कि मैं सो कर नहीं उठा, तो वह स्वयं रसोई में आ गए। आगे दास को कुर्सी पर बैठे पाया तो आवाज़ दी, ''बनारसी!'' दास की नींद खुली।

गुरुदेव ने फ़रमाया - ''प्रेमी! कुर्सी पर बैठकर कभी अभ्यास होता है? ये अक्ल तुझे कहाँ से आई है? ख़बरदार, आइन्दा कुर्सी पर बैठकर या चारपाई पर या बहुत नरम गद्दे पर सिरहाने वग़ैरा लगाकर मत अभ्यास करें। आलस और निंद्रा एक दम ऐसे आसन पैदा कर देते हैं। अव्वल तो धरती एक कुदरती आसन है। उस पर कोई आसन बिछा कर बिना टेक के बैठना चाहिए या तख़्तपोश हो तो और बात है। बाबे वाली कुर्सी पर बैठकर अभ्यास करना कब सीखा है? रसोई में कुर्सी का क्या काम?''

दास - श्री महाराज जी, यह रसोई ही ऐसी है। मेज़ पर बैठकर रोटी बनानी पड़ती है। चूल्हा बहुत ऊँचा होने के कारण मेज़ रख दिया है। साथ कुर्सी भी लाज़मी है।

गुरुदेव - प्रेमी, नये से नया स्वाँग संसारी बनाते रहते हैं। चल जा, दूध पहले ले आ, फिर स्नान करेंगे। आज जल्दी फ़ारिग हो, क्योंकि इतवार है। प्रेमी जल्दी आना शुरू कर देंगे।

(27) जनता सन्तों से भी स्वार्थ पूर्ति चाहती है

24 आषाढ़ संवत् 2001, आप तीन बजे बाद दोपहर फैलाँ जंगल से संगत के साथ पैदल ही नीचे की तरफ़ चल पड़े। प्रस्थान करने से पहले आसपास के रहने वाले मुसलमान भाई भी ज़ियारत (दर्शनार्थ) के लिए हाज़िर हुए और उनमें से एक ने अर्ज़ की, 'पीर जी! हम पर मेहर कर जाओ। हमारी गाय, भैंस, डंगर कभी-कभी दूध देना बन्द कर देते हैं। रोड़ा यानि पाँव गल जाते हैं, मुँह से लार छोड़ते हैं। यह बीमारी तंग करती है, इस वास्ते दुआ कर जायें।'

वैसे तो आप रिद्धि-सिद्धि के हक में न थे, लेकिन लोगों की तमन्ना और प्रेम को देखकर और दूध वग़ैरा की जो सेवा उन्होंने की हुई थी इसको ध्यान में रखते हुए आपने थोड़ी देर खामोश रहकर उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

एक बड़े पत्थर पर जल गिरवाकर संगत से महामन्त्र उच्चारण करवाया और उन्हें कहा कि इस पर दूध डालकर मालिक से खैर माँगा करो। खुदा शफ़ा (आरोग्य) बख़्शने वाला है। इसके बाद प्रेमियों से फ़रमाया -

''देखा! लोग स्वार्थ की भक्ति के कितने चाहक हैं। वैसे इनका अपना यकीन ही इनको फायदा देगा। स्वभाव से हर एक जीव स्वार्थ की पूर्ति के लिए यत्न-प्रयत्न कर रहा है। कोई ही विरला दिल की अबदी राहत (स्थायी शाँति) के वास्ते कोशिश करता है। सिर्फ़ आशिक ही इसको पाने की कोशिश करते हैं।''

(28) महाराजा कश्मीर से भेंट

टांगा शाम के छः बजे के करीब जम्मू पहुँचा और श्री महाराज जी सीधे प्रेमी कश्मीर चन्द के मकान पर गए, और वहाँ आसन लगाया। जब आराम से बैठे तो पूछा गया, 'महाराज जी! यह क्या बनने लगा है?'

श्री महाराज जी ने उत्तर दिया, ''अब फिकर वाली बात नहीं रही। वक्त पर श्री महाराजा हिन्दुस्तान से मिल गया है। पता नहीं किसने श्री महाराजा को अक्ल दी है। अब हिन्दुस्तान जाने, उसका काम जाने। उसने बहुत देर लगा दी है। घबराने से वक्त नहीं निकलता। मालिक पर विश्वास रखो।''

जम्मू पधारे एक हफ़्ता ही हुआ था कि श्री महाराजा हरी सिंह को भी श्री महाराज जी के जम्मू में निवास की ख़बर पहुँच गई। श्री महाराजा के संबंधी ठाकुर नचिंत चन्द और जफ़र सिंह जी सत्संग में हाज़िर होने लगे। एक दिन दोनों ने अर्ज़ की कि श्री महाराज जी, आप इस समय श्री महाराजा हरी सिंह पर दया करें। वह बहुत घबराया हुआ है। उसे हौसला बंधाये। ऋषि-मुनि हमेशा ऐसे मौकों पर ही राजाओं-श्री महाराजाओं को नसीहत करते आये हैं।

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमियों! वक्त बहुत बीत जाने पर आये हो। अब क्या नसीहत करनी है। पहले तो वह किसी की सुनता न था। श्रीनगर में वज़ीर वज़ारात तेज राम ने भी कोशिश की थी श्री महाराजा तक उनका पैग़ाम पहुँचाने की, मगर उसने सुनी ही नहीं। इसलिए अब क्या हो सकता है।''

उसी रात को फिर ठाकुर जफ़र सिंह और ठाकुर नचिंत राम जी ने आकर प्रार्थना की, 'महाराज जी! महारानी साहिबा ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की है कि आप ज़रूर दर्शन देने की कृपा करें।'

श्री महाराज जी ने थोड़ी देर खामोश रहने के बाद फ़रमाया, ''अच्छा! कल रात उधर आने का प्रोग्राम रखो, मगर शर्त यह है कि राज्य गृह का एक तो कुछ ग्रहण नहीं किया जावेगा, इसलिए उस समय मजबूरी न की जावे। दूसरे सिवाये सफेद चादर के ज़मीन पर कोई दरी, कालीन वगैरा न बिछाया जाये। नीचे ज़मीन पर ही सबको बैठना होगा। वहाँ पहुँचने पर या रवानगी पर किसी वक्त कोई भेंट वगैरा रखने की कोशिश न की जाये।''

प्रोग्राम निश्चित हो गया। सब शर्तें मान ली गई। आपने उस समय भी

सादगी का उपदेश देकर एक आदर्श कायम किया। आप वस्त्र 21 दिन के बाद बदला करते थे। जब दूसरे दिन रवाना होने लगे तो दास ने वस्त्र तबदील करने की अर्ज़ की। मगर श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''बेईमान वस्त्रों की तबदीली से क्या होगा?''

दास ने अर्ज़ की कि श्री महाराज जी, आप श्री महाराजा साहब के पास जा रहे हैं। वह कहेंगे आपके वस्त्र भी साफ करने वाला कोई नहीं।

श्री महाराज जी ने मुस्कराते हुए कहा, ''फ़कीर तो गुदड़ियों में जाया करते हैं। यह वस्त्र तो अभी बड़े साफ हैं। सफेद कपड़े तो उसे हौसला नहीं देंगे। फ़कीरों के वचन ही ढाढस देने वाले हुआ करते हैं।''

शाम निश्चित प्रोग्राम अनुसार आप महाराजा के महल में तशरीफ़ ले गए। लगभग एक घण्टा वहाँ रहे। जब कार में बैठकर वापस आ रहे थे तो दूसरी तरफ़ महारानी साहिबा ने कार रोक कर नमस्कार करते हुए हाथ जोड़कर अर्ज़ की, 'महाराज जी! आपने बड़ी दयालुता की है इस कदर पवित्र वचनों द्वारा हौसला बंधाया है।'

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''अब आपको कोई फिक्र नहीं करनी चाहिए। हिन्दुस्तान की इज़्ज़त रियासत के बचाव में है। वहाँ के लीडर बड़े समझदार हैं। सब कुछ इस कश्मीर के वास्ते कुरबान कर देंगे। इस समय आप सिर्फ उनकी हाँ में हाँ मिलाते रहें। महाराजा साहब ने रियासत छोड़ने का ख़्याल तर्क (छोड़) कर दिया है। फिक्र न करो। ईश्वर को याद करो। प्रभु आप सबको धीरज देवें।''

जब वापस आकर आसन पर पधारे तो प्रेमी कश्मीर चन्द ने पूछा कि श्री महाराज जी, महाराजा साहब से क्या बातचीत हुई। इस पर हज़ूर ने जवाब में फ़रमाया, ''वाकई महाराजा बहुत घबराया हुआ था। राजाओं का यह हाल है। रियासत छोड़ने को कह रहा था। बहुत तरह समझाया गया कि अब इस तरह छोड़कर चले जाने से बहुत बेइज़्ज़ती होगी। अब गांधी, नेहरू, पटेल वगैरा के कहने के मुताबिक चलो। शेख अब्दुल्ला के साथ अच्छी तरह बरतो।

जब जरा अमन-अमान हो जाये, फिर जैसा मुनासिब समझो कदम उठाओ।''

''दरअसल वज़ीर व अफ़सरान वग़ैरा उसे ग़लत हालात पहुँचाते रहे थे। वह विचार क्या करता? अब लाचार हो रहा है। हिन्दुस्तान से पहले मिल जाता तो बहुत इज़्ज़त आराम से रहता और मान भी बना रहता। शुक्र है अब्दुल्ला इस वक्त दिल-ओ-जान से कांग्रेस का साथ दे रहा है, वरना दो दिन से श्रीनगर में हालात ख़राब हो जाते। बेसहारों का मालिक कोई न कोई सहारा बना ही देता है। जब राजसत्ता बिगड़ जाती है तब सबको अपना-अपना दाँव लगाने का मौका मिल जाता है।''

(29) शुद्ध आहार लाज़मी है

काहनूवान में निवास के समय एक सरदार साहिब से भेंटवार्ता।

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी, कोई विचार करो।

सरदार साहिब ने अर्ज़ की, 'महाराज जी क्या बतायें और अर्ज़ करें। गुरूओं, अवतारों ने कई तरह के विचार देकर समझाया हुआ है, मगर मन की चंचलता ख़त्म नहीं होती। किस तरह संसार में चलना चाहिए?'

श्री महाराज जी ने वचन उच्चारण करने शुरू कर दिये।

कीजे नेक नामी जो देवे खुदाये। जो होसी ज़मीन पर सो होसी फनाये।।
दाम दौलत कैसे बेशुमार। न रहेंगे करोड़ी न रहेंगे हज़ार।।
दमड़ा तिस का जो खर्चे और खाये। देवे दिलाये रज़ाये खुदाये।।
होता न राखे अकेला न खाए। देवे दिलाये न पावे सज़ाए।।
कीजे तवाज़ह न कीजे गुमान। न रहसी एह दुनिया न रहसी दीवान।।
हाथी घोड़े और लशकर हज़ार। होयेंगे गर्क कुछ लागे न वार।।
केते गए देख बाजे बजा। आई मौत सिर पर ना तेरा ना मेरा।।
दुनिया का दीवाना कहे मुल्क मेरा। वही एक रहसी जो सच्चा खुदा।।
आया अकेला अकेला चलाया। चलते वक्त कोई काम न आया।।
लेखा मंगीजे क्या दीजे जवाब। तोबा पुकारे तो पावे अज़ाब।।

दुनिया पर कर ज़ोर दमड़ा कमाया। खाया हंडाया अजायें गंवाया।।
आखिर पछोता करे हाये-हाये। दरगाह गयां ते तूं पावे सजाये।।
लानत है तैंको व तैंडी कमाई। दगे बाज़ी करके दुनिया लूट खाई।।
पीये पियाले और खाये कबाब। देखो रे लोको जो होये खराब।।
जिसका तू बंदा तिसी का सवारिया। दुनिया के लालच में साहिब विसरिया।।

''प्रेमी, यह क्या कहा हुआ है। पता है किन के वचन हैं?''

सरदार साहब कहने लगे, 'महाराज जी, यह नसीहत नामा गुरु नानक देव जी का फ़रमाया हुआ है। यह तो और भी बहुत सारा है।'

श्री महाराज जी फ़रमाने लगे, ''प्रेमी दुनिया वाले तो शिकार पर चढ़े रहते हैं। कौन उनके वचनों को सुनता है और मानता है। मन की चंचलता सत् विचार से ख़त्म हुआ करती है। मन ऐसा जानवर नहीं जो बांध लोगे। धीरे-धीरे अभ्यास और वैराग्य द्वारा ठीक होता रहता है। जब नसीहत पर अमल करोगे, आप ही मन ठहरना शुरू हो जावेगा। किसने नानक की बात मान रखी है? वह मांस, शराब खाने बन्द कर रहे हैं, इधर सरदार लोगों ने झड़ी लगा रखी है। कोई ही गुरु का लाल होगा जो न सेवन करता हो। जब खुराक, लिबास ही ठीक नहीं, एक तुम सादे हुए तो क्या हो जायेगा। आम नफरी ही बिगड़ी हुई है। सत्मार्ग वाले चला करते हैं और की छोड़ तूँ अपनी राह संवार। बहुत बातें करनी छोड़ दो, अमल करो। यह भी एक बीमारी है, विचार बहुत करना, अमल से बे बहरा रहना। सरदान न बनो, सेवादार बनो। आज तक पूछते चले आये हो, किस बात पर यकीन बैठा है? प्रेमी! सुनो थोड़ा अमल करो ज्यादा, जब गुरुओं ने इतनी मेहनत करके पद पाया है तुम खाली बातों से किस तरह पार पा जाओगे? पागलों वाली बातें न किया करो। बहुत जल्दी सतलोक में जाना चाहते हो तो तुम बाबा सावन सिंह के पास चले जाओ।

सरदार जी कहने लगे कि वहाँ तो मैं दो तीन दफ़ा हो आया हूँ। बातें, वचन उनके बहुत मीठे हैं, मगर वह जो गुरु की महिमा बताते हैं, मेरे मगज़ में नहीं बैठ रही। गुरु किस तरह आखिरी समय में शिष्य की रक्षा करेगा।

श्री महाराज जी ने फ़रमाया, ''प्रेमी, किसी के होकर चलोगे तब ठिकाने लग सकोगे। प्रेमी, दर्शन देते रहा करो।'' प्रेमी प्रणाम करके चला गया।

श्री महाराज जी फ़रमाने लगे, ''इस प्रेमी का दिमाग भी अश्चर्ज बना हुआ है, थकता नहीं।''

36

डी. एस. आर. साहनी, देहदरादून

(1) गुरुदेव द्वारा मनीआर्डर

मेरी मासी जी जब छज्जियाँ गाँव में रहती थीं, उस समय उनकी आयु लगभग 16 वर्ष की थी। यह स्थान अब पाकिस्तान में है। उन्होंने श्री महाराज जी के जीवन की दो घटनाएँ सुनाई थीं, जो निम्नलिखित हैं।

(1) श्री महाराज जी छज्जियाँ गाँव में सन् 1943 में 5-6 महीने ठहरे थे। वहीं पर उन्होंने **'गुरुपद सिद्धान्त'** लिखा था, जो कि अब **'ग्रन्थ श्री समता विलास'** का अंग बन चुका है। उन दिनों जब गंगोठियाँ में वार्षिक सम्मेलन होता था तब गाँव की जनता को बेलचों से भर-भर कर कड़ाह प्रसाद बाँटा जाता था। उस अवसर पर एक दिन मेरे पति के मन में यह संदेह पैदा हो गया कि कहीं प्रसाद कम न पड़ जाए। श्री महाराज जी तो अंतर्यामी थे, उन्होंने मेरे पति को बुलाकर कहा, ''प्रेमी! कोई फिक्र न करो। खूब दिल खोलकर प्रसाद बाँटों। यह खत्म नहीं होगा।'' इसके पश्चात् प्रसाद खुले दिल से काफी मात्रा में बाँटा गया, परन्तु फिर भी किसी प्रकार की कमी नहीं हुई।

(2) एक बार मैं गंगोठियाँ वार्षिक यज्ञ में शामिल होने के लिए वहाँ गई थी। सम्मेलन के दौरान मेरा कम्बल कहीं खो गया। मैंने इसके बारे में किसी से चर्चा नहीं की। परन्तु फिर भी किसी प्रकार भगत जी को इसके बारे में पता चल गया। सम्मेलन के पश्चात् हम लोग वापस छज्जियाँ आ गए। बाद में भगत जी ने इसके बारे में श्री महाराज जी को बताया होगा। कुछ दिनों के बाद छज्जियाँ संगत के नाम गंगोठियाँ संगत की तरफ़ से 25 रुपये का मनीआर्डर आया। मनीआर्डर पाकर प्रेमी हैरान हो गए। उनके मुख से एक ही आवाज़ निकली कि ऐसा काम केवल श्री महाराज जी ही कर सकते हैं, जिनकी अपनी ज़रूरत तो कोई रह नहीं गयी है, केवल दूसरों का ही सदैव ख़्याल रखते हैं। वे

किसी भी प्रेमी का नुकसान सहन नहीं कर सकते। उस समय एक अच्छे कम्बल की कीमत 20–25 रुपये हुआ करती थी।

37

के. एन. शर्मा, दिल्ली

(1) गुरुदेव का आख़िरी जन्म

पाकिस्तान बन जाने के बाद कुछ इलाका रावलपिंडी के लोग बलदेव नगर कैम्प अम्बाला में बसाये गए। उनमें तहसील कहूटा के एक गांव साई के निवासी सरदार अमर सिंह मरहूम जो अपने परिवार के साथ रह रहे थे, उनके सुपुत्र हरनाम सिंह उन दिनों जबलपुर मध्यप्रदेश में सर्विस कर रहे थे। हरनाम सिंह को बचपन से ही साधु सन्तों के साथ रहने का शौक था। इसी कारण वह शादी करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। आख़िर माँ-बाप ने बार-बार प्रार्थना करके उसको मना लिया। सन् 1951 में हरनाम सिंह की शादी कर दी गई।

शादी के बाद दोनों पति पत्नी हरिद्वार स्नान करने गए। स्नान करके लौटते समय जिस गाड़ी में वे सवार हुए, उसी डिब्बे में उनके नज़दीक दो अंग्रेज साधु बैठे थे। आपस में धर्म चर्चा कर रहे थे। हरनाम सिंह पहले तो ध्यान से उनकी बातें सुनता रहा। फिर उनसे पूछ लिया कि आप कहाँ से आए हैं और कहाँ जाना है। उन्होंने कहा कि हम इंग्लैण्ड से भारत के तीर्थों की यात्रा करने के लिए आए हैं। हरनाम सिंह से उन्होंने पूछा कि आप कहाँ के रहने वाले हैं। उसने जवाब में अपने जिला और गांव का नाम बता दिया और कहा कि अब यह इलाका पाकिस्तान में आ गया है।

उन लोगों ने पूछा, 'क्या वहाँ गंगोठियां नाम का गांव है।'

जवाब में हरनाम सिंह ने उनको बताया कि गंगोठियां हमारे गांव के बिल्कुल नज़दीक था।

सन्यासियों ने पूछा, 'क्या उस गाँव में कोई मंगतराम नाम का अवतार हुआ है?'

हरनाम सिंह ने जवाब दिया, 'अवतार तो नहीं मगर उस गांव में एक भगत मंगतराम नाम का बड़ा महात्मा हुआ है। जो अब इधर ही

हिन्दुस्तान में आ गया है, मगर अब इस वक़्त कहाँ है पता नहीं ?'

सन्यासी यह सुनकर खुश हुए और कहा, 'हाँ, हाँ। वही तो अवतार हैं।'

हरनाम सिंह यह सुनकर हैरान हुआ कि यह विलायत से आए हैं और इनको कैसा पता लगा।

उसने पूछा, 'महात्मन आपको कैसे मालूम है कि वह अवतार हैं और आप उनको कैसे जानते हैं ?'

सन्यासी बोले, 'प्रेमी! वैसे तो उनका और हमारा सम्बन्ध कई जन्मों से चला आ रहा है। मगर पिछले तीन जन्मों से हम इक्ट्ठे हैं। कभी किसी मुल्क में तो कभी किसी मुल्क में। इस बार हमारा जन्म इंग्लैण्ड में हुआ और उनका जन्म भारत के उस गाँव में जिसका नाम आपने बताया है। हम दोनों ने तो अभी एक-एक जन्म और लेना है मगर उनका यह आख़िरी जन्म है।'

हरनाम सिंह, 'महात्मा जी। आप मेरे साथ चलें। मैं अपने गाँव से उनका सही पता लगा लूँगा कि वह इस वक़्त कहाँ है।' अभी जवाब दे भी नहीं पाये थे कि उनका स्टेशन आ गया और वह गाड़ी से उतर गये।

हरनाम सिंह ने घर वापस आकर अपने पिता अमर सिंह को यह घटना सुनाई तो वह हैरान हुए।

यह घटना कहां तक सत्य है इसकी पुष्टि स्वयं सत्गुरुदेव जी अपने शब्दों में उस वक़्त की जब एक वक़्त भगत बनारसी दास ने उनसे यह प्रश्न किया था कि महाराज आपके गुरु कौन हैं ? तब आपने जवाब फ़रमाया, ''प्रेमी! इनका गुरु परमेश्वर आप ही है। गुरु धारण करने की जरूरत जब पड़ती है जब अन्दर कोई कमी हो। शुरू से ही यानि बचपन से ही प्रभु ने जाग्रति बख़्शी हुई है। इनका शरीर जब तीन साल का था तब से ही ऐसी हालत है। अन्दर से हर बात की सूझी थी मगर संसार में मर्यादा से चलना पड़ता है। प्रारब्धवश आखिरी जन्म इस जगह हुआ है जहाँ के लोग आम संसारी थे। उन जैसा बनकर रहने की आज्ञा रही। इन्हें नहीं पता कौन गुरु कौन चेला।''

भारतवर्ष में अन्य स्थानों पर भी संगत समतावाद के आश्रम व सत्संग शालाएँ हैं, जिनके बारे में जानकारी व अन्य किसी भी प्रकार की जानकारी निम्नलिखित आश्रम से ली जा सकती है।

HEAD OFFICE:
SANGAT SAMTAVAD
SAMTA YOG ASHRAM
CHACHHRAULI ROAD
JAGADHARI-135003
www.samtavad.org

मुख्य ऑफिस :
संगत समतावाद
समता योग आश्रम
छछरौली रोड
जगाधरी - 135003
www.samtavad.org